भगवान बुद्ध के उपस्थाक

आनन्द

विपश्यना विशोधन विन्यास

भगवान बुद्ध के उपस्थाक

आनन्द

[बहुश्रुत, स्मृतिमान, प्रवीण, धृतिमान, उपस्थाक भिक्षुओं में अग्र]
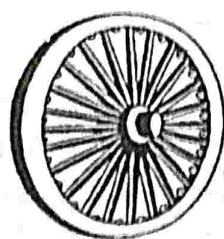
विपश्यना विशोधन विन्यास
धम्मगिरि, इगतपुरी

भगवान बुद्ध की उद्घोषणा

"एतदग्गं, भिक्खवे, मम सावकानं भिक्खूनं बहुस्सुतानं यदिदं आनन्दो।"
"भिक्षुओ! मेरे बहुश्रुत भिक्षुश्रावकों में अग्र (श्रेष्ठतम) है आनन्द।"

****

"एतदग्गं, भिक्खवे, मम सावकानं भिक्खूनं सतिमन्तानं यदिदं आनन्दो।"
"भिक्षुओ! मेरे स्मृतिमान भिक्षुश्रावकों में अग्र है आनन्द।"

****

"एतदग्गं, भिक्खवे, मम सावकानं भिक्खूनं गतिमन्तानं यदिदं आनन्दो।"
"भिक्षुओ! मेरे प्रवीण (चतुर) भिक्षुश्रावकों में अग्र है आनन्द।"

****

"एतदग्गं, भिक्खवे, मम सावकानं भिक्खूनं धितिमन्तानं यदिदं आनन्दो।"
"भिक्षुओ! मेरे धृतिमान भिक्षुश्रावकों में अग्र है आनन्द।"

****

"एतदग्गं, भिक्खवे, मम सावकानं भिक्खूनं उपट्ठाकानं यदिदं आनन्दो।"
"भिक्षुओ! मेरे उपस्थाक (सेवक) भिक्षुश्रावकों में अग्र है आनन्द।"

– अङ्गुत्तरनिकाय (१.१.२१९-२२३)

आयुष्मान आनन्द

विषयानुक्रमणिका

प्रकाशकीय

पीढ़ी-दर-पीढ़ी भगवान की वाणी को कंठस्थ कर परियत्ति तथा पटिपत्ति को जिस भिक्षु-संघ ने अपनी आने वाली पीढ़ियों के लिए सर्वसुलभ बनाया उन सबके प्रति कृतज्ञता का भाव पनपना स्वाभाविक ही है। पर सर्वोपरि आयुष्मान आनन्द के प्रति जिन्होंने भगवान की वाणी को कंठस्थ कर अगली पीढ़ियों के लिए परियत्ति को सुलभ बनाया।

प्रस्तुत पुस्तिका भगवान गोतम बुद्ध के उपस्थाक आयुष्मान आनन्द के जीवनवृत्तांत को उजागर करती है।

अपने पूर्वजन्मों के पुण्य कर्मों के फलस्वरूप आयुष्मान आनन्द कपिलवत्थु के शाक्यकुल में भगवान के सगे चाचा अमितोदन के पुत्र होकर जन्मे। इनके जन्म के समय परिवार तथा सगे-संबंधियों के मध्य बड़ा ही हर्षोल्लास का वातावरण था। इसीलिए इनका नामकरण 'आनन्द' किया गया।

****

भगवान की आयु दिनोंदिन ढलती जा रही थी। उन्होंने अपने लिए एक स्थायी उपस्थाक (सेवक) की आवश्यकता को भिक्षुओं के समक्ष व्यक्त किया। आयुष्मान सारिपुत्त, महामोग्गल्लान तथा अन्य अनेक महाश्रावकों ने भगवान से अपने लिए इस पद की याचना की। पर भगवान को इनमें से कोई भी इस कार्य के लिए स्वीकार्य नहीं थे। होते भी क्यों? आखिर अतीत काल के भगवान पदुमुत्तर बुद्ध की - आयुष्मान आनन्द का भगवान गोतम बुद्ध का उपस्थाक बनने की भविष्यवाणी फलीभूत होने का समय समीप जो आ चुका था!

आयुष्मान आनन्द भगवान से आठ शर्तें मनवाकर उनके स्थायी उपस्थाक बने। यह आयुष्मान आनन्द की दूरदर्शिता ही थी जो उन्होंने भगवान से यह शर्त मनवायी - 'भंते! मेरी अनुपस्थिति में भगवान जो धर्मोपदेश दें वह मुझसे पुनः कहें।' इसके फलस्वरूप आयुष्मान आनन्द ने भगवान की समस्त वाणी सुनी तथा कंठस्थ की। आयुष्मान आनन्द के इस गुण के कारण ही भगवान ने उन्हें बहुश्रुतों में अग्र घोषित किया।

आयुष्मान आनन्द की मेधाशक्ति अत्यंत प्रखर थी। एक वार सुनी हुयी वात उनके स्मृतिपटल पर अंकित हो जाती थी, जैसे कोई वात कंप्यूटर में फीड कर दी गयी हो और कोई भी जब चाहे तब सुन-देख ले। उनके इस गुण के कारण ही भगवान गोतम ने उन्हें अपने स्मृतिमान श्रावकों में अग्र घोषित किया।

पच्चीस वर्षों तक आयुष्मान आनन्द मैत्री-चित्त से आप्लावित कायिककर्म से, वाचिककर्म से, मनोकर्म से साथ न छोड़ने वाली छाया की तरह भगवान की सेवा में तल्लीन रहे। आयुष्मान आनन्द के इन गुणों के कारण वे भगवान के उपस्थाक श्रावकों में अग्र प्रतिष्ठापित हुए।

धृतिमान आनन्द भगवान से तथा महाश्रावकों से धर्मचर्चा, धर्मश्रवण तथा धर्मोपदेश में रुचि रखते। प्रश्न पूछकर अपनी शंकाओं का निवारंण करते। भगवान भी समय-समय पर आयुष्मान आनन्द को धर्म के लक्षणों (अनित्य, दुःख, अनात्म) का माहात्म्य प्रकाशित करते। चार आर्यसत्यों, आर्य अष्टांगिक मार्ग, प्रतीत्यसमुत्पाद, आनापान-स्मृति समाधि इत्यादि धर्म के अंगों (शील, समाधि, प्रज्ञा) को विभिन्न दृष्टिकोणों से समझाते।

समस्त बुद्धवाणी कंठस्थ होने तथा भगवान के इतने समीप होने के बावजूद भी आयुष्मान आनन्द भगवान के जीवनकाल में सोतापन्न ही रहे। भगवान के परिनिर्वाण के पश्चात अपने सत्प्रयत्नों से ही अर्हत अवस्था को प्राप्त हुए। वस्तुतः हर व्यक्ति को अपने ही प्रयासों से मुक्त अवस्था प्राप्त करनी होती है। अतः भगवान भिक्षुओं को समय-समय पर सचेत किया करते - "भिक्षुओ! जो एक अनुकंपक हितैषी शास्ता को करना चाहिए वह मैंने तुम्हारे लिए कर दिया। आनन्द! ये वृक्षमूल हैं, शून्यागार हैं, इनमें बैठ कर ध्यान करो। प्रमाद मत करो, पीछे अफसोस मत करना। तुम्हारे लिए यह हमारी शिक्षा है।"

अनेक अवसरों पर भगवान ने आयुष्मान आनन्द की प्रशंसा की। जैसे - "भिक्षुओ! आनन्द शैक्ष्य है, तो भी प्रज्ञा में इसकी बराबरी करने वाला सुलभ नहीं है।"

"भिक्षुओ! आनन्द पंडित है, महाप्राज्ञ है। यदि तुम मुझसे पूछते, तो मैं भी ठीक वैसे ही समझाता जैसा आनन्द ने बताया। उसका यही अर्थ है, इसे अच्छी तरह धारण करो।"

आयुष्मान आनन्द भिक्षु-भिक्षुणी, उपासक-उपासिका, तैर्थिक और भगवान - सबके प्रिय थे। महाश्रावक सारिपुत्त से इनका विशेष लगाव था। निर्विवाद हो, दूध-जल की तरह मिश्रित हो, एक दूसरे का सम्मोदन करते हुए, एक दूसरे को प्रिय नेत्रों से देखते हुए विहार करते। आयुष्मान सारिपुत्त की दृष्टि में आयुष्मान आनन्द अर्थकुशल, धर्मकुशल, व्यंजनकुशल, निरुक्तिकुशल, पूर्वापरकुशल थे।"

समय-समय पर आयुष्मान आनन्द श्रावक-श्राविकाओं, उपासक-उपासिकाओं तथा तैर्थिकों के प्रयोजन को सिद्ध करते। श्रेष्ठी अनाथपिण्डिक के निवेदन पर आयुष्मान आनन्द ने भगवान से अनुमति प्राप्त कर जेतवन में बोधिवृक्ष का आरोपण करवाया जिससे वहां का वातावरण उत्साह से भर गया। आनन्द के सत्प्रयत्नों से यह वृक्ष लगवाया गया इसलिए आगे चलकर यह आनन्दबोधि के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

भगवान की मौसी महापजापति गोतमी ने जब भगवान से धर्मविनय में स्त्रियों के लिए प्रव्रज्या की अनुमति मांगी तब भगवान ने इसे निषिद्ध ठहराया। गोतमी ने सारा वृत्तांत आयुष्मान आनन्द को कह सुनाया। आयुष्मान आनन्द ने अपने व्यवहार-कौशल से भगवान से स्त्रियों के लिए धर्मविनय में प्रव्रज्या की अनुमति दिलवायी।

बहुश्रुत, स्मृतिमान, प्रवीण, धृतिमान, उपस्थाक भिक्षुओं में अग्र तथा अनेक गुणों से संपन्न होने के बावजूद भी शैक्ष्य आनन्द मार के चंगुल से बच नहीं पाये। प्रसंग -

"आनन्द! जिस किसी ने चार ऋद्धिपादों को अच्छी तरह भावित कर लिया है, वे यदि चाहें तो कल्प भर ठहर सकते हैं या कल्प के शेष भाग तक" - भगवान द्वारा ऐसा स्पष्ट संकेत किये जाने पर भी आयुष्मान आनन्द भगवान के आशय को समझ नहीं पाये। और न ही भगवान से उन्होंने प्रार्थना की कि

भंते! भगवान बहुतों के हित-सुख के लिए कल्प भर ठहरें। उस समय मार ने आयुष्मान आनन्द के चित्त पर अपनी पैठ जमा रखी थी।

भगवान ने अपने महापरिनिर्वाण के पूर्व आयुष्मान आनन्द तथा भिक्षुओं को जीवन-जगत की अनेक सच्चाईयों से अंतिम बार अवगत कराया तथा सद्धर्म के चिरस्थायी होने तथा संघ की उन्नति के बारे में भिक्षुओं को बतलाया।

चार आर्यसत्यों के माहात्म्य को प्रकाशित करते हुए भगवान ने कहा - "चार आर्यसत्यों का अनुबोध तथा प्रतिवेध न होने से लोक में प्राणियों का आवागमन चल रहा है। जब इन चार आर्यसत्यों को उक्त प्रकार से जान लिया जाता है, तब भवतृष्णा नष्ट हो जाती है और लोग दुःखों के पार चले जाते हैं।"

"हे आनन्द! बिना किसी दूसरे का सहारा ढूंढे अपना द्वीप, अपना सहारा स्वयं बन कर विहार करो। धर्म को अपना द्वीप बना, धर्म के सहारे विहार करो।" तदुपरांत भगवान ने स्पष्ट किया कि कोई कैसे चार सतिपट्ठानों (स्मृतिप्रस्थानों) की भावना करते हुए उक्त प्रकार से विहार करता है।

"भिक्षुओ! स्मृति और संप्रज्ञान के साथ विहार करो, यही हमारा (तुम्हारे लिए) अनुशासन (शिक्षा) है।"

"भिक्षुओ! मेरे द्वारा जो धर्म - **चार स्मृतिप्रस्थान, चार सम्यक प्रधान, चार ऋद्धिपाद, पांच इंद्रियां, पांच बल, सात बोध्यंग, आर्य अष्टांगिक मार्ग** - तुम्हें उपदेशित किये गये हैं, उन्हें अच्छी तरह सीख कर अभ्यास करो, भावित करो, बहुलीकृत करो जिससे यह ब्रह्मचर्य चिरस्थायी हो, देवताओं और मनुष्यों के लिए कल्याणकारी सिद्ध हो।"

"भिक्षुओ! सारे संस्कार व्यय-धर्मा हैं। प्रमाद-रहित हो, (इस सच्चाई का) संपादन करो।"

"इस धर्मविनय में जो अप्रमादी होकर विहार करेंगे, वही भव-संसरण का प्रहाण कर दुःखों का अंत कर सकेंगे।"

वैशाख पूर्णिमा को जब भगवान के महापरिनिर्वाण का समय निकट आने लगा तब अवीतराग होने के कारण आयुष्मान आनन्द अपने आप को

संभाल न सके। वे विहार में जाकर खूंटी पकड़कर रोने लगे। भगवान ने उन्हें बुलवाया और सांत्वना देते हुये कहा - "आनन्द! मत शोक करो, विलाप मत करो। मैंने तो पहले ही कह दिया था - 'सभी प्रियों से वियोग होना निश्चित है। उनका निरंतर संयोग कहां से मिलने वाला है? जो कुछ भी उत्पन्न है, कृत है, संस्कृत है, वह एक-न-एक दिन नष्ट होगा ही। तथागत का शरीर नष्ट न हो, यह संभव नहीं।'

"आनन्द! तूने दत्तचित्त होकर, चिरकाल तक अकेले, अपरिमित हितसुख के लिए मैत्रीपूर्ण कायिककर्म द्वारा, मैत्रीपूर्ण वाचिककर्म द्वारा, मैत्रीपूर्ण मनोकर्म द्वारा तथागत की सेवा की है। आनन्द! तू कृतपुण्य है। निर्वाण-साधन में लग कर शीघ्र ही अनास्रव हो जा।"

भगवान ने आयुष्मान आनन्द के गुणों को उजागर करते हुए भिक्षुओं से कहा - "भिक्षुओ! यदि भिक्षु-परिषद, भिक्षुणी-परिषद एवं उपासक-परिषद, उपासिका-परिषद आनन्द का दर्शन करने जाते हैं तो दर्शन से भावविभोर हो जाते हैं; यदि आनन्द धर्म पर भाषण करता है तो भाषण से भावविभोर हो जाते हैं और जब आनन्द चुप हो जाता है, तब वे सभी अतृप्त से रह जाते हैं।"

****

भ ग वा न का प रा म र्श

"आनन्द! तुम मेरे द्वारा प्रवर्तित इस कल्याण मार्ग (आर्य अष्टांगिक मार्ग - **सम्यकदृष्टि, सम्यकसंकल्प, सम्यकवाणी, सम्यककर्मांत, सम्यकआजीविका, सम्यकव्यायाम, सम्यकस्मृति** और **सम्यकसमाधि**) को चालू रखना, तुम इसके *अंतिम पुरुष* न हो जाना।"

विपश्यना विशोधन विन्यास

मनोकामना पूर्ण हुई

आनन्द का जन्म

अनेक जन्मों तक भव-संसरण करते हुए आयुष्मान आनन्द ने भगवान गोतम (गौतम) बुद्ध के बोधिसत्त्व काल में उनके साथ तुषित लोक में जन्म ग्रहण किया। वहां से च्युत होकर कपिलवत्थु (कपिलवस्तु) के शाक्यकुल में भगवान के सगे चाचा अमितोदन के यहां जन्मे। इनके जन्म के समय परिवार और सगे-संबंधियों के मध्य बड़ा ही हर्षोल्लास का वातावरण था। इसलिए इनका नामकरण 'आनन्द' किया गया। आयुष्मान आनन्द को अपने चचेरे भाई सिद्धार्थ से विशेष लगाव रहा करता था।

प्रव्रज्या ग्रहण

वैशाख पूर्णिमा को सिद्धार्थ गोतम ने सम्यक-संबोधि प्राप्त की और उसके दो माह बाद आषाढ़ पूर्णिमा को सारनाथ में धर्मचक्रप्रवर्तन किया। उन्हें कपिलवत्थु छोड़े छः वर्ष हो चुके थे। पिता महाराज सुद्धोदन को पुत्र की याद सता रही थी। उन्होंने पुत्र को कपिलवत्थु लाने के लिए क्रमशः नौ अमात्य भेजे। आश्चर्य! कोई लौटकर वापस भी नहीं आया। अंत में महाराज ने अपने अतिविश्वस्त और भगवान के बाल-सखा कालुदायी को यह कार्य सौंपा।

उन दिनों शास्ता राजगह (राजगृह, राजगिरि, राजगिर) में विहार करते थे। महाराज के कार्य हेतु कालुदायी राजगह आये। वहां पहुँचने के पांच माह बाद अनुकूल अवसर देखकर कालुदायी ने पिता के निमंत्रण से भगवान को अवगत कराया। भगवान अपने विशाल भिक्षु-संघ के साथ कपिलवत्थु पहुँचे। कपिलवत्थु में सात दिनों तक विहार किया और अपने कनिष्ठ भ्राता नन्द तथा सप्त-वर्षीय पुत्र राहुल को प्रव्रजित कराया।
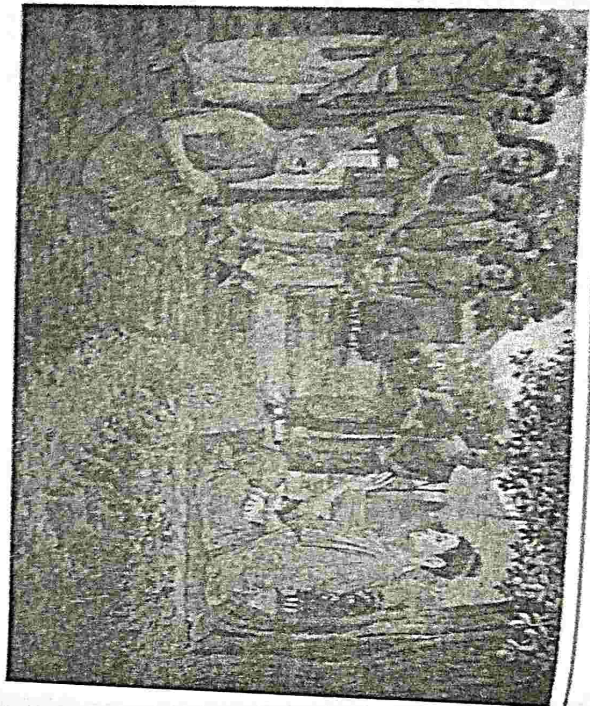
फिर चारिका प्रारंभ। भगवान कपिलवत्थु से मल्लों के राज्य में पहुँचे। वहां आम्रवन में विहार किया। तव शाक्य राजकुमार भद्दिय, अनुरुद्ध, भगु, किमिल तथा शाक्य सुप्पबुद्ध का पुत्र देवदत्त एवं राजघराने के नाई उपालि के साथ आनन्द भी मल्लों के निगम अनुप्रिया आये। सभी घर-वार छोड़ कर निकले। अनुप्रिया के आम्रवन में अन्य राजकुमारों के साथ आनन्द ने प्रव्रज्या ग्रहण की। शीघ्र ही आयुष्मान मन्ताणिपुत्त पुण्ण से धर्मकथा सुनकर सोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुए और त्रिरत्न की सेवा में मनोयोग से जुट गये।

उपस्थाक पद की कामना

भगवान गोतम बुद्ध के सम्यक-संवोधि प्राप्त करने से लेकर वीस वर्ष तक कई अस्थायी उपस्थाक (सेवक) भगवान की सेवा के उत्तरदायित्व का निर्वाह करते रहे। कभी नागसमाल पात्र-चीवर लेकर विचरते तो कभी नागित, तो कभी उपवाण, कभी सुनक्खत्त, कभी नये प्रव्रजित चुन्द, कभी सागत तो कभी मेघिय। ये सभी शास्ता के चित्त को अपने सेवाभाव से प्रसन्न न कर सके। ये उपस्थाक भगवान का आदेश न तो कायदे से सुनते, न ही मानते। यदि शास्ता पूरव की ओर चलने को कहते, तो वे पश्चिम की ओर चले जाते। कभी शास्ता को पात्र-चीवर पकड़ा कर मनचाही दिशा में

चल पड़ते। कभी-कभी तो पात्र-चीवर रास्ते पर रखकर वेराह चल देते। इस प्रकार अपने असंयमित चित्त के कारण वे कभी-कभी परेशानी में भी पड़ जाते। तव इससे भगवान ही उन्हें उवारते।

ऐसी स्थिति में एक दिन स्थविरों से घिरे हुए भगवान ने भिक्षुओं को संवोधित किया - "भिक्षुओ! अव मैं वूढ़ा हो गया हूं। 'इस रास्ते से जाऊंगा' कहे जाने पर कुछ भिक्षु (उपस्थाक) दूसरे रास्ते से जाते हैं, कुछ मेरे पात्र-चीवर को जमीन पर फेंक देते हैं, आप लोग मेरे लिए किसी एक उपस्थाक (भिक्षु) को वतावें जो मेरी वरावर सेवा कर सके।" यह सुनकर भिक्षुओं के मन में धर्मसंवेग जागा।

तव आयुष्मान सारिपुत्त (सारिपुत्र) उठे और भगवान की वंदना करके वोले - "भंते! मैं भगवान की सेवा करूंगा। भंते! मैंने आपको पाने की प्रार्थना करते हुए एक लाख से अधिक कल्पों तक पारमिताओं को पूरा किया, निश्चय ही मेरे सदृश महाप्रज्ञ को आपका उपस्थाक होना चाहिए।" भगवान ने यह कहकर प्रतिक्षेप किया - "सारिपुत्त वस करो, जिस दिशा में तुम विहार करते हो, वह दिशा शून्य नहीं होती, तुम्हारे द्वारा दिये गये उपदेश वुद्धों के उपदेश सदृश होते हैं। इस तरह तुम्हारे द्वारा मेरी ही सेवा की जाती है।" उसी उपाय से महामोग्गल्लान से प्रारंभ कर अन्य महाश्रावक भी उठे, लेकिन भगवान ने सबका प्रतिक्षेप किया।

आयुष्मान आनन्द चुपचाप वैठे थे। भिक्षुओं ने उनसे कहना प्रारंभ किया - "आयुष्मान आनन्द! आप भी उपस्थाक पद की याचना करो।" पर, आयुष्मान आनन्द टस से मस नहीं हुए। उन्होंने कहा - "याचना करके पाया गया उपस्थाक का पद कैसा होगा? यदि शास्ता को मेरी सेवा रुचेगी तो वे स्वयं ऐसा कहेंगे।"

"भिक्षुओ! आनन्द दूसरों द्वारा उत्साहित किये जाने योग्य नहीं है। स्वयं जान-समझ कर मेरी सेवा करेगा।"

भगवान के ऐसा कहने पर भिक्षुओं ने पुनः आयुष्मान आनन्द से याचना करने की वात कही। अव आयुष्मान आनन्द उठे। आयुष्मान आनन्द ने भगवान से चार प्रतिक्षेप और चार प्रतिज्ञाएं मिलाकर आठ वर मांगे।

"भंते! ये मेरी चार प्रतिक्षेप बातें हैं -

- "भंते! भगवान को जो श्रेष्ठ चीवर मिलेंगे उनमें से भगवान मुझे नहीं देंगे।
- "भंते! भगवान को जो श्रेष्ठ भोजन मिलेगा उसमें से भगवान मुझे नहीं देंगे।
- "भंते! भगवान अपनी गंधकुटी में साथ रहने के लिए मुझे नहीं कहेंगे। और
- "भंते! भगवान जहां कहीं निमंत्रित होंगे वहां मुझे लेकर नहीं चलेंगे।

"भंते! यदि भगवान मेरी ये चार बातें स्वीकार करें, तो मैं भगवान की सेवा करने के लिए तैयार हूं।"

"आनन्द! तुम इनमें क्या खतरा देखते हो?"

"भंते! यदि मैं इन सुविधाओं का उपभोग करूंगा, तो ऐसा कहने वाले लोग होंगे 'आनन्द भगवान द्वारा प्रदत्त श्रेष्ठ चीवर और श्रेष्ठ भोजन का उपभोग करते हैं, गंधकुटी में रहते हैं और भगवान के साथ निमंत्रण में जाते हैं। इतना लाभ प्राप्त होने पर तथागत की सेवा करते हैं। ऐसी सेवा करने में किसको भार होगा?'"

फिर आयुष्मान आनन्द आगे बोले -

"भंते! चार और बातें हैं।

- "भंते! मेरे द्वारा स्वीकृत निमंत्रण पर भगवान अवश्य चलेंगे।
- "भंते! मेरे द्वारा दूर-देशांत के आमंत्रित लोगों को भगवान तत्काल दर्शन देंगे।
- "भंते! अपनी किसी शंका के समाधान के लिए मैं भगवान से तुरंत मिल सकूं। और
- "भंते! मेरी अनुपस्थिति में भगवान जो धर्मोपदेश दें वह मुझसे पुनः कहें।

"भंते! यदि भगवान मेरी ये चार और बातें स्वीकार करें, तो मैं सेवा के लिए तैयार हूं।"

"आनन्द! इनमें तुम क्या लाभ देखते हो?"

"भंते! यदि मेरे द्वारा स्वीकृत निमंत्रण पर भगवान नहीं चलेंगे; यदि दूर-देशांत से मेरे द्वारा आमंत्रित कुलपुत्र तत्काल भगवान के दर्शन नहीं पायेंगे; यदि अपनी शंका के समाधान हेतु मैं तुरंत भगवान से नहीं मिल सकूंगा और मेरी अनुपस्थिति में दिये गये धर्मोपदेश को भगवान मुझसे पुनः नहीं कहेंगे तो ऐसा कहने वाले लोग होंगे, 'आनन्द भगवान की क्या सेवा करता है जो भगवान उसपर इतना भी अनुग्रह नहीं करते।' इतना ही नहीं, भंते! जब भगवान सामने नहीं रहेंगे और लोग मुझसे पूछेंगे 'आयुष्मान आनन्द! अमुक गाथा, अमुक सुत्त, अमुक जातक भगवान ने किससे कहा था, कहां कहा था, कब कहा था, किस प्रसंग में कहा था .....?' यदि मैं इन प्रश्नों का ठीक-ठीक उत्तर नहीं दे सका, तो ऐसा कहने वाले लोग होंगे, 'आनन्द इतना भी नहीं जानता है, तो क्या छाया की तरह दिन भर भगवान के साथ लगा रहता है?' भंते! इस कारण भगवान मेरी अनुपस्थिति में दी गयी धर्मदेशना मुझसे पुनः कहें - यह मैं चाहता हूं।"

इस प्रकार चार निषेधात्मक और चार विध्यात्मक - कुल आठ शर्तें मनवा कर आयुष्मान आनन्द भगवान के स्थायी और पूर्णकालिक उपस्थाक बने। भगवान पदुमुत्तर के वरदान के बाद अनेक कल्पों तक अपनी पारमिताओं को पूर्ण करते हुए आयुष्मान आनन्द की उपस्थाक पद ग्रहण करने की मनोकामना पूर्ण हुई।

सेवा-सुख

जिस दिन से आयुष्मान आनन्द को उपस्थाक का कार्य मिला उसी दिन से वह भगवान की सेवा में तन-मन से जुट गये। वे भगवान को ठंडा और गर्म पानी देते और तीन प्रकार की दातुन की व्यवस्था करते। भगवान के हाथ-पैर, पीठ और पूरा शरीर दबा कर उनकी थकान दूर करते। गंधकुटी परिवेण को झाडू से बुहार कर साफ रखते। चौबीस घंटे के दिन में शास्ता को कब किस वस्तु की आवश्यकता है, यह आयुष्मान आनन्द ने अच्छी तरह समझ लिया था। भगवान कब क्या कहना या करना चाहते हैं इस प्रयोजन हेतु वे भगवान के आसपास हर समय उपस्थित रहते। रात में एक बड़ा सा दीपदंड हाथ में लेकर गंधकुटी के नौ चक्कर लगाते, जिससे तन-मन का आलस्य न आवे और भगवान के बुलाने पर तुरंत उत्तर दे सकें।

इस तरह पच्चीस वर्षों तक आयुष्मान आनन्द भगवान की सेवा में ऐसे लगे रहे जैसे उनकी छाया हों। अपने लिए वे इतना भी समय नहीं निकाल पाते थे कि मौन और एकाग्रचित्त होकर साधना में प्रगति कर सकें। भगवान के जीवनकाल तक आयुष्मान आनन्द सोतापन्न ही रह गये जब कि जीवन्मुक्त होने की विद्या उनके लिए दुरूह नहीं थी। न जाने कितने लोग उनसे यह विद्या सीख कर अर्हत अवस्था को प्राप्त कर चुके थे। पर आयुष्मान आनन्द को बुद्ध, धर्म और संघ की सेवा के अतिरिक्त कुछ भी सुझाई नहीं देता था।

आयुष्मान आनन्द की निम्नांकित गाथाएं भगवान के प्रति उनके अनन्य सेवाभाव को प्रकट करती हैं –

"पण्णवीसतिवस्सानि, भगवन्तं उपट्ठहिं।
मेत्तेन कायकम्मेन, छायाव अनपायिनी॥

[पच्चीस वर्षों तक मैंने साथ न छोड़ने वाली छाया की तरह भगवान की मैत्री-चित्त से कायिककर्म से सेवा की।]

****

"पण्णवीसतिवस्सानि, भगवन्तं उपट्ठहिं।
मेत्तेन वचीकम्मेन, छायाव अनपायिनी॥

[पच्चीस वर्षों तक मैंने साथ न छोड़ने वाली छाया की तरह भगवान की मैत्री-चित्त से वाचिककर्म से सेवा की, अर्थात मैं सदा मैत्रीभाव से पूर्ण वचन ही बोलता रहा।]

****

"पण्णवीसतिवस्सानि, भगवन्तं उपट्ठहिं।
मेत्तेन मनोकम्मेन, छायाव अनपायिनी॥"

[पच्चीस वर्षों तक मैंने साथ न छोड़ने वाली छाया की तरह भगवान की मैत्री-चित्त से मनोकर्म से सेवा की।]

-थेरगाथा (१०४४-४६), आनन्दत्थेरगाथा

भगवान द्वारा आनन्द को उपदेश

'भंते! मेरी अनुपस्थिति में भगवान जो धर्मोपदेश दें वह मुझसे पुनः कहें।' आयुष्मान आनन्द का भगवान के साथ ऐसा करार था। अतः आयुष्मान आनन्द की अनुपस्थिति में भगवान जो भी उपदेश देते थे, उसे आकर पुनः आयुष्मान आनन्द को कहते थे। बहुश्रुत (जिसने बहुत कुछ सुन रखा हो) आनन्द को भगवान की समस्त वाणी कंठस्थ थी।

"द्वासीति बुद्धतो गण्हिं, द्वे सहस्सानि भिक्खुतो।
चतुरासीतिसहस्सानि, ये मे धम्मा पवत्तिनो॥"

-थेरगाथा (१०२७), आनन्दत्थेरगाथा

["बयासी हजार (सुत्त) मैंने (भगवान गोतम) बुद्ध से ग्रहण किये, भिक्षुओं से दो हजार। ये चौरासी हजार सुत्त मुझे धर्म की ओर प्रवृत्त करते हैं।"]

आओ! भगवान की वाणी के चित्र-विचित्र, निर्वाण की गंध से सुवासित उपदेशों की एक झलक देखें।

सत्पुरुष की सुगंध

एक समय आयुष्मान आनन्द भगवान के पास गये। भगवान का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान आनन्द ने भगवान को यह कहा–

"भंते! ये तीन प्रकार की सुगंधियां हैं – मूल-सुगंध, सार-सुगंध तथा पुष्प-सुगंध। भंते! ये तीनों सुगंध वायु के अनुकूल हो जाती हैं, प्रतिकूल नहीं। भंते! क्या कोई ऐसी सुगंधि भी है जो वायु के अनुकूल भी जाती हो, प्रतिकूल भी जाती हो, अनुकूल-प्रतिकूल भी जाती हो?"

"आनन्द! ऐसी सुगंधि है, जिसकी सुगंध वायु के अनुकूल भी जाती है, प्रतिकूल भी जाती है, अनुकूल-प्रतिकूल भी जाती है।"

"भंते! वह कौन-सी सुगंधि है जिसकी सुगंध वायु के अनुकूल भी जाती है, प्रतिकूल भी जाती है, अनुकूल-प्रतिकूल भी जाती है?"

"यहां, आनन्द! जिस गांव या निगम के स्त्री या पुरुष बुद्ध की शरण गये होते हैं, धर्म की शरण गये होते हैं, संघ की शरण गये होते हैं, प्राणि-हिंसा से विरत होते हैं, चोरी से विरत होते हैं, कामभोग-संबंधी मिथ्याचार से विरत होते हैं, झूठ बोलने से विरत होते हैं, सुरा-मेरय-मद्य आदि प्रमाद के कारणों से विरत होते हैं, कल्याणधर्मी, शीलवान होते हैं, मात्सर्य-रूपी मल से रहित चित्त से घर में रहते हैं - उदारता से, शुद्ध मन से दान देने वाले, उत्सर्गरत (त्यागकर प्रसन्न होने वाले) होकर दान देने वाले, जिनके पास याचना की जा सकती है तथा जो धन का उदारतापूर्वक संविभाग करने वाले हैं।

"उस गांव के श्रमण-ब्राह्मण चारों दिशाओं में गुणानुवाद करते हैं - अमुक गांव में या अमुक निगम में स्त्री या पुरुष बुद्ध की शरण गये होते हैं, धर्म की शरण गये होते हैं, संघ की शरण गये होते हैं, प्राणि-हिंसा से विरत होते हैं, चोरी से विरत होते हैं, कामभोग-संबंधी मिथ्याचार से विरत होते हैं, झूठ बोलने से विरत होते हैं, सुरा-मेरय-मद्य आदि प्रमाद के कारणों से विरत होते हैं, कल्याणधर्मी, शीलवान होते हैं, मात्सर्य-रूपी मल से रहित चित्त से रहते हैं - उदारता से, शुद्ध मन से दान देने वाले, उत्सर्गरत, जिनके पास याचना की जा सकती है तथा जो दान का संविभाग करने वाले हैं; देवता भी उस गांव या निगम का गुणानुवाद करते हैं - अमुक गांव या निगम में स्त्री या पुरुष बुद्ध की शरण गये होते हैं ..... संविभाग करने वाले हैं। आनन्द! यह ऐसी सुगंधि है, जिसकी सुगंध वायु के अनुकूल भी जाती है, प्रतिकूल भी जाती है, अनुकूल-प्रतिकूल भी जाती है।"

"न पुप्फगन्धो पटिवातमेति, न चन्दनं तगरमल्लिका वा।
सतञ्च गन्धो पटिवातमेति, सब्बा दिसा सप्पुरिसो पवायति॥"

["फूल की सुगंध वायु के विरुद्ध नहीं जाती, न चंदन की, न तगर की और न मल्लिका की। सत्पुरुषों की सुगंध (गुण) वायु के विरुद्ध भी जाती है। सत्पुरुषों की सुगंध सभी दिशाओं में जाती है।"]

-अङ्गुत्तरनिकाय (१.३.८०), गन्धजातसुत्त

त्रिरत्न के प्रति श्रद्धाभाव

एक समय आयुष्मान आनन्द भगवान के पास गये। पास जाकर भगवान का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान आनन्द को भगवान ने यह कहा-

"आनन्द! जिसे अनुकंपा करने योग्य समझो और जो तुम्हें सुनने योग्य मानें - चाहे वे मित्र हों, चाहे सुहृद हों, चाहे रिश्तेदार हों, चाहे रक्त-संबंधी (परिवार) हों, उन्हें आनन्द! तीन बातों की सलाह देनी चाहिए, तीन बातों में स्थापित करना चाहिए, प्रतिष्ठित करना चाहिए।

"बुद्ध के प्रति अचल श्रद्धा की सलाह देनी चाहिए, बुद्ध के प्रति अचल श्रद्धा में स्थापित करना चाहिए, बुद्ध के प्रति अचल श्रद्धा में प्रतिष्ठित करना चाहिए - **'ऐसे ही तो हैं वे भगवान! अर्हत, सम्यक-संबुद्ध, विद्या तथा सदाचरण से संपन्न, उत्तम गति प्राप्त, समस्त लोकों के ज्ञाता, सर्वश्रेष्ठ, (पथ-भ्रष्ट घोड़ों की तरह) भटके लोगों को सही मार्ग पर ले आने वाले सारथी, देवताओं और मनुष्यों के शास्ता (आचार्य), बुद्ध भगवान।'**

"धर्म के प्रति अचल श्रद्धा की सलाह देनी चाहिए, धर्म के प्रति अचल श्रद्धा में स्थापित करना चाहिए, धर्म के प्रति अचल श्रद्धा में प्रतिष्ठित करना चाहिए - **'भगवान द्वारा भली प्रकार आख्यात किया गया यह धर्म सांदृष्टिक है, काल्पनिक नहीं, प्रत्यक्ष है, तत्काल फलदायक है, आओ और देखो (कहलाने योग्य है), निर्वाण तक ले जाने योग्य है, प्रत्येक समझदार व्यक्ति के साक्षात करने योग्य है।'**

"संघ के प्रति अचल श्रद्धा की सलाह देनी चाहिए, संघ के प्रति अचल श्रद्धा में स्थापित करना चाहिए, संघ के प्रति अचल श्रद्धा में प्रतिष्ठित करना चाहिए - **'सुमार्ग पर चलने वाला है भगवान का श्रावक-संघ, ऋजु मार्ग पर चलने वाला है भगवान का श्रावक-संघ, न्याय (सत्य) मार्ग पर चलने वाला है भगवान का श्रावक-संघ, यह जो (मार्ग-फल प्राप्त) आर्य-व्यक्तियों के चार जोड़े हैं, यानी आठ पुरुष पुद्गल हैं - यही भगवान का श्रावक-संघ है, (यही) आवाहन करने योग्य है, पाहुना (अतिथि) बनाने योग्य है, दक्षिणा देने योग्य है, अंजलिबद्ध (प्रणाम) किये जाने योग्य है। लोगों का यही श्रेष्ठतम पुण्य-क्षेत्र है।'**

"आनन्द! पृथ्वी-धातु, जल-धातु, अग्नि-धातु तथा वायु-धातु का 'अन्यथात्व' (परिवर्तितरूप) हो सकता है, किंतु बुद्ध में अचल श्रद्धा रखने वाले आर्यश्रावक का नहीं। इस विषय में 'अन्यथात्व' का अभिप्राय यह है, आनन्द! बुद्ध में अचल श्रद्धा रखने वाला आर्यश्रावक नरक में पैदा होगा, पशु-योनि में पैदा होगा या प्रेत-योनि में पैदा होगा – इसकी संभावना नहीं है।

"आनन्द! पृथ्वी-धातु, जल-धातु, अग्नि-धातु तथा वायु-धातु का 'अन्यथात्व' हो सकता है, किंतु धर्म में तथा संघ में अचल श्रद्धा रखने वाले आर्यश्रावक का नहीं। इस विषय में 'अन्यथात्व' का अभिप्राय यह है, आनन्द! धर्म तथा संघ में अचल श्रद्धा रखने वाला आर्यश्रावक नरक में पैदा होगा, पशु-योनि में पैदा होगा या प्रेत-योनि में पैदा होगा – इसकी संभावना नहीं है।

"आनन्द! जिसे अनुकंपा करने योग्य समझो और जो तुम्हें सुनने योग्य मानें – चाहे वे मित्र हों, चाहे सुहृद हों, चाहे रिश्तेदार हों, चाहे रक्त-संबंधी हों – उन्हें आनन्द! इन तीन बातों की सलाह देनी चाहिए, उनमें स्थापित करना चाहिए, प्रतिष्ठित करना चाहिए।"

-अङ्गुत्तरनिकाय (१.३.७६), निवेसकसुत्त

संघ-दक्षिणा अधिक फलप्रद

एक समय भगवान शाक्यों के जनपद कपिलवत्थु के निग्रोधाराम में विहार करते थे। उस समय महापजापति गोतमी एक जोड़ा नया धुस्सा लेकर भगवान के पास पहुँची। पास जाकर भगवान का अभिवादन कर एक ओर बैठ गयीं। एक ओर बैठी महापजापति गोतमी ने भगवान से कहा – "भंते! यह नया जोड़ा धुस्सा भगवान को अर्पित करती हूं। भंते! भगवान इसे स्वीकार करने की अनुकंपा करें।"

"गोतमी! इसे संघ को दे दे, संघ को देने से मैं भी पूजित होऊंगा और संघ भी।"

महापजापति गोतमी ने दूसरी बार तथा तीसरी बार भगवान से इसी प्रकार धुस्सों को स्वीकार करने की विनती की। भगवान ने दूसरी बार तथा तीसरी बार भी अपने वक्तव्य को दोहराया - "गोतमी! इसे संघ को दे दे, संघ को देने से मैं भी पूजित होऊंगा और संघ भी।"

तब आयुष्मान आनन्द ने भगवान से कहा – "भंते! महापजापति गोतमी भगवान का उपकार करनेवाली रही हैं, वे भगवान की मौसी रही हैं, विमाता रही हैं, क्षीरदायिका रही हैं, पोषिका रही हैं। भंते! जननी के मरने के बाद उन्होंने भगवान को दूध पिलाया। भंते! भगवान भी महापजापति के महाउपकारक हैं। भगवान के कारण वे बुद्ध की शरण आयीं, धर्म की शरण आयीं, संघ की शरण भी। बुद्ध में, धर्म में, संघ में अत्यंत श्रद्धायुक्त हुईं। भंते! भगवान के कारण उन्होंने निर्मल एवं श्रेष्ठ शीलों को धारण किया। भगवान के कारण दुःख, दुःख-समुदय, दुःख-निरोध एवं दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा के विषय में संशय-रहित हुई हैं। भंते! भगवान भी महापजापति के महान उपकारक हैं। अतः आप इनकी भेंट स्वीकार कर लें।"

इस पर भगवान ने कहा - "आनन्द! कोई व्यक्ति किसी व्यक्ति के सहारे बुद्ध, धर्म, संघ का शरणागत होता है। परंतु आदर-सत्कार, भेंट-सेवा, कदाचार से विरत होना, आर्यसत्यों के विषय में संशय-रहित होना एक व्यक्ति का दूसरे के प्रति प्रत्युपकार नहीं कहलाता।"

आगे भगवान ने दान ग्रहीता के आधार पर दान के दो प्रकार बताये – व्यक्तिगत और संघगत। तथागत अर्हत सम्यक-संबुद्ध के निमित्त दान देता है - यह पहली व्यक्तिगत दक्षिणा हुई। इस प्रकार पच्चेकबुद्ध, अर्हत, अर्हत्वफल के साक्षात्कार में लगे, अनागामी, अनागामीफल के साक्षात्कार में लगे, सकदागामी, सकदागामीफल के साक्षात्कार में लगे, सोतापन्न, सोतापन्नफल के साक्षात्कार में लगे, गांव (या संघ) के बाहर रहने वाले वीतराग, शीलवान पृथग्जन, दुःशील पृथग्जन, पशु-पक्षियों को दिया गया दान - इस प्रकार ये चौदह प्रकार के व्यक्तिगत दान हैं। आगे भगवान ने आयुष्मान आनन्द को इन दक्षिणाओं से दाता को होने वाले लाभ के बारे में भी बताया।

"आनन्द! पशु-पक्षियों के निमित्त किये गये दान की सौ गुना दक्षिणा की आशा रखनी चाहिए। दुःशील पृथग्जन के निमित्त दिये गये दान की हजार गुना दक्षिणा की आशा रखनी चाहिए। इसी प्रकार शीलवान पृथग्जन

के निमित्त दिये गये दान की एक लाख गुना, ग्राम (या संघ) के बाहर वीतराग के निमित्त दिये गये दान की एक करोड़ गुना, सोतापत्तिफल के साक्षात्कार में लगे हुए के निमित्त दिये गये दान की अपरिमेय लाभ की आशा रखनी चाहिए। सोतापन्न, सकदागामीफल के साक्षात्कार में लगे, सकदागामी, अनागामीफल के साक्षात्कार में लगे, अनागामी, अर्हत्वफल के साक्षात्कार में लगे, अर्हत, पच्चेकबुद्ध, तथागत अर्हत सम्यक-संबुद्ध के निमित्त दिये गये दान से होने वाले लाभ की तो बात ही क्या है!".

"आनन्द! संघ के लिए दी गयी ये सात दक्षिणाएं हैं - बुद्धप्रमुख (भिक्षु एवं भिक्षुणी) संघ के लिए दान देना - यह पहली संघगत दक्षिणा है। बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद दोनों संघों (भिक्षु-संघ एवं भिक्षुणीसंघ) को दान देना - यह दूसरी, केवल भिक्षु-संघ को ही दान देना - यह तीसरी, केवल भिक्षुणीसंघ को दान देना - यह चौथी, इतने भिक्षु एवं इतनी भिक्षुणियों को दान देना - यह पांचवीं, इतने भिक्षुओं को ही दान देना - यह छठी तथा इतनी भिक्षुणियों को ही दान देना यह सातवीं संघ के उद्देश्य से दी गयी दक्षिणा हुई।

"आनन्द! भविष्य में ऐसे भी भिक्षु होंगे जो नाममात्र एवं काषायवस्त्रधारी, दु:शील पापकर्मी में लिप्त होंगे। ऐसे दु:शील संघ के उद्देश्य दान किया जायगा। उस समय भी आनन्द! मैं संघगत दान-दक्षिणा को असंख्य, अपरिमेय फलवाली कहता हूं। हर हालत में मैं संघगत दक्षिणा को व्यक्तिगत दक्षिणा से अधिक फलदायक कहता हूं।

"आनन्द! ये चार दान (दक्षिणा) विशुद्धियां हैं -

"यहां आनन्द! दाता शीलवान हो, कल्याणधर्मा हो परंतु दान लेने वाला दु:शील हो, पापधर्मा हो, तो आनन्द! ऐसा दान दाता की ओर से शुद्ध कहलाता है, लेनेवाले की ओर से नहीं।

"यदि आनन्द! दाता दु:शील हो, पापधर्मी हो और लेने वाला सुशील एवं कल्याणधर्मा हो, तो ऐसा दान लेने वाले की ओर से शुद्ध कहलाता है, देने वाले की ओर से नहीं।

"आनन्द! यदि दाता तथा दान लेने वाला दोनों दु:शील एवं पापधर्मा हों, तो ऐसा दान दोनों पक्षों से अशुद्ध कहलाता है।

"आनन्द! यदि दाता तथा प्रतिग्राहक दोनों ही शीलवान एवं कल्याणधर्मा हों, तो आनन्द ऐसा दान दोनों पक्षों से शुद्ध कहलाता है।

"आनन्द! ये चार दान विशुद्धियां हैं।"

-मज्झिमनिकाय (३.४.३७६-३८१), दक्खिणाविभङ्गसुत्त

लाभ-सत्कार अहितकर

"भिक्षुओ! जो क्षीणास्रव अर्हत हैं उनके लिए भी मैं लाभ-सत्कार को विघ्नकारी बताता हूं।"

शास्ता के मुख से ऐसा सुनकर आयुष्मान आनन्द भगवान से बोले - "भंते! भला क्षीणास्रव भिक्षु को लाभ-सत्कार कैसे विघ्नकारी, अहितकर हो सकता है?"

"आनन्द! जिसका चित्त बिल्कुल विकारों से विमुक्त हो चुका है उसके लिए मैं लाभ-सत्कार को विघ्नकर, अहितकर नहीं बताता। पर, आनन्द! यदि कोई व्यक्ति अप्रमत्त, आतापी एवं दृढ़ संकल्प वाला होकर इसी जीवन में सुखविहार ही क्यों न करता हो उसके लिए भी लाभ, सत्कार, प्रशंसा विघ्नकारक ही होते हैं।

"आनन्द! निर्वाण-प्राप्ति के मार्ग में लाभ-सत्कार दारुण, कटु, तीक्ष्ण, घोर विघ्नकारी है।

"अत: आनन्द! ऐसा सीखना चाहिए - **'हम उत्पन्न हुए लाभ, सत्कार, प्रशंसा को छोड़ देंगे; उत्पन्न होने पर ये हमारे चित्त में ठहर नहीं पायेंगे।'"**

-संयुत्तनिकाय (१.२.१७९), भिक्खुसुत्त

धर्म का सनातन स्वरूप

एक समय भगवान सावत्थी (श्रावस्ती) में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे। आयुष्मान आनन्द के मन में यह विचार आया - 'भगवान ने सात बुद्धों के संबंध में बहुत कुछ कहा। उनकी आयु के बारे में, उनके माता-पिता के बारे में बताया। उनकी बोधि, उनके उपस्थाक, उनके अग्रश्रावक, श्रावक सम्मेलन, अग्रश्रावक सम्मेलन, इत्यादि के बारे में भी

बताया। पर, उनके उपोसथ व्रत के संवंध में कुछ भी नहीं कहा। वे भगवान क्या यही उपोसथ व्रत करते थे या कोई अन्य?'

तब, आयुष्मान आनन्द भगवान के पास गये। पास जाकर भगवान का अभिवादन कर एक बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान आनन्द ने भगवान से यह कहा – "भंते! पूर्व काल के बुद्ध उपोसथ व्रत किस प्रकार करते थे?"

भगवान ने कहा – "आनन्द! उन बुद्धों के उपोसथ काल मान अलग-अलग थे। पर, उनके उपोसथ के उपदेश में भिन्नता नहीं थी। भगवान विपस्सी सम्यक-संवुद्ध हर सात साल के वाद उपोसथ करते थे। उनके द्वारा किया गया एक दिन का उपोसथ ही सात वर्षों के लिए पर्याप्त होता था।

"भगवान सिखी और वेस्सभू हर छः वर्षों में एक वार उपोसथ करते थे। सम्यक-संवुद्ध ककुसंध और कोणागमन साल में एक वार किया करते थे। भगवान कस्सप छः माह में एक वार करते। उनका एक दिन का किया गया उपोसथ छः महीने तक पर्याप्त होता था।"

उन बुद्धों के काल मान के भेद को वताकर, भगवान ने कहा – 'आनन्द! पर सव बुद्धों के उपोसथ के उपदेश एक ही होते हैं। वे हैं -

"सब्बपापस्स अकरणं, कुसलस्स उपसम्पदा।
सचित्तपरियोदपनं, एतं बुद्धान सासनं॥

-धम्मपद १८३, बुद्धवग्गो

["सभी पापकर्मों (अकुशल कर्मों) को न करना, पुण्यकर्मों की संपदा संचित करना, (पांच नीवरणों से) अपने चित्त को परिशुद्ध करना (धोते रहना) - यही बुद्धों की शिक्षा है।]

****

"खन्ती परमं तपो तितिक्खा, निब्बानं परमं वदन्ति बुद्धा।
न हि पब्बजितो परूपघाती, न समणो होति परं विहेठयन्तो॥

-धम्मपद १८४, बुद्धवग्गो

["सहनशीलता और क्षमाशीलता परम तप है। बुद्ध (जन) निर्वाण को उत्तम बतलाते हैं। दूसरे का घात करने वाला प्रव्रजित नहीं होता और दूसरे को सताने वाला श्रमण नहीं हो सकता।]

"अनूपवादो अनूपघातो, पातिमोक्खे च संवरो।
मत्तञ्ञुता च भत्तस्मिं, पन्तञ्च सयनासनं।
अधिचित्ते च आयोगो, एतं बुद्धान सासनं॥"

-धम्मपद १८५, बुद्धवग्गो

["निंदा न करना, घात न करना, प्रातिमोक्ष (भिक्षु-नियमों) द्वारा अपने को सुरक्षित रखना, (अपने) आहार की मात्रा का जानकार होना, एकांत में सोना-वैठना और चित्त को एकाग्र करने के प्रयत्न में जुटना - यह (सभी) बुद्धों की शिक्षा है।"]

धर्मदूत के पांच लक्षण

एक समय भगवान कोसम्वी के घोसिताराम में विहार करते थे। उस समय आयुष्मान उदायी गृहीजन की एक वड़ी परिषद से घिरे हुए वैठे-वैठे धर्मदेशना दे रहे थे। आयुष्मान आनन्द ने आयुष्मान उदायी को गृहीजन की एक वड़ी परिषद से घिरे हुए वैठे-वैठे धर्मदेशना देते हुए देखा। यह देख कर वह भगवान के पास चले गये; पास जाकर भगवान का अभिवादन कर एक ओर वैठ गये। एक ओर वैठे आयुष्मान आनन्द ने भगवान को यह कहा - "भंते! आयुष्मान उदायी गृहीजन की एक वड़ी परिषद से घिरे हुए धर्मदेशना दे रहे थे।"

"आनन्द! दूसरों को धर्मदेशना देना निश्चय ही आसान नहीं होता है। आनन्द! दूसरों को धर्म सिखाने वाले को अपने भीतर पांच धर्म जगा कर दूसरों को धर्म सिखाना चाहिए।

कौन-से पांच?

- 'क्रमशः अपनी वात कहूंगा', यह सोच कर दूसरों को धर्म सिखाना चाहिए।
- 'पर्याय (दृष्टांत) देकर अपनी वात कहूंगा', यह सोच कर दूसरों को धर्म सिखाना चाहिए।
- 'दूसरों के प्रति दया (अनुकंपा) करते हुए अपनी वात कहूंगा', यह सोच कर धर्म सिखाना चाहिए।

- 'बिना भौतिक लाभ की आकांक्षा के अपनी बात कहूंगा', यह सोच कर दूसरों को धर्म सिखाना चाहिए।
- 'अपने आपको और दूसरे को कष्ट दिये बिना अपनी बात कहूंगा', यह सोच कर दूसरों को धर्म सिखाना चाहिए।

"आनन्द! दूसरों को धर्म सिखाना निश्चय ही आसान नहीं होता है। आनन्द! दूसरों को धर्म सिखाने वाले को ये पांच धर्म अपने भीतर जगा कर दूसरों को धर्म सिखाना चाहिए।"

-अङ्गुत्तरनिकाय (२.५.१५९), उदायीसुत्त

नव-प्रव्रजित के लिए पांच शिक्षाएं

एक समय भगवान मगध में अन्धकविन्द में विहार करते थे। तब आयुष्मान आनन्द भगवान के पास जाकर, भगवान का अभिवादन कर एक ओर खड़े हो गये। एक ओर खड़े आयुष्मान आनन्द को भगवान ने यह कहा - "आनन्द! इस धर्मविनय में जो भिक्षु अभी-अभी प्रव्रजित हुए हैं, लंबा समय नहीं हुआ है; उन्हें इन पांच बातों की शिक्षा देनी चाहिए, इनका अभ्यास कराना चाहिए, इनमें प्रतिष्ठित कराना चाहिए।

"कौन-सी पांच बातें?

"आवुसो! तुम शीलवान, प्रातिमोक्ष के नियमों का पालन करने वाले, उपयुक्त स्थानों में विहार करने वाले, छोटे-से-छोटे दोष के करने में भय मानने वाले, शिक्षाओं को अच्छी तरह पालन करने वाले बनो। इस प्रकार उन्हें प्रातिमोक्ष के नियमों की शिक्षा देनी चाहिए, इनका अभ्यास कराना चाहिए, इनमें प्रतिष्ठित कराना चाहिए।

"तुम लोग संयतेन्द्रिय होकर विचरो, स्मृति की रक्षा करते हुए विचरो, स्मृति को ज्ञान बनाते हुए विचरो, सुरक्षित मन वाले होकर विचरो, सुरक्षित चित्त वाले होकर विचरो। इस प्रकार उन्हें इंद्रिय संयम की शिक्षा देनी चाहिए, इनका अभ्यास कराना चाहिए, इनमें प्रतिष्ठित कराना चाहिए।

"आवुसो! तुम लोग मितभाषी बनो, संयत वाणी बोलने वाले होओ। इस प्रकार उन्हें मितभाषी के नियमों की शिक्षा देनी चाहिए, इनका अभ्यास कराना चाहिए, इनमें प्रतिष्ठित कराना चाहिए।

"आवुसो! तुम लोग आरण्यक होओ, जंगलों में एकांतवास करो। इस प्रकार उन्हें शरीर के एकांतवास की शिक्षा देनी चाहिए, इनका अभ्यास कराना चाहिए, इनमें प्रतिष्ठित कराना चाहिए।

"आवुसो! तुम सम्यकदृष्टि वाले होओ, सम्यकदर्शन से युक्त होओ - इस प्रकार उन्हें सम्यकदर्शन की शिक्षा देनी चाहिए, इनका अभ्यास कराना चाहिए, इनमें प्रतिष्ठित कराना चाहिए।

"आनन्द! इस धर्मविनय में जो भिक्षु अभी अभी प्रव्रजित हुए हैं, लंबा समय नहीं हुआ है; उन्हें इन पांच बातों की शिक्षा देनी चाहिए, इनका अभ्यास कराना चाहिए, इनमें प्रतिष्ठित कराना चाहिए।"

-अङ्गुत्तरनिकाय (२.५.११४), अन्धकविन्दसुत्त

उत्तरोत्तर कुशल कर्म करने का प्रयास

एक समय भगवान विशाल भिक्षु-संघ के साथ कोसल प्रदेश में चारिका करते थे। एक जगह आयुष्मान आनन्द ने भगवान को मुस्कराते देखा। उन्होंने सोचा, 'भगवान के मुस्कराने का क्या कारण है? तथागत बिना कारण नहीं मुस्कराते।' तब आयुष्मान आनन्द ने भगवान से पूछा - "भंते! भगवान के मुस्कराने का क्या कारण है?"

"आनन्द! प्राचीन समय में इस प्रदेश में एक बहुत बड़ा नगर था। भगवान अर्हत सम्यक-संबुद्ध कस्सप इस नगर में विहार करते थे। भगवान कस्सप का गवेसी नाम का गृहस्थ उपासक था, जो कि शीलपालन में दुर्बल था। उपासक गवेसी के पांच सौ साथी थे, वे सब भी शीलपालन में दुर्बल थे। आनन्द! तब गवेसी उपासक के मन में यह विचार आया - 'मैं इन पांच सौ उपासकों का बहुत उपकारी हूं, इनका मार्गदर्शक हूं, परंतु मैं भी इनकी ही तरह शीलपालन में दुर्बल हूं। इस तरह हम दोनों में यह समानता है, कोई विशेषता नहीं है, क्यों न मैं कोई विशेषता अर्जित करूं।'

"आनन्द! तब गवेसी उपासक ने अपने पांच सौ साथियों के पास जाकर कहा - 'आयुष्मानो! आज से तुम लोग मुझे शीलपालन का पूर्तिकारी समझना।' आनन्द! तब उन पांच सौ उपासकों के मन में यह विचार हुआ - 'ये गवेसी उपासक हमारे बहुत उपकारी रहे हैं, ये शीलपालन के लिए

दृढ़निश्चय हैं, क्यों न हम भी कुछ विशेषता प्राप्त करें।' तब वे पांच सौ उपासक गवेसी उपासक के पास जाकर यह बोले - 'आर्य गवेसी! आज से आप हम सभी को शीलपालन के पूर्तिकारी समझना।' तब गवेसी उपासक को विचार आया - 'मैं तथा मेरे पांच सौ साथी शीलपालन के पूर्तिकारी हुए। यह हम में समानता है; कोई अन्य विशेषता नहीं है, क्यों न मैं किसी अन्य विशेषता को अर्जित करूं।'

"आनन्द! तब गवेसी उपासक उन पांच सौ साथियों के पास जाकर बोला - 'आयुष्मानो! आज से मुझे ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला समझना, मैथुनधर्म से विरत समझना।'"

तब उन पांच सौ उपासकों ने गवेसी उपासक के दृढ़ निश्चय को देखकर वे सभी ब्रह्मचर्य का पालन करने लगे। गवेसी उपासक तथा उसके पांच सौ साथी ब्रह्मचर्य के पालन में समान हुए। गवेसी उपासक के मन में ऐसा चिंतन हुआ - हम दोनों में ये समानताएं हैं, अन्य विशेषताएं नहीं हैं। क्यों न मैं किसी अन्य विशेषता को अर्जित करूं।

"आनन्द! तब गवेसी उपासक ने अपने पांच सौ साथियों के पास जाकर कहा - 'आयुष्मानो! आज से मुझे एक समय भोजन करने वाला समझो, विकालभोजन से विरत समझो।'" तब गवेसी उपासक से प्रेरित होकर उसके पांच सौ साथी भी विकाल-भोजन से विरत रहने लगे।

तब गवेसी उपासक को अपने तथा अपने पांच सौ साथियों में एक जैसी समानता देखकर यह हुआ कि क्यों न मैं किसी अन्य विशेषता को अर्जित करूं। तब गवेसी उपासक भगवान कस्सप के पास जाकर उनसे प्रव्रजित हो उपसंपदा को प्राप्त हुआ।

"आनन्द! अप्रमादी होकर प्रयत्न करने से, यत्नवान होकर विहार करने से भिक्षु गवेसी ने थोड़े समय में ही, जिसके लिए कुलपुत्र घर का त्याग कर वेघर हो जाते हैं, उस ब्रह्मचर्य-मय सर्वश्रेष्ठ (पद) को इसी जीवन में स्वयं जानकर, साक्षात कर, प्राप्त कर विहार किया। उन्होंने जान लिया कि जन्म (का कारण) क्षीण हो गया, ब्रह्मचर्यवास पूरा हो गया, करणीय समाप्त हो गया और यहां के लिए (अर्थात, फिर जन्म लेने के लिए) कुछ शेष नहीं रहा। आनन्द! गवेसी भिक्षु अर्हतों में से एक हुआ।"

तब उन पांच सौ उपासकों ने आर्य गवेसी के प्रव्रजित हो जाने पर दाढ़ी मूंछ मुँड़वाकर घर से वेघर हो प्रव्रजित हो भगवान कस्सप के पास जाकर प्रव्रज्या एवं उपसंपदा प्राप्त की।

"आनन्द! तब भिक्षु गवेसी के मन में यह विचार आया - 'मैं इस अद्वितीय विमुक्तिसुख को प्राप्त कर विहार करता हूं। अच्छा हो यदि वे पांच सौ भिक्षु भी मेरे समान ही इस अद्वितीय विमुक्तिसुख को प्राप्त कर विहार करें।' थोड़े समय में ही पांच सौ भिक्षु अप्रमादी हो, प्रयत्न करते हुए अर्हत्वफल को प्राप्त हुए।

"इसलिए, आनन्द! यहां ऐसा सीखना चाहिए - **'हम उत्तरोत्तर (आगे से आगे) उत्तम से उत्तम (कुशल कर्म करने का) प्रयास करते हुए अनुत्तर विमुक्तिसुख का साक्षात्कार करेंगे।'** आनन्द! तुम्हें ऐसा ही सीखना चाहिए।"

-अङ्गुत्तरनिकाय (२.५.१८०), गवेसीसुत्त

आयुष्मान फग्गुन को तथागत का दर्शन-लाभ

उस समय आयुष्मान फग्गुन बहुत अधिक रुग्ण, दुःखित, वीमार थे। तब आयुष्मान आनन्द ने भगवान के पास जाकर आयुष्मान फग्गुन की बीमारी से भगवान को अवगत कराया तथा भगवान से आयुष्मान फग्गुन के पास चलने के लिए निवेदन किया। भगवान ने मौन रहकर स्वीकृति दी।

भगवान आयुष्मान फग्गुन के पास पहुँचकर उनसे वोले - "फग्गुन! ठीक तो हो? दुःखद वेदना हट तो रही है, लौट तो नहीं रही है? व्याधि का हटना तो मालूम हो रहा है; लौटना तो नहीं मालूम हो रहा है?"

"भंते! मुझे ठीक नहीं लग रहा है, दुःखद वेदनाएं हट नहीं रही हैं, बीमारी वढ़ती मालूम दे रही है।

"भंते! जैसे दो वलवान आदमी किसी दुर्वल आदमी को पकड़कर अंगारों के गड्ढे में डालकर जलायें, भंते! उसी प्रकार की जलन मेरे शरीर में हो रही है। भंते! मैं ठीक नहीं हूं, दुःखद वेदनाएं घटती प्रतीत नहीं हो रही हैं, वीमारी वढ़ती ही जा रही है।"

तव भगवान आयुष्मान फग्गुन को धार्मिक कथा द्वारा समुत्तेजित कर आसन से उठकर चले गये।

थोड़े समय पश्चात ही आयुष्मान फग्गुन की मृत्यु हो गयी। मृत्यु के पश्चात भी उनकी इंद्रियां प्रसन्न (कांतिमय) थीं। तत्पश्चात आयुष्मान आनन्द भगवान के पास गये। भगवान से कहा - "भंते! आयुष्मान फग्गुन के शरीर के शांत हो जाने पर भी उनकी इंद्रियां प्रसन्न (कांतिमय) थीं।"

"आनन्द! भिक्षु फग्गुन की इंद्रियां क्यों प्रसन्न नहीं होंगी! आनन्द! पहले भिक्षु फग्गुन का चित्त पांच अधोभागीय संयोजनों से मुक्त नहीं था, परंतु धर्मदेशना के सुनने के पश्चात उसका चित्त पांच अधोभागीय संयोजनों से मुक्त हो गया।

"आनन्द! उचित समय पर धर्म-श्रवण करने, उचित समय पर उनके अर्थ पर विचार करने के छः शुभ परिणाम होते हैं।

"आनन्द! किसी भिक्षु का चित्त पांच अधोभागीय संयोजनों से मुक्त नहीं होता। मृत्यु के समय उसे तथागत का दर्शन-लाभ प्राप्त होता है। तथागत उसे धर्म की देशना देते हैं जो कि आदि में कल्याणकारी, मध्य में कल्याणकारी, अंत में कल्याणकारी होती है। तथागत द्वारा दी गयी देशना अर्थ एवं व्यंजन से केवल परिपूर्ण, परिशुद्ध ब्रह्मचर्य को प्रकाशित करती है। उस देशना को सुनकर उस भिक्षु का चित्त पांचों अधोभागीय संयोजनों से मुक्त हो जाता है। आनन्द! उचित समय पर धर्म-श्रवण का यह पहला शुभ परिणाम होता है।

"फिर आनन्द! एक भिक्षु का चित्त पांच अधोभागीय संयोजनों से मुक्त नहीं होता। मृत्यु के समय उसे तथागत का तो दर्शन-लाभ प्राप्त नहीं होता है बल्कि उसे तथागत के श्रावक का दर्शन-लाभ प्राप्त होता है। तथागत का वह श्रावक उसे धर्म की देशना देता है जो कि आदि में कल्याणकारी, मध्य में कल्याणकारी, अंत में कल्याणकारी होती है। श्रावक द्वारा दी गयी देशना अर्थ एवं व्यंजन से केवल परिपूर्ण, परिशुद्ध ब्रह्मचर्य को प्रकाशित करती है। उस देशना को सुनकर उस भिक्षु का चित्त पांचों अधोभागीय संयोजनों से मुक्त हो जाता है। आनन्द! उचित समय पर धर्म-श्रवण का यह दूसरा शुभ परिणाम होता है।

"फिर आनन्द! एक भिक्षु का चित्त पांच अधोभागीय संयोजनों से मुक्त नहीं होता। मृत्यु के समय उसे न तो तथागत का, न ही तथागत के

किसी श्रावक का दर्शन-लाभ हो पाता है बल्कि उसने पूर्व में जो धर्म सुन रखा होता है, उस पर वह विचार करता है, चिंतन-मनन करता है। उसके ऐसा करने से उस भिक्षु का चित्त पांचों अधोभागीय संयोजनों से मुक्त हो जाता है। आनन्द! इस प्रकार पूर्व में सुने गये धर्म पर उचित समय पर विचार, चिंतन-मनन करने का यह तीसरा शुभ परिणाम होता है।

"आनन्द! किसी भिक्षु का चित्त पांच अधोभागीय संयोजनों से मुक्त होता है परंतु उपधिसङ्क्षय (पुनर्जन्म के आधार का क्षय) अर्थात सर्वोच्च निर्वाण-प्राप्ति की दृष्टि से मुक्त नहीं होता। मृत्यु के समय उसे तथागत का दर्शन-लाभ प्राप्त होता है। तथागत उसे धर्म की देशना देते हैं जो कि आदि में कल्याणकारी, मध्य में कल्याणकारी, अंत में कल्याणकारी होती है। तथागत द्वारा दी गयी देशना अर्थ एवं व्यंजन से केवल परिपूर्ण, परिशुद्ध ब्रह्मचर्य को प्रकाशित करती है। उस देशना को सुनकर उस भिक्षु का चित्त सर्वोच्च निर्वाण-प्राप्ति की दृष्टि से मुक्त हो जाता है। आनन्द! उचित समय पर धर्म-श्रवण का यह चौथा शुभ परिणाम होता है।

"फिर आनन्द! एक भिक्षु का चित्त पांच अधोभागीय संयोजनों से मुक्त होता है, परंतु सर्वोच्च निर्वाण-प्राप्ति की दृष्टि से मुक्त नहीं होता। मृत्यु के समय उसे तथागत का तो दर्शन-लाभ प्राप्त नहीं होता है बल्कि उसे तथागत के श्रावक का दर्शन-लाभ प्राप्त होता है। तथागत का वह श्रावक उसे धर्म की देशना देता है जो कि आदि में कल्याणकारी, मध्य में कल्याणकारी, अंत में कल्याणकारी होती है। श्रावक द्वारा दी गयी देशना अर्थ एवं व्यंजन से केवल परिपूर्ण, परिशुद्ध ब्रह्मचर्य को प्रकाशित करती है। उस देशना को सुनकर उस भिक्षु का चित्त सर्वोच्च निर्वाण-प्राप्ति की दृष्टि से मुक्त हो जाता है। आनन्द! उचित समय पर धर्म-श्रवण का यह पांचवां शुभ परिणाम होता है।

"फिर आनन्द! एक भिक्षु का चित्त पांच अधोभागीय संयोजनों से मुक्त होता है, परंतु सर्वोच्च निर्वाण-प्राप्ति की दृष्टि से मुक्त नहीं होता। मृत्यु के समय उसे न तो तथागत का, न ही तथागत के किसी श्रावक का दर्शन-लाभ हो पाता है बल्कि उसने पूर्व में जो धर्म सुन रखा होता है, उस पर वह विचार करता है, चिंतन-मनन करता है। उसके ऐसा करने से उस भिक्षु का चित्त सर्वोच्च निर्वाण-प्राप्ति की दृष्टि से मुक्त हो जाता है। आनन्द! इस

प्रकार पूर्व में सुने गये धर्म पर उचित समय पर विचार, चिंतन-मनन करने का यह छठा शुभ परिणाम होता है।

"आनन्द! उचित समय पर धर्म-श्रवण करने, उचित समय पर उनके अर्थ पर विचार करने के छः शुभ परिणाम होते हैं।"

-अङ्गुत्तरनिकाय (२.६.५६), फग्गुनसुत्त

भवमुक्ति के साधन

'निरोध' किसे कहते हैं?

एक समय आयुष्मान आनन्द भगवान के पास गये। पास जाकर भगवान का अभिवादन कर एक ओर वैठ गये। एक ओर वैठे आयुष्मान आनन्द ने भगवान से यह कहा - "'निरोध', 'निरोध' कहा जाता है। किन धर्मों के निरोध से 'निरोध' कहा जाता है?"

"आनन्द! रूप अनित्य है, संस्कृत (निर्मित) है, प्रतीत्यसमुत्पन्न है, क्षयधर्मा है, व्ययधर्मा है तथा निरोधधर्मा है। इसके निरोध को 'निरोध' कहा जाता है।"

इसी प्रकार वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान अनित्य हैं, संस्कृत (निर्मित) हैं, प्रतीत्यसमुत्पन्न हैं, क्षयधर्मा हैं, व्ययधर्मा हैं तथा निरोधधर्मा हैं। इनके निरोध को दृष्टिगत करते हुए ही 'निरोध', 'निरोध' - ऐसा कहा जाता है।

'लोक' क्यों कहा जाता है?

सावत्थी का प्रसंग।

तव आयुष्मान आनन्द भगवान के पास गये। पास जाकर भगवान का अभिवादन कर एक ओर वैठ गये। एक ओर वैठे आयुष्मान आनन्द ने भगवान से यह कहा – "भंते! 'लोक', 'लोक' कहा करते हैं। क्या होने से 'लोक' कहा जाता है?"

"आनन्द! जो प्रलोकधर्मा (नाशवान, भंगुर) है, आर्यविनय (धर्म) में इसे ही 'लोक' कहा जाता है। आनन्द! क्या प्रलोकधर्मा है?

"आनन्द! चक्षु प्रलोकधर्मा है। रूप प्रलोकधर्मा है। चक्षुर्विज्ञान प्रलोकधर्मा है। चक्षु-संस्पर्श प्रलोकधर्मा है। चक्षु के संस्पर्श से जो सुखद, दु:खद अथवा अदु:खद-असुखद वेदनाएं उत्पन्न होती हैं, वे प्रलोकधर्मा हैं।

"श्रोत्र प्रलोकधर्मा है। शब्द प्रलोकधर्मा है। श्रोत्रविज्ञान प्रलोकधर्मा है। श्रोत्र-संस्पर्श प्रलोकधर्मा है। श्रोत्र के संस्पर्श से जो सुखद, दु:खद अथवा अदु:खद-असुखद वेदनाएं उत्पन्न होती हैं, वे प्रलोकधर्मा हैं।

"घ्राण प्रलोकधर्मा है। गंध प्रलोकधर्मा है। घ्राणविज्ञान प्रलोकधर्मा है। घ्राण-संस्पर्श प्रलोकधर्मा है। घ्राण के संस्पर्श से जो सुखद, दु:खद अथवा अदु:खद-असुखद वेदनाएं उत्पन्न होती हैं, वे प्रलोकधर्मा हैं।

"जिह्वा प्रलोकधर्मा है। रस प्रलोकधर्मा है। जिह्वाविज्ञान प्रलोकधर्मा है। जिह्वा-संस्पर्श प्रलोकधर्मा है। जिह्वा के संस्पर्श से जो सुखद, दु:खद अथवा अदु:खद-असुखद वेदनाएं उत्पन्न होती हैं, वे प्रलोकधर्मा हैं।

"काया प्रलोकधर्मा है। स्प्रष्टव्य प्रलोकधर्मा है। कायविज्ञान प्रलोकधर्मा है। काय-संस्पर्श प्रलोकधर्मा है। काया के संस्पर्श से जो सुखद, दु:खद अथवा अदु:खद-असुखद वेदनाएं उत्पन्न होती हैं, वे प्रलोकधर्मा हैं।

"मन प्रलोकधर्मा है। धर्म प्रलोकधर्मा है। मनोविज्ञान प्रलोकधर्मा है। मन-संस्पर्श प्रलोकधर्मा है। मन के संस्पर्श से जो सुखद, दु:खद अथवा अदु:खद-असुखद वेदनाएं उत्पन्न होती हैं, वे प्रलोकधर्मा हैं।

"आनन्द! जो प्रलोकधर्मा (नाशवान, भंगुर) है, आर्यविनय (धर्म) में इसे ही 'लोक' कहा जाता है।"

-संयुत्तनिकाय (२.४.८४), पलोकधम्मसुत्त

भगवान से संक्षिप्त उपदेश सुना

एक ओर बैठे आयुष्मान आनन्द ने भगवान से कहा – "अच्छा हो, भंते! भगवान मुझे संक्षेप में धर्मोपदेश करें जिसे सुनकर मैं एकाकी, एकांत-सेवी, अप्रमादी, उद्योगी, संयमी होकर विहार करूं।"

"आनन्द! तुम क्या समझते हो चक्षु नित्य है या अनित्य?"

"अनित्य, भंते!"

"जो अनित्य है, वह दु:ख है या सुख?"

"दु:ख, भंते!"

"अच्छा, तो जो दु:ख परिवर्तनशील है और अनित्य है, उसे क्या ऐसा समझना ठीक है - 'यह मेरा है', 'यह मैं हूं', 'यह मेरी आत्मा है'?"

"नहीं, भंते!"

"रूप नित्य है या अनित्य?"

"अनित्य, भंते!"

"जो अनित्य है, वह दु:ख है या सुख?"

"दु:ख, भंते!"

"अच्छा, तो जो दु:ख परिवर्तनशील है और अनित्य है, उसे क्या ऐसा समझना ठीक है - 'यह मेरा है', 'यह मैं हूं', 'यह मेरी आत्मा है'?"

"नहीं, भंते!"

"चक्षुर्विज्ञान नित्य है या अनित्य?"

"अनित्य, भंते!"

"जो अनित्य है, वह दु:ख है या सुख?"

"दु:ख, भंते!"

"अच्छा, तो जो दु:ख परिवर्तनशील है और अनित्य है, उसे क्या ऐसा समझना ठीक है - 'यह मेरा है', 'यह मैं हूं', 'यह मेरी आत्मा' है?"

"नहीं, भंते!"

"चक्षु-संस्पर्श नित्य है या अनित्य?"

"अनित्य, भंते!"

"जो अनित्य है, वह दु:ख है या सुख?"

"दु:ख, भंते!"

"अच्छा, तो जो दु:ख परिवर्तनशील है और अनित्य है, उसे क्या ऐसा समझना ठीक है - 'यह मेरा है', 'यह मैं हूं', 'यह मेरी आत्मा' है?"

"नहीं, भंते!"

"चक्षु के संस्पर्श से जो सुखद, दु:खद, अदु:खद-असुखद वेदनाएं उत्पन्न होती हैं, वे नित्य हैं या अनित्य?"

"अनित्य, भंते!"

"जो अनित्य है, वह दुःख है या सुख?"

"दुःख, भंते!"

"अच्छा, तो जो दुःख परिवर्तनशील है और अनित्य है, उसे क्या ऐसा समझना ठीक है - 'यह मेरा है', 'यह मैं हूं', 'यह मेरी आत्मा' है?"

"नहीं, भंते!"

इसी प्रकार भगवान ने अन्य इंद्रियों - श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय तथा मन तथा उनके आलंबन - शब्द, गंध, रस, स्प्रष्टव्य तथा धर्म के नित्य तथा अनित्य होने के बारे में आयुष्मान आनन्द से पूछा। आयुष्मान आनन्द ऊपर-वर्णित व्याख्या के अनुसार ही भगवान को उत्तर देते रहे।

भगवान ने आगे कहा - "इस प्रकार आनन्द! श्रुतवान आर्यश्रावक को श्रोत्र के प्रति भी निर्वेद उत्पन्न होता है, घ्राण के प्रति भी निर्वेद उत्पन्न होता है, जिह्वा के प्रति भी निर्वेद उत्पन्न होता है, काया के प्रति भी निर्वेद उत्पन्न होता है, मन के प्रति भी निर्वेद उत्पन्न होता है। निर्वेद होने से वैराग्य होता है, वैराग्य से विमुक्ति, विमुक्त हो जाने पर 'विमुक्त हूं' यह ज्ञान होता है। वह यथाभूत जानता है - 'जन्म क्षीण हो गया, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, अब यहां जन्म लेने का कुछ भी कारण नहीं रहा।'"

-संयुत्तनिकाय (२.४.८६), संखित्तधम्मसुत्त

असली कठिनतम लक्ष्य

एक समय भगवान वेसाली (वैशाली) में महावन की कूटागारशाला में विहार कर रहे थे।

उस समय आयुष्मान आनन्द ने पूर्वाह्णकाल में वस्त्र धारण कर, पात्र-चीवर ले, भिक्षा के लिए वेसाली में प्रवेश किया।

आयुष्मान आनन्द ने बहुत से लिच्छवि-कुमारों को संस्थागार में धनुर्विद्या का अभ्यास करते हुए देखा, जो दूर से ही एक छोटे-से छेद में वाण-पर-वाण इस तरह फेंके जा रहे थे कि बिना चूके एक-पर-एक वाण जा रहा था। यह देख कर उनके मन में हुआ - 'अरे! ये लिच्छवि-कुमार सीखे हुए, खूब सीखे हुए हैं, जो दूर से ही एक छोटे-से छेद में वाण-पर-वाण इस तरह फेंके जा रहे हैं कि बिना चूके एक-पर-एक वाण जा रहा है।'

तत्पश्चात वेसाली में भिक्षाटन से लौट, भोजन कर लेने के उपरांत, आयुष्मान आनन्द भगवान के पास आये; पास आकर भगवान का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठे आयुष्मान आनन्द ने भगवान से यह कहा - "भंते! यहां मैंने पूर्वाह्णकाल में वस्त्र धारण कर, पात्र-चीवर ले, भिक्षा के लिए वेसाली में प्रवेश किया।

"भंते! वहां मैंने बहुत से लिच्छवि-कुमारों को संस्थागार में धनुर्विद्या का अभ्यास करते हुए देखा, जो दूर से ही एक छोटे-से छेद में वाण-पर-वाण इस तरह फेंके जा रहे थे कि बिना चूके एक-पर-एक वाण जा रहा था। यह देखकर मेरे मन में हुआ - 'अरे! ये लिच्छवि-कुमार सीखे हुए, खूब सीखे हुए हैं जो दूर से ही एक छोटे-से छेद में वाण-पर-वाण इस तरह फेंके जा रहे हैं कि बिना चूके एक-पर-एक वाण जा रहा था।'"

"आनन्द! तुम क्या समझते हो, कौन-सा काम अधिक दुष्कर अथवा दुःसाध्य है - यह जो दूर से ही एक छोटे-से छेद में वाण-पर-वाण इस तरह फेंकना कि बिना चूके एक-पर-एक वाण जा रहा था अथवा यह जो सात टुकड़ों में विभाजित बाल को एक सिरे से दूसरे सिरे तक वींध डालना है?"

"भंते! यह जो सात टुकड़ों में विभाजित बाल को एक सिरे से दूसरे सिरे तक वींध डालना है यही काम अधिक दुष्कर और दुःसाध्य है।"

"आनन्द! किंतु वे सब से कठिन लक्ष्य को वींधते हैं जो **'यह दुःख है'**, इसे (इस सच्चाई को) यथाभूत वींध लेते हैं;

'यह दुःख का समुदय है', इसे (इस सच्चाई को) यथाभूत वींध लेते हैं;

'यह दुःख का निरोध है', इसे (इस सच्चाई को) यथाभूत वींध लेते हैं;

और **'यह दुःख के निरोध का उपाय है'**, इसे (इस सच्चाई को) यथाभूत वींध लेते हैं।

इसलिए आनन्द 'यह दुःख है', (इस सच्चाई को वींधने का) प्रयास करना चाहिए;

'यह दुःख का समुदय है', (इस सच्चाई को वींधने का) प्रयास करना चाहिए;

'यह दुःख का निरोध है', (इस सच्चाई को वींधने का) प्रयास करना चाहिए;

और 'यह दुःख के निरोध का उपाय है', (इस सच्चाई को वींधने का) प्रयास करना चाहिए।"

-संयुत्तनिकाय (३.५.१११५), वालसुत्त

वेदना और उसका निरोध

आयुष्मानें आनन्द भगवान के पास गये; पास जाकर भगवान का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान आनन्द से भगवान ने पूछा – "आनन्द! वेदना कितनी हैं? वेदना का समुदय कैसे होता है? वेदना का निरोध कैसे होता है? वेदना का निरोधगामी मार्ग क्या है? वेदना का आस्वाद क्या है? वेदना का दोष क्या है? और वेदना का मोक्ष क्या है?"

"भंते! धर्म के मूल भगवान ही हैं। धर्म के नायक भगवान ही हैं। धर्म की शरण भी भगवान ही हैं। अच्छा हो कि भगवान ही इन सब वातों को समझाएं। भगवान से सुनकर भिक्षु भी उसे सीखेंगे और धारण करेंगे।"

तव भगवान ने कहा – "आनन्द! वेदना तीन प्रकार की हैं – सुखद वेदना, दुःखद वेदना और अदुःखद-असुखद वेदना। स्पर्श के समुदय से वेदना का समुदय होता है। स्पर्श के निरोध से वेदना का निरोध होता है।

"आनन्द! आर्य अष्टांगिक मार्ग ही वेदना का निरोधगामी मार्ग है जो है - **सम्यकदृष्टि, सम्यकसंकल्प, सम्यकवाणी, सम्यककर्मांत, सम्यकआजीविका, सम्यकव्यायाम, सम्यकस्मृति** और **सम्यकसमाधि**। वेदना के प्रत्यय से होने वाला सुख-सौमनस्य वेदना का आस्वाद है। वेदना का स्वभाव अनित्य है, परिवर्तनशील है, दुःखद है, यही वेदना का दोष है। वेदना के प्रति जो छंद-राग का प्रहाण है वह वेदना का निस्सरण (इससे छुटकारा) है।

"आनन्द! मैंने सिलसिलेवार संस्कारों का निरोध बताया है।

"आनन्द! क्षीणास्रव भिक्षु के राग, द्वेष और मोह निरुद्ध हो जाते हैं।"

-संयुत्तनिकाय (२.४.२६४), दुतियआनन्दसुत्त

ब्रह्मयान ही मुक्तियान है

सावत्थी का प्रसंग।

तव आयुष्मान आनन्द पूर्वाह्न में पात्र-चीवर ले सावत्थी में भिक्षाटन के लिए प्रविष्ट हुए। आयुष्मान आनन्द ने जाणुस्सोणि ब्राह्मण को सर्वथा श्वेत घोड़ी जुते हुए रथ पर सावत्थी से निकलते देखा। उसके रथ में श्वेत अलंकारों से युक्त श्वेत घोड़ियां जुती हुई थीं, श्वेत रथ, श्वेत साथी-सँगाती, श्वेत घोड़ों की लगाम, श्वेत चावुक, छत्र, चंदोआ, वस्त्र, जूते, पंखे इत्यादि सभी श्वेत रंग वाले थे। उसे देख लोग कहने लगे - "ब्रह्मा के समान यह यान! ब्रह्मयान-सदृश यह रथ!"

भिक्षाटन के उपरांत आयुष्मान आनन्द भगवान के पास गये। भगवान के पास जाकर भगवान का अभिवादन कर एक ओर वैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान आनन्द ने भगवान को जाणुस्सोणि ब्राह्मण के वृत्तांत को कह सुनाया। फिर पूछा – "भंते! क्या इस धर्मविनय में भी कोई यान है जिसे ब्रह्मयान कहा जा सके?"

"हां, आनन्द! कहा जा सकता है।

"आनन्द! इस आर्य अष्टांगिक मार्ग को 'ब्रह्मयान' भी कहते हैं, 'धर्मयान' भी और 'अनुत्तर संग्रामविजय' भी।

"आनन्द! **सम्यकदृष्टि** के भावित और वहुलीकृत करने से राग दूर होकर समाप्त हो जाता है, द्वेष दूर होकर समाप्त हो जाता है, मोह दूर होकर समाप्त हो जाता है।

सम्यकसंकल्प के भावित और वहुलीकृत करने से राग दूर होकर समाप्त हो जाता है, द्वेष दूर होकर समाप्त हो जाता है, मोह दूर होकर समाप्त हो जाता है।

सम्यकवाणी के भावित और वहुलीकृत करने से राग दूर होकर समाप्त हो जाता है, द्वेष दूर होकर समाप्त हो जाता है, मोह दूर होकर समाप्त हो जाता है।

सम्यककर्मांत के भावित और बहुलीकृत करने से राग दूर होकर समाप्त हो जाता है, द्वेष दूर होकर समाप्त हो जाता है, मोह दूर होकर समाप्त हो जाता है।

सम्यकआजीविका के भावित और बहुलीकृत करने से राग दूर होकर समाप्त हो जाता है, द्वेष दूर होकर समाप्त हो जाता है, मोह दूर होकर समाप्त हो जाता है।

सम्यकव्यायाम के भावित और बहुलीकृत करने से राग दूर होकर समाप्त हो जाता है, द्वेष दूर होकर समाप्त हो जाता है, मोह दूर होकर समाप्त हो जाता है।

सम्यकस्मृति के भावित और बहुलीकृत करने से राग दूर होकर समाप्त हो जाता है, द्वेष दूर होकर समाप्त हो जाता है, मोह दूर होकर समाप्त हो जाता है।

सम्यकसमाधि के भावित और बहुलीकृत करने से राग दूर होकर समाप्त हो जाता है, द्वेष दूर होकर समाप्त हो जाता है, मोह दूर होकर समाप्त हो जाता है।

"आनन्द! इस दृष्टि से भी जानना चाहिए। इस आर्य अष्टांगिक मार्ग को 'ब्रह्मयान' भी कहते हैं, 'धर्मयान' भी और 'अनुत्तर संग्रामविजय' भी।"

-संयुत्तनिकाय (३.५.४), जाणुस्सोणिब्राह्मणसुत्त

आत्म-अनुसंधान

एक समय भगवान कुरुओं के कुरुजनपद में कम्मासदम्म नामक निगम में विहार करते थे। वहां भगवान ने भिक्षुओं को संबोधित किया – 'हे भिक्षुओ!' 'भदंत!' कहकर उन भिक्षुओं ने भगवान को प्रतिवचन दिया। भगवान ने यह कहा – "भिक्षुओ! तुम अपने भीतर-ही-भीतर धर्म का आत्म-अनुसंधान करो।"

ऐसा सुनकर एक भिक्षु ने उत्तर दिया – "भंते! मैं अपने भीतर धर्म का खूब आत्म-अनुसंधान करता हूं।"

"भिक्षु! तुम अपने भीतर कैसे धर्म का आत्म-अनुसंधान करते हो?"

भिक्षु ने बतलाया पर उसका उत्तर भगवान को जँचा नहीं।

तब आयुष्मान आनन्द ने भगवान से कहा – "भंते! इसी का समय है। सुगत! इसी का समय है। भगवान आत्म-अनुसंधान का उपदेश करें। भगवान से सुनकर भिक्षु सीखेंगे, धारण करेंगे।"

"तो आनन्द! सुनो, अच्छी तरह मन में लाओ; मैं कहता हूं।"

"अच्छा, भंते!" कहकर भिक्षुओं ने भगवान को प्रत्युत्तर दिया।

भगवान बोले – "भिक्षुओ! ये जो जरा-मरण आदि नाना प्रकार के दुःख लोक में पैदा होते हैं, उनका निदान क्या है? उनका समुदय क्या है? किसके होने से जरा-मरण आदि दुःख होते हैं और किसके नहीं होने से जरा-मरण आदि दुःख नहीं होते हैं? इसी बात का अपने भीतर-ही-भीतर खूब मंथन करो, मनन करो। भिक्षुओ! मंथन करते हुए जब साधक तपता है तब यह जान लेता है कि ये दुःख उपधि (रूप, विज्ञान, संज्ञा, वेदना और संस्कार पंचस्कंध) के निदान से होते हैं। उपधि के होने से जरा-मरण-व्याधि आदि दुःख होते हैं और उपधि के नहीं होने से जरा-मरण-व्याधि आदि दुःख नहीं होते हैं। वह दुःख के समुदय को तथा उसके निरोध को भी जान लेता है। इस प्रकार वह साधक धर्म के सच्चे मार्ग पर आरूढ़ होता है, दुःख-क्षय तथा जरा-मरण-व्याधि के निरोध के सही मार्ग पर आरूढ़ होता है।"

"भिक्षुओ! उपधि का कारण तृष्णा है। साधक तृष्णा को जानकर अपने अंदर खूब मंथन करते हुए तृष्णा का समुदय जान लेता है। लोक में जो सुंदर और लुभावने विषय हैं, उन्हीं में तृष्णा उत्पन्न होती है और लिपटती है। लोक में चक्षु के विषय सुंदर और लुभावने हैं, इन्हीं में तृष्णा उत्पन्न होती है और लिपटती है। लोक में श्रोत्र के विषय सुंदर और लुभावने हैं, इन्हीं में तृष्णा उत्पन्न होती है और लिपटती है। इसी प्रकार लोक में घ्राण, जिह्वा, काय और मन के विषय सुंदर और लुभावने होते हैं। इन्हीं में तृष्णा उत्पन्न होती है और लिपटती है। जिसने तृष्णा को बढ़ाया उसने उपधि को बढ़ाया, जिसने उपधि को बढ़ाया उसने दुःख को बढ़ाया। फिर तो दुःख के बढ़ने पर वे जाति, जरा, मरण, शोक, रोना-पीटना, बेचैनी, परेशानी इत्यादि से मुक्त नहीं हुए। ऐसा मैं कहता हूं। भिक्षुओ! अतीत काल में ऐसा हुआ, भविष्य काल में ऐसा होगा और वर्तमान काल में ऐसा हो रहा है।"

आगे भगवान ने एक दृष्टांत से समझाया –"भिक्षुओ! जैसे कोई एक पानी का कटोरा हो; जो रंग, गंध और रस से युक्त हो, पर उसमें विषयुक्त पेय पदार्थ भरा हो। इसके बारे में विधिवत सचेत करने पर भी एक थका-मांदा और प्यासा व्यक्ति अपने को रोक न सके और उस पेय को ग्रहण कर ले, जिस कारण वह मृत्यु को प्राप्त हो जाय या मृतक-जैसा ही दुःख पाये। वैसे ही अतीत में जिन श्रमण या ब्राह्मणों ने लोक के सुंदर, सरस, लुभावने विषयों में अपना कुशल-क्षेम, सुख-आरोग्य देखकर उसमें रस लिया, उसका पान किया, वे दुःख से मुक्त नहीं हो सके। जो वर्तमान में ऐसा कर रहे हैं मुक्त नहीं हो रहे हैं और जो भविष्य में ऐसा करेंगे वे कदापि दुःख-मुक्त नहीं होंगे। पर, जिन्होंने तृष्णा को त्याग दिया, समझ-बूझ कर कटोरे का पेय पदार्थ छुआ तक नहीं, एकदम छोड़ दिया वे न तो मृत्यु को प्राप्त हुए, न ही मृतक-जैसे दुःख पाये।"

"भिक्षुओ! जिन श्रमण या ब्राह्मणों ने लोक के सुंदर, सरस और लुभावने विषयों को अनित्य, दुःख और अनात्म समझा, उन्हें अतीत काल में त्याग दिया, वे जाति, जरा, मरण, शोक, रोना-पीटना, बेचैनी, परेशानी इत्यादि से मुक्त हो गये। जो वर्तमान में त्याग रहे हैं, वे दुःख से मुक्त हो रहे हैं और जो भविष्य में त्याग देंगे वे भी दुःख से मुक्त हो जायेंगे। उनके मन में यह विवेक जागे कि वे अपनी प्यास पानी, दही, मट्ठा, लस्सी या जलजीरा से बुझा सकते हैं। लेकिन कटोरे के उस शीतल, सरस, सुगंधित पर प्राणांतक पेय की ओर ताकेंगे भी नहीं। ऐसा सोचकर उन्होंने तृष्णा का त्याग कर दिया। तृष्णा को त्याग दिया तो दुःख को त्याग दिया - ऐसा मैं कहता हूं।"

-संयुत्तनिकाय (१.२.६६), सम्मससुत्त

सुख-दुःख प्रतीत्य-समुत्पन्न

एक बार आयुष्मान आनन्द आयुष्मान भूमिज के साथ स्थविर सारिपुत्त के पास पहुँचे। दोनों भिक्षुओं ने महास्थविर से उपदेश सुना। फिर आयुष्मान आनन्द भगवान के पास गये और पूरा उपदेश उन्हें अक्षरशः कह सुनाया।

भगवान ने कहा – "आनन्द! सारिपुत्त ने विल्कुल ठीक कहा है। मैंने सुख-दुःख को प्रतीत्य-समुत्पन्न ही वताया है। किसके प्रतीत्य से, किस कारण से? स्पर्श के कारण से। ऐसा कहकर कोई मेरे सिद्धांत को यथार्थतः ठीक-ठीक वतलाता है। उसमें कुछ भी उलट-पुलट नहीं करता।

"आनन्द! जो कर्मवादी श्रमण या ब्राह्मण जिस सुख-दुःख को अकारण और आकस्मिक उत्पन्न हुआ मानते हैं, वह भी स्पर्श के होने से ही उत्पन्न होता है। विना स्पर्श के वे कुछ अनुभव कर लें, यह असंभव है।

"आनन्द! चाहे अविद्या के कारण, चाहे जान-बूझ कर और चाहे विना जाने-बूझे अनजाने में भी जो कर्म किये जाते हैं उनकी चेतना से ही अपने अंदर सुख-दुःख पैदा होते हैं।"

फिर तथागत ने आयुष्मान आनन्द को एक पूर्व-प्रसंग सुनाया। एक वार वे वेळुवन में विहार कर रहे थे। सुवह राजगह में भिक्षाटन के लिए निकले, पर भिक्षु के लिए सवेरा होने के कारण वे तैर्थिक परिव्राजकों के आश्रम में चले गये। कुशल-क्षेम के बाद तैर्थिकों ने वही प्रश्न – जिसका उत्तर सारिपुत्त ने दिया है – भगवान से भी पूछा। भगवान ने संक्षेप में उसका उत्तर दे दिया।

आयुष्मान आनन्द ने कहा – "भंते! आश्चर्य है! अद्भुत है!! इतने संक्षेप में यह उत्तर दे दिया गया। यदि, यही उत्तर विस्तार से कहा जाता, तो बड़ा ही गंभीर होता।"

"तो, आनन्द! तुम इसे विस्तार से कहो।"

"भंते! यदि मुझसे कोई पूछे, आवुस आनन्द! जरा-मरण का निदान क्या है? समुदय क्या है? उत्पत्ति क्या है? और उद्गम क्या है? तो, मैं ऐसा उत्तर दूंगा – आवुस! जरा-मरण का निदान जाति है। समुदय जाति है। उत्पत्ति जाति है और उद्गम भी जाति ही है। जाति का निदान भव है, भव का निदान उपादान है। उपादान का निदान तृष्णा है। तृष्णा का निदान वेदना है और वेदना का निदान स्पर्श है।

"भंते! यदि मुझसे कोई पूछे – 'आवुस आनन्द! स्पर्श का निदान क्या है?' तो मैं उत्तर दूंगा – स्पर्श का निदान सळायतन (छः स्पर्शायतन) है। इन्हीं छः स्पर्शायतनों के विल्कुल रुक जाने से स्पर्श का होना रुक जाता है।

स्पर्श के रुक जाने से वेदना रुक जाती है। वेदना के रुकने से तृष्णा रुक जाती है। तृष्णा के रुकने से उपादान रुक जाता है। उपादान के रुकने से भव रुक जाता है। भव के रुकने से जाति रुक जाती है। और जाति के रुकने से जरा, मरण, शोक, रुदन, क्रंदन, दुःख, वेचैनी, परेशानी आदि सब रुक जाते हैं। इस तरह सारा दुःख-समूह ही रुक जाता है। भंते! ऐसा पूछे जाने पर मैं यह उत्तर दूंगा।"

आयुष्मान आनन्द के उत्तर पर हर्ष व्यक्त करते हुए भगवान ने उनका अनुमोदन किया।

-संयुत्तनिकाय (१.२.२५), भूमिजसुत्त

मूर्ख और पंडित की पहचान

एक वार भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे। वहां भगवान ने भिक्षुओं को संवोधित करते हुए कहा कि जो कोई भय, उपद्रव, उपसर्ग उत्पन्न होते हैं, वे मूर्ख से उत्पन्न होते हैं, पंडित से नहीं। जैसे भिक्षुओ, घास-फूस के वने घर से निकली आग एक अच्छे लिपे-पुते, हवादार, खिड़की-दरवाजे वाले घर को भी जला देती है उसी प्रकार जो कोई भय, उपद्रव, उपसर्ग उत्पन्न होते हैं, वे मूर्ख से उत्पन्न होते हैं, पंडित से नहीं। अतः तुम्हें सीखना चाहिए - **'हम पंडित, मीमांसक बनेंगे।'**

तव आयुष्मान आनन्द द्वारा यह पूछे जाने पर कि किसमें कुशल होने से भिक्षु को पंडित, मीमांसक कहा जा सकता है, भगवान ने कहा कि जव वह 'धातु-कुशल', 'आयतन-कुशल', 'प्रतीत्यसमुत्पाद-कुशल' तथा 'स्थानास्थान-कुशल' होता है, तव वह वैसा कहे जाने का अधिकारी होता है।

तत्पश्चात भगवान ने एक-एक पर प्रकाश डाला।

धातु-कुशल -

"भंते! कितने से कोई भिक्षु 'धातु-कुशल' कहलाता है?"

"आनन्द! ये अट्ठारह धातुएं हैं -

चक्षुधातु, रूपधातु, चक्षुर्विज्ञानधातु;

श्रोत्रधातु, शब्दधातु, श्रोत्रविज्ञानधातु;

घ्राणधातु, गंधधातु, घ्राणविज्ञानधातु;

जिह्वाधातु, रसधातु, जिह्वाविज्ञानधातु;

कायधातु, स्प्रष्टव्यधातु, कायविज्ञानधातु;

मनोधातु, धर्मधातु एवं मनोविज्ञानधातु।

जो भिक्षु इनको अच्छी तरह जानता-देखता है, वह 'धातु-कुशल' कहलाता है।"

"क्या भंते! कोई और भी विकल्प है जिससे कोई भिक्षु 'धातु-कुशल' कहलाता है?"

"आनन्द! धातुएं छः प्रकार की होती हैं - पृथ्वीधातु, जलधातु, अग्निधातु, वायुधातु, आकाशधातु एवं विज्ञानधातु। जो भिक्षु इनको अच्छी तरह जानता-देखता है, वह भी धातु-कुशल कहलाता है।"

आयुष्मान आनन्द की जिज्ञासा को शांत करते हुए भगवान ने आगे कहा - "आनन्द! धातु छः प्रकार की होती हैं - सुखधातु, दुःखधातु, सौमनस्यधातु, दौर्मनस्यधातु, उपेक्षाधातु, अविद्याधातु।"

भगवान ने धातुओं की विभिन्न प्रकार से व्याख्या की तथा वतलाया जो भिक्षु इनको अच्छी तरह जानता-देखता है, वह 'धातु-कुशल' कहलाता है।

आयतन-कुशल -

"आनन्द! ये छः भीतरी एवं वाहरी आयतन कहलाते हैं - चक्षु एवं रूप, श्रोत्र एवं शब्द, घ्राण एवं गंध, जिह्वा एवं रस, काया एवं स्प्रष्टव्य तथा मन एवं धर्म। आनन्द जो इन छः भीतरी एवं वाहरी आयतनों को अच्छी प्रकार देखता व जानता है, ऐसा भिक्षु 'आयतन-कुशल' कहलाता है।"

प्रतीत्यसमुत्पाद-कुशल -

"आनन्द! 'प्रतीत्यसमुत्पाद-कुशल' वह होता है जो यह प्रज्ञापूर्वक जानता है - 'इसके होने से यह होता है, इसके उत्पन्न होने से यह उत्पन्न होता है; इसके न होने से यह नहीं होता है, इसके निरोध से यह निरुद्ध हो जाता है। जैसे - अविद्या के प्रत्यय (कारण) से संस्कार, संस्कार के प्रत्यय से विज्ञान, विज्ञान के प्रत्यय से नामरूप, नामरूप के प्रत्यय से छः आयतन,

छः आयतनों के प्रत्यय से स्पर्श, स्पर्श के प्रत्यय से वेदना, वेदना के प्रत्यय से तृष्णा, तृष्णा के प्रत्यय से उपादान, उपादान के प्रत्यय से भव, भव के प्रत्यय से जाति (जन्म), जाति के प्रत्यय से जरा, मरण, शोक, रोना-पीटना, दुःख, बेचैनी और परेशानी होती है। इस प्रकार समूचे दुःख-स्कंध का समुदय होता है।

"लेकिन अविद्या के प्रति संपूर्णतया विरक्त और (इस प्रकार) इसके निरुद्ध हो जाने से संस्कार का निरोध हो जाता है। संस्कार के निरुद्ध हो जाने से विज्ञान का निरोध हो जाता है। विज्ञान के निरुद्ध हो जाने से नामरूप का निरोध हो जाता है। नामरूप के निरुद्ध हो जाने से छः आयतनों का निरोध हो जाता है। छः आयतनों के निरुद्ध हो जाने से स्पर्श का निरोध हो जाता है। स्पर्श के निरुद्ध हो जाने से वेदना का निरोध हो जाता है। वेदना के निरुद्ध हो जाने से तृष्णा का निरोध हो जाता है। तृष्णा के निरुद्ध हो जाने से उपादान का निरोध हो जाता है। उपादान के निरुद्ध हो जाने से भव का निरोध हो जाता है। भव के निरुद्ध हो जाने से जन्म का निरोध हो जाता है। जन्म के निरुद्ध हो जाने से जरा, मरण, शोक, रोना-पीटना, दुःखित होना, बेचैन और परेशान होना निरुद्ध हो जाते हैं। इस प्रकार इस समूचे दुःख-स्कंध का निरोध हो जाता है।"

संभव-असंभव-कुशल

"आनन्द! इसकी कोई संभावना नहीं कि कोई सम्यकदृष्टि-संपन्न भिक्षु कायसंस्कार को नित्य, सुख समझें तथा धर्म को आत्मा के रूप में ग्रहण करें। जबकि किसी पृथग्जन से ऐसी आशा की जा सकती है।

"इसकी कोई संभावना नहीं है कि कोई दृष्टिसंपन्न-भिक्षु माता की हत्या करे, पिता की हत्या करे, अर्हत की हत्या करे, तथागत के शरीर से रक्तपात करे, संघ में फूट डाले तथा तथागत के अतिरिक्त किसी अन्य को अपना शास्ता बनावे। इसके विपरीत पृथग्जन से ऐसी आशा की जा सकती है कि वह ऐसे कार्यों में लिप्त हो।

"यह संभव नहीं है कि एक ही लोकधातु में एक ही समय दो सम्यक-संबुद्ध उत्पन्न हों; या फिर दो चक्रवर्ती राजा एक ही समय उत्पन्न हों। यह संभव है कि एक समय में अनेक अर्हत तथा एक ही चक्रवर्ती राजा उत्पन्न हो।

"यह संभव नहीं है कि कोई स्त्री सम्यक-संबुद्ध, चक्रवर्ती राजा, ब्रह्मा इत्यादि का पद प्राप्त कर सके।

"ऐसी संभावना नहीं है कि कायिक, वाचिक, मानसिक दुराचार का कर्मविपाक इष्ट एवं प्रिय हो। तथा कायिक, वाचिक, मानसिक सदाचार का कर्मविपाक अनिष्ट एवं अप्रिय हो।

"यह संभव नहीं है कि काया, वाणी, मन से सदाचार करने वाला देहपात के बाद मरणानंतर दुर्गति को प्राप्त नरक में उत्पन्न हो तथा काया, वाणी तथा मन से दुराचार करने वाला काया के छूटने के बाद सुगति को प्राप्त हो स्वर्ग में उत्पन्न हो।

"इस प्रकार जो इस तरह के कुशल तथा अकुशल स्थानों को प्रज्ञापूर्वक देखता व जानता है वह भिक्षु 'संभव-असंभव-कुशल' कहलाता है।"

भगवान ने यह भी बतलाया कि इस धर्म-पर्याय को 'बहुधातुक', 'चतुपरिवट्ट', 'धम्मादास', 'अमतदुन्दुभि' अथवा 'अनुत्तर सङ्गामविजय' भी कहा जा सकता है।

आयुष्मान आनन्द ने भगवान के भाषण का अभिनंदन किया।

-मज्झिमनिकाय (३.२.१२४-१३२), बहुधातुकसुत्त

आनापान-स्मृति समाधि से सुख विहार

एक समय भगवान वेसाली में महावन की कूटागार शाला में विहार करते थे। तब भगवान ने भिक्षुओं के बीच अशुभ-भावना की व्याख्या के साथ उसके अभ्यास की प्रशंसा भी की। फिर भगवान ने भिक्षुओं से कहा – "भिक्षुओ! मैं आधा महीना एकांतवास करूंगा। भिक्षान्न लाने वाले को छोड़ कर अन्य कोई मेरे पास न आये।"

'भंते! बहुत अच्छा' कह कर भिक्षुओं ने भगवान को प्रत्युत्तर दिया। उसके बाद से भिक्षान्न लाने वाले को छोड़ कर अन्य कोई भगवान के पास नहीं आता। सभी भिक्षु अशुभ-भावना के अभ्यास में जुट गये। अशुभ-भावना के अभ्यास द्वारा भिक्षुओं को अपने शरीर से घृणा होने लगी,

जो इतनी बढ़ती गयी कि गंदे शरीर से छुटकारा पाने के लिए भिक्षु आत्महत्या करने लगे। किसी दिन दस भिक्षु भी आत्म-हत्या कर लेते। बीस भी .....। तीस भी .....।

एकांतवास से बाहर निकलने पर भगवान ने आयुष्मान आनन्द से पूछा – "आनन्द! क्या बात है, भिक्षु-संघ की संख्या घटती-सी प्रतीत हो रही है?"

"हां, भंते! भगवान ने अशुभ-भावना के अभ्यास की प्रशंसा की। अतः भिक्षुओं ने अशुभ-भावना का अभ्यास करना प्रारंभ कर दिया। इसके अभ्यास के फलस्वरूप भिक्षुओं को अपने शरीर से घृणा होने लगी। इसलिए शरीर से छुटकारा पाने के लिए उन्होंने आत्महत्या प्रारंभ कर दी। यह क्रम दिनोंदिन बढ़ता ही गया। अच्छा हो भंते! भगवान कोई अन्य विधि समझावें जिससे भिक्षु-संघ घटने न पाय।"

"आनन्द! वेसाली के आस-पास जितने भी भिक्षु रहते हैं, सभी को सभागृह में एकत्र करो।"

'बहुत अच्छा', कह आयुष्मान आनन्द ने वेसाली के आस-पास के सभी भिक्षुओं को सभागृह में एकत्र किया। फिर जाकर भगवान से निवेदन किया – "भंते! भिक्षु-संघ एकत्र है, भगवान जिसका काल समझें।"

सभागार में पहुँचकर भगवान ने भिक्षुओं को संबोधित किया – "भिक्षुओ! आनापान-स्मृति समाधि के भावित और पुष्ट करने से शांत और सुंदर सुख विहार होता है। इसके अभ्यास से उत्पन्न होने वाले पापपूर्ण और अकुशल धर्म क्षीण होते जाते हैं, शांत होते जाते हैं।"

एक उपमा द्वारा भगवान ने और स्पष्ट किया - "भिक्षुओ! जैसे गर्मी के महीने में उड़ती धूल अचानक खूब वर्षा हो जाने से दब जाती है, शांत हो जाती है, वैसे ही आनापान-स्मृति समाधि के भावित करने और बहुलीकरण से शांत और सुंदर सुख का विहार होता है। इसके अभ्यास से उत्पन्न होने वाले पापपूर्ण और अकुशल धर्म क्षीण हो जाते हैं, शांत हो जाते हैं।"

कैसे पापपूर्ण और अकुशल धर्म क्षीण हो जाते हैं, शांत हो जाते हैं? आगे भगवान ने आनापान-स्मृति समाधि की भावना और अभ्यास की विधि की अच्छी तरह व्याख्या की।

-संयुत्तनिकाय (३.५.९८५), वेसालीसुत्त

आयुष्मान गिरिमानन्द को दस संज्ञाओं का ज्ञान

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार कर रहे थे। उस समय आयुष्मान गिरिमानन्द रोगी, दुःखी और बड़े बीमार थे। तब आयुष्मान आनन्द भगवान के पास गये। पास जाकर भगवान का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुए आयुष्मान आनन्द ने भगवान को यह कहा -

"भंते! आयुष्मान गिरिमानन्द रोगी, दुःखी और बड़े बीमार हैं। अच्छा हो भंते! भगवान आयुष्मान गिरिमानन्द के पास चलने की अनुकंपा करें।"

"आनन्द! यदि तू गिरिमानन्द भिक्षु के पास जाकर दस संज्ञाओं को कहेगा तो संभव है कि गिरिमानन्द भिक्षु का दस संज्ञाओं को सुनकर वह रोग एकदम शांत हो जाय।"

"कौन-सी दस?"

"अनित्य-संज्ञा, अनात्म-संज्ञा, अशुभ-संज्ञा, आदीनव-संज्ञा, प्रहाण-संज्ञा, विराग-संज्ञा, निरोध-संज्ञा, सारे लोक में अनभिरति संज्ञा, सभी संस्कारों के प्रति अनिच्छा-संज्ञा तथा आनापान-स्मृति।

"आनन्द! अनित्य-संज्ञा क्या है?

"आनन्द! यहां भिक्षु अरण्य में, वृक्ष के तले या शून्यागार में गया हुआ इस प्रकार विचार करता है - रूप अनित्य है, वेदना अनित्य है, संज्ञा अनित्य है, संस्कार अनित्य हैं, विज्ञान अनित्य है। ऐसे इन पांचों उपादान-स्कंधों में अनित्यानुपश्यी होकर विहरता है। आनन्द! इसे अनित्य-संज्ञा कहते हैं।

"आनन्द! अनात्म-संज्ञा क्या है?

"आनन्द! यहां भिक्षु अरण्य में, वृक्ष के तले या शून्यागार में गया हुआ इस प्रकार विचार करता है - चक्षु अनात्म है, रूप अनात्म हैं, श्रोत्र अनात्म है, शब्द अनात्म हैं, घ्राण अनात्म है, गंध अनात्म हैं, जिह्वा अनात्म है, रस अनात्म हैं, काय अनात्म है, स्पर्श अनात्म हैं, मन अनात्म है, धर्म अनात्म हैं। ऐसे इन छः भीतरी और बाहरी आयतनों में अनात्मानुपश्यी होकर विहरता है। आनन्द! इसे अनात्म-संज्ञा कहते हैं।

"आनन्द! अशुभ-संज्ञा क्या है?

"आनन्द! भिक्षु इसी काया को पांव के तलवे से ऊपर की ओर और केश वाले सिर से नीचे की ओर, त्वचा-पर्यंत, नाना प्रकार की गंदगियों से भरा हुआ जान विवेचन करता है - 'इस काया में हैं - केश, लोम, नख, दांत, त्वचा, मांस, नसें, हड्डी, मज्जा, गुर्दा, हृदय, यकृत, फुफ्फुसावरण, प्लीहा, फेफड़े, आंत, आंत्रयोजनी, आमाशय, पाखाना, पित्त, कफ, पीव, लहू, पसीना, चर्बी, आंसू, वसा, लार, नाक की सींढ, लसिका (शरीर के जोड़ों को चिकना रखने वाला तरल पदार्थ) (और) मूत्र।' इस प्रकार काया में अशुभानुपश्यी होकर विहरता है। आनन्द! इसे अशुभ-संज्ञा कहते हैं।

"आनन्द! आदीनव-संज्ञा क्या है?

"आनन्द! यहां भिक्षु अरण्य में, वृक्ष के तले या शून्यागार में गया हुआ इस प्रकार विचार करता है - यह शरीर बहुत दुःखदायी और दोषों से पूर्ण है, क्योंकि इस शरीर में नाना प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं। जैसे कि - चक्षुरोग, श्रोत्ररोग, घ्राणरोग, जिह्वारोग, काय-रोग, शीर्ष-रोग, कर्ण-रोग, मुख-रोग, दांत-रोग, ओष्ठ-रोग, क्षय(=कास), श्वास (=सांस) संबंधी रोग, पीनस (=नाक का रोग), दाह (=जलन), ज्वर, उदर-रोग, मूर्च्छा, अतिसार, शूल, हैजा, कोढ़, फोड़ा, किलास (=एक प्रकार का चर्म रोग), शोथ, मिरगी, दाद, खुजली, काछ, नखों से खुजलाने की जगह का रोग, चकत्ते, खून गिरने का पित्त, मधु-मेह, कंधे के रोग, फुंसियां, भगंदर, पित्त से उत्पन्न रोग, श्लेष्मा (=कफ) से उत्पन्न रोग, वायु से उत्पन्न रोग (=वात रोग), सन्निपात रोग, ऋतु के कारण उत्पन्न रोग, विषम दिनचर्या से उत्पन्न रोग, उपद्रवजन्य-रोग, कर्म-फल के कारण उत्पन्न रोग, जाड़ा, गर्मी, भूख, प्यास, पाखाना, पेशाव। ऐसे इस काया में आदीनवानुपश्यी होकर विहरता है। आनन्द! इसे आदीनव-संज्ञा कहते हैं।

"आनन्द! प्रहाण-संज्ञा क्या है?

"आनन्द! कोई भिक्षु उत्पन्न कामवितर्क को, उत्पन्न व्यापादवितर्क को, उत्पन्न विहिंसावितर्क को, उत्पन्न पापमय अकुशलधर्मों को स्वीकार नहीं करता है, त्याग देता है, दूर हटा देता है, नष्ट कर देता है, सदा के लिए लुप्त कर देता है। आनन्द! इसे प्रहाण-संज्ञा कहते हैं।

"आनन्द! विराग-संज्ञा क्या है?

"आनन्द! यहां भिक्षु अरण्य में, वृक्ष के तले या शून्यागार में गया हुआ इस प्रकार विचार करता है - 'सभी संस्कारों का शमन तथा सभी उपधियों (=आसक्तियों) का त्याग, तृष्णा का क्षय, विराग और निर्वाण ही शांत एवं सर्वोत्तम पद है। आनन्द! इसे विराग-संज्ञा कहते हैं।

"आनन्द! निरोध-संज्ञा क्या है?

"आनन्द! यहां भिक्षु अरण्य में, वृक्ष के तले या शून्यागार में गया हुआ इस प्रकार विचार करता है - 'सभी संस्कारों का शमन तथा सभी उपधियों (=आसक्तियों) का त्याग, तृष्णा का क्षय, निरोध और निर्वाण ही शांत एवं सर्वोत्तम पद है। आनन्द! इसे निरोध-संज्ञा कहते हैं।

"आनन्द! सारे लोक में अनभिरति-संज्ञा क्या है?

"आनन्द! जो भिक्षु लोक में ग्राह्य विषयों को, जो कि चित्त के अधिष्ठान, अभिनिवेश एवं अनुशय के कारण बन सकते हैं, छोड़ते हुए, उनको न ग्रहण करता हुआ धर्मसाधनारत रहता है - इसे सारे लोक में अनभिरति-संज्ञा कहते हैं।

"आनन्द! सारे संस्कारों में अनिच्छा-संज्ञा क्या है?

"आनन्द! यहां भिक्षु सभी संस्कारों से घृणा करता है, लज्जा करता है, जुगुप्सा करता है। आनन्द! इसे सारे संस्कारों में अनिच्छा-संज्ञा कहते हैं।

"आनन्द! आनापान-स्मृति क्या है?

"आनन्द! यहां भिक्षु अरण्य में, वृक्ष के तले या शून्यागार में जाकर, शरीर को सीधा रख, मुख के ऊपरी भाग पर स्मृति प्रतिष्ठापित कर, पालथी मार कर बैठता है। वह स्मृतिमान हो सांस लेता है, स्मृतिमान हो सांस छोड़ता है। वह लंबी सांस लेते हुए भली प्रकार जानता है कि मैं लंबी सांस लेता हूं, लंबी सांस छोड़ते हुए भली प्रकार जानता है कि मैं लंबी सांस छोड़ता हूं। वह छोटी सांस लेते हुए भली प्रकार जानता है कि मैं छोटी सांस लेता हूं, छोटी सांस छोड़ते हुए भली प्रकार जानता है कि मैं छोटी सांस छोड़ता हूं। वह सीखता है कि मैं सारी काया को अनुभव करते हुए सांस लूंगा, मैं सारी काया को अनुभव करते हुए सांस छोड़ूंगा। वह सीखता है कि

मैं काया के संस्कार को प्रश्रब्ध (शांत) कर सांस लूंगा, मैं काया के संस्कार को प्रश्रब्ध (शांत) कर सांस छोडूंगा।

वह सीखता है 'प्रीति को अनुभव करते हुए सांस लूंगा', 'प्रीति को अनुभव करते हुए सांस छोडूंगा।'

वह सीखता है 'सुख को अनुभव करते हुए सांस लूंगा', 'सुख को अनुभव करते हुए सांस छोडूंगा।'

वह सीखता है 'चित्त के संस्कार को अनुभव करते हुए सांस लूंगा', 'चित्त के संस्कार को अनुभव करते हुए सांस छोडूंगा।'

वह सीखता है 'चित्त के संस्कार को प्रश्रब्ध (शांत) कर सांस लूंगा', 'चित्त के संस्कार को प्रश्रब्ध (शांत) कर सांस छोडूंगा।'

वह सीखता है 'चित्त को अनुभव करते हुए सांस लूंगा', 'चित्त को अनुभव करते हुए सांस छोडूंगा।'

वह सीखता है 'चित्त को आनंदित करते हुए सांस लूंगा', 'चित्त को आनंदित करते हुए सांस छोडूंगा।'

वह सीखता है 'चित्त को एकाग्र करते हुए सांस लूंगा', 'चित्त को एकाग्र करते हुए सांस छोडूंगा।'

वह सीखता है 'चित्त को विमोचित करते हुए सांस लूंगा', 'चित्त विमोचित करते हुए सांस छोडूंगा।'

वह सीखता है 'अनित्य की अनुपश्यना करते हुए सांस लूंगा', 'अनित्य की अनुपश्यना करते हुए सांस छोडूंगा।'

वह सीखता है 'विराग की अनुपश्यना करते हुए सांस लूंगा', 'विराग की अनुपश्यना करते हुए सांस छोडूंगा।'

वह सीखता है 'निरोध की अनुपश्यना करते हुए सांस लूंगा', 'निरोध की अनुपश्यना करते हुए सांस छोडूंगा।'

वह सीखता है 'परित्याग की अनुपश्यना करते हुए सांस लूंगा', 'परित्याग की अनुपश्यना करते हुए सांस छोडूंगा।'

आनन्द! इसे आनापान-स्मृति कहते हैं।

"आनन्द! यदि तू गिरिमानन्द भिक्षु के पास जाकर इन दस संज्ञाओं को कहेगा तो संभव है कि गिरिमानन्द भिक्षु का इन दस संज्ञाओं को सुन कर वह रोग एकदम शांत हो जाय।"

तब आयुष्मान आनन्द भगवान के पास इन दस संज्ञाओं को अधिगृहीत कर आयुष्मान गिरिमानन्द के पास गये। पास जाकर आयुष्मान गिरिमानन्द को इन दस संज्ञाओं को कहा। तब इन दस संज्ञाओं को सुनकर आयुष्मान गिरिमानन्द का वह रोग एकदम शांत हो गया और आयुष्मान गिरिमानन्द उस रोग से शीघ्र उठ खड़े हुए तथा आयुष्मान गिरिमानन्द का वह रोग दूर हो गया।

-अङ्गुत्तरनिकाय (३.१०.६०), गिरिमानन्दसुत्त

दो प्रकार की पर्येषणा

एक समय भगवान अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे। उस समय भिक्षुओं ने आयुष्मान आनन्द से कहा - "आवुस आनन्द! भगवान के मुख से धर्मोपदेश सुने काफी समय वीत गया है। अच्छा हो आवुस! हमें भगवान के मुख से धर्मोपदेश सुनने को मिले।"

"चलो आयुष्मानो! जहां रम्मक व्राह्मण का आश्रम है, वहां भगवान के मुख से धर्मोपदेश सुनने को मिल सकता है।"

तब सभी भिक्षु रम्मक व्राह्मण के आश्रम पहुँचे। आयुष्मान आनन्द के निवेदन पर भगवान भी रम्मक व्राह्मण के आश्रम गये। वहां पर एकत्र हुए भिक्षुओं को भगवान ने कहा - **"भिक्षुओ! एकत्र होने पर तुम्हारे लिए दो ही काम करने योग्य होते हैं - धार्मिक कथा करना अथवा आर्य मौन का पालन।"**

तत्पश्चात भगवान ने कहा कि पर्येषणा (गवेषणा) दो प्रकार की होती है - आर्य पर्येषणा तथा अनार्य पर्येषणा। अनार्य पर्येषणा करने वाला व्यक्ति स्वयं जन्म, जरा, व्याधि, मरण, शोक, संक्लेश धर्मों वाला होकर इन्हीं धर्मों की खोज करता है। आर्य पर्येषणा करने वाला व्यक्ति स्वयं इन धर्मों वाला होकर इनके दुष्परिणामों को देखकर इनके विपरीत अनुत्तर, योगक्षेम, निर्वाण की खोज करता है।

भगवान ने वतलाया - "वुद्ध वनने से पहले मैं भी अनार्य पर्येषणा करता था। फिर मुझे याद आया कि मैं क्यों न आर्य पर्येषणा करूं? तव मैं तरुण अवस्था में ही घर वार छोड़कर उत्तम शांतिपद की तलाश में निकल पड़ा। आचार्य आलार कालाम ने मुझे आकिंचन्यायतन तक विद्या सिखायी और अपने वरावर के पद पर स्थापित किया। उद्दक रामपुत्त के आश्रम में उद्दक के मुँह से सुनकर स्वयं नैवसंज्ञानासंज्ञायतन ध्यान सीखा और उद्दक ने मुझे आचार्य का पद दिया। परंतु चूंकि ये धर्म न तो निर्वेद, न विराग, न निरोध, न उपशम, न अभिज्ञा, न संवोध और न निर्वाण के लिए थे, अतः मैं इन्हें अपर्याप्त जानकर फिर उत्तम शांतिपद की खोज में निकल गया।

"वहां से चारिका करते हुए मैं मगध में उरुवेला सेनानिगम में पहुँचा जो अत्यंत रमणीय और ध्यान के लिए अत्यंत उपयुक्त स्थान था। वहां पर मुझे निर्वाण का साक्षात्कार हुआ और यह ज्ञान उत्पन्न हुआ - 'मेरी विमुक्ति अचल हो गयी है, यह अंतिम जन्म है, अव नया जन्म नहीं हो सकता।'

"तव मुझे ऐसे लगा कि मुझे जो गंभीर, दुर्दर्श, दुर्ज्ञेय, शांत, उत्तम, तर्क से अप्राप्य, निपुण तथा पंडितों द्वारा जानने योग्य धर्म प्राप्त हुआ है, यदि मैं कामभोगों में रत लोगों को इसका उपदेश करूं तो वे इसे समझ नहीं पायेंगे और इससे केवल परेशानी ही होगी। अतः मेरा मन धर्म-प्रचार की ओर न झुक अल्प-उत्सुकता की ओर झुक गया।

"तव सहम्पति व्रह्मा ने प्रकट होकर मुझसे कहा - 'भंते! आप धर्मोपदेश करें। अल्प मल वाले प्राणी भी हैं, धर्म न सुनने से वे नष्ट हो जायेंगे। (उपदेश सुनकर) वे धर्म के ज्ञाता हो जायेंगे।'

"तव मैं वुद्ध-नेत्र से लोक को निहारने लगा। मैंने पाया कि इसमें दोनों तरह के प्राणी हैं - कम मैल वाले, अधिक मैल वाले; तीक्ष्ण-इंद्रिय, मंद-इंद्रिय; सुंदर शील-स्वभाव वाले, वुरे शील-स्वभाव वाले; सुगमता से सिखाये जाने योग्य, कठिनता से सिखाये जाने योग्य; इत्यादि। यह देख मैंने व्रह्मा से कहा - 'जिनके श्रोत्र हैं उनके लिए अमृत के द्वार खुल गये हैं। वे श्रद्धा से मुक्त होवें।'

"तव सर्वप्रथम मैंने आचार्य आलार कालाम को धर्मोपदेश देना चाहा परंतु वे एक सप्ताह पूर्व ही प्राण त्याग चुके थे। फिर मैंने उद्दक रामपुत्त को धर्मोपदेश देना चाहा परंतु वे भी पिछली रात प्राण छोड़ चुके थे। तव मैंने अपने पुराने साथियों (पंचवर्गीय भिक्षुओं) को धर्मोपदेश देने को सोचा जो उस समय वाराणसी के इसिपतन मिगदाय में विहार कर रहे थे।

"मैंने वहां पहुँच कर उन्हें धर्म सिखाया जिसके फलस्वरूप उन्होंने जन्म, जरा, व्याधि, मरण, शोक, संक्लेश धर्मों के दुष्परिणामों को जानकर, अनुत्तर योगक्षेम निर्वाण का साक्षात्कार कर लिया और उन्हें भी यह ज्ञान उत्पन्न हुआ - 'हमारी विमुक्ति अचल हो गयी है, यह अंतिम जन्म है, अव नया जन्म नहीं हो सकता।'"

इसके उपरांत भगवान ने भिक्षुओं को पांच कामगुणों के वारे में समझाया। भगवान ने कहा - "जैसे पाश-राशि (जाल के ढेर) में वँधा हुआ जंगली मृग मुसीवत में पड़ा होता है, वैसी ही दशा उन श्रमण-व्राह्मणों की होती है जो पांच कामगुणों में लिप्त रहते हैं। वंधन-प्राप्त मृग शिकारी के वश में होता है और कामगुणों में लिप्त श्रमण-व्राह्मण मार के वश में।"

"जो श्रमण-व्राह्मण पांच कामगुणों से अ-लिप्त रहते हैं वे मार की पहुँच से वाहर चले जाते हैं। मार की पहुँच से वाहर रहने का उपाय है प्रथम ध्यान, द्वितीय ध्यान, तृतीय ध्यान, चतुर्थ ध्यान, आकाशानन्त्यायतन, विज्ञानानन्त्यायतन, आकिंचन्यायतन, नैवसंज्ञानासंज्ञायतन और संज्ञावेदयितनिरोध की अवस्था को प्राप्त कर विहरना। इस अंतिम अवस्था में तो चित्त सर्वथा आस्रव-विहीन हो जाता है।"

-मज्झिमनिकाय (१.३.२७२-२८७), पासरासिसुत्त

संयोजनों के प्रहाण की प्रतिपदा

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे। वहां भगवान ने भिक्षुओं से कहा - "याद है न भिक्षुओ तुम्हें मेरा उपदेश, अधोभागीय संयोजन के वारे में?"

भगवान के ऐसा पूछने पर मालुक्यपुत्त ने कहा "हां भंते! याद है।"

तव भगवान के पूछने पर मालुक्यपुत्त भगवान द्वारा उपदिष्ट पांच अधोभागीय संयोजनों के संवंध में यथार्थ उत्तर नहीं दे सका।

तब आयुष्मान आनन्द ने कहा, "भंते! इसी का काल है, सुगत! इसी का काल है। भगवान पांच अधोभागीय संयोजनों का उपदेश करें। भगवान से सुनकर भिक्षु सीखेंगे, धारण करेंगे।"

"तो आनन्द, सुनो अच्छी तरह मन लगाकर सुनो।"

"अच्छा, भंते!" कहकर आनन्द ने उत्तर दिया।

भगवान ने कहा, "आनन्द, आर्यों के दर्शन से वंचित अनाड़ी व्यक्ति सत्कायदृष्टि से व्याप्त-चित्त हो विहरता है। वह उत्पन्न सत्कायदृष्टि से निकलने के रास्ते को ठीक से नहीं जानता। उसकी वह दृढ़ताप्राप्त सत्कायदृष्टि अधोभागीय संयोजन है। आर्यों के दर्शन से वंचित अनाड़ी व्यक्ति विचिकित्सा से व्याप्त-चित्त हो विहरता है। वह उत्पन्न विचिकित्सा से निकलने के रास्ते को ठीक से नहीं जानता है। उसकी वह दृढ़ताप्राप्त विचिकित्सा अधोभागीय संयोजन है।" वैसे ही भगवान ने समझाया कि आर्यों के दर्शन से वंचित अनाड़ी व्यक्ति शीलव्रत-परामर्श, कामच्छंद और व्यापाद (द्वेष-द्रोह) से व्याप्त-चित्त हो विहरता है। वह उत्पन्न हुए शीलव्रत-परामर्श, कामच्छंद और व्यापाद से निकलने के रास्ते को ठीक से नहीं जानता। उसके दृढ़ताप्राप्त शीलव्रत-परामर्श, कामच्छंद और व्यापाद अधोगामी संयोजन हैं।

आगे भगवान ने आर्यदर्शन से अभिज्ञ, आर्यधर्म से परिचित और आर्यधर्म में सुशिक्षित व्यक्ति के लिए इन पांचों संयोजनों से बाहर निकलने का रास्ता बताया।

"आनन्द, पांच अधोभागीय संयोजनों के नाश के लिए क्या मार्ग है, क्या प्रतिपदा है? यहां आनन्द! भिक्षु काम-भोगों और अकुशल धर्मों से दूर रहकर, वितर्क विचार सहित विवेकजन्य प्रीति, सुखमय साधना से आरंभ कर प्रथम ध्यान में विहरता है। वह जो कुछ रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान से संबंध रखने वाले धर्म हैं उन्हें अनित्य, दुःख, शून्य और अनात्म के तौर पर देखता है। वह अकुशल धर्मों का चित्त में निवारण कर निर्वाण पद की ओर चित्त को एकाग्र करता है। उस अमृतपद में स्थित हो वह आस्रवों के क्षय को प्राप्त करता है। यदि आस्रवों के क्षय को प्राप्त नहीं होता तो पांचों अधोभागीय संयोजनों के नाश से देवता हो, देवलोक में जाकर

निर्वाण को प्राप्त होता है। आनन्द! यह भी एक प्रतिपदा है पांच अधोभागीय संयोजनों के विनाश के लिए।

"और फिर आनन्द! भिक्षु वितर्क विचार के शांत होने पर ..... द्वितीय ध्यान को प्राप्त हो विहरता है। ..... तृतीय ध्यान को ..... चतुर्थ ध्यान को .....। ऐसे ही वह आकाशानन्त्यायतन, विज्ञानानन्त्यायतन, आकिंचन्यायतन और नैवसंज्ञानासंज्ञायतन को प्राप्त हो विहरता है। आनन्द ये भी प्रतिपदाएं हैं पांच अधोभागीय संयोजनों के विनाश के लिए।"

प्रसन्न और संतुष्ट हो आयुष्मान आनन्द ने भगवान के भाषण का अनुमोदन किया।

-मज्झिमनिकाय (२.२.१२१-१३३), महामालुक्यसुत्त

कलह-विवाद का पचड़ा

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे। उस काल में पञ्चकङ्ग स्थपति तथा आयुष्मान उदायी में इस बात पर मतभेद था कि भगवान ने कितने प्रकार की वेदनाएं कही हैं। एक कहता था तीन प्रकार की - सुखद, दुःखद एवं अदुःखद-असुखद। दूसरा कहता था दो प्रकार की - सुखद एवं दुःखद।

तब आयुष्मान आनन्द ने आयुष्मान उदायी और पञ्चकङ्ग स्थपति के वार्तालाप को सुना। वे भगवान के पास गये और दोनों का वार्तालाप शास्ता को कह सुनाया।

भगवान ने आयुष्मान आनन्द से कहा, "आनन्द! पञ्चकङ्ग स्थपति ने उदायी का कथन ठीक होते हुए भी उसका अनुमोदन नहीं किया और उदायी ने पञ्चकङ्ग स्थपति का कथन ठीक होते हुए उसे अनुमोदित नहीं किया।

"आनन्द! एक अर्थ से मैंने दो वेदनाएं भी कही हैं, तीन भी, पांच भी, छः भी, अठारह भी, छत्तीस भी, एक सौ आठ भी। इस प्रकार आनन्द! विशेष अर्थ और उद्देश्य से मैंने धर्म का उपदेश दिया है। ऐसे विशेष अर्थ से उपदिष्ट धर्म में जो एक दूसरे के सुभाषित को नहीं स्वीकार करते, नहीं अनुमोदित करते, उनके लिए यही आशा करनी चाहिए कि वे कलह-विवाद

करने वाले, एक दूसरे को मुखरूपी शस्त्र से वेधते हैं। पर जो ऐसे सुभाषित को स्वीकारते हैं, मानते हैं, अनुमोदित करते हैं, उनसे यही आशा करनी चाहिए कि वे एकजुट हो, निर्विवाद हो, दूध-जल की तरह मिश्रित हो, एक दूसरे का सम्मोदन करते हुए, एक दूसरे को प्रिय नेत्रों से देखते हुए विहरेंगे।"

तदनंतर भगवान ने यह भी स्पष्ट किया कि पांच कामगुणों के आश्रय से जो सुख, सौमनस्य उत्पन्न होता है, वह काम-सुख कहलाता है। इस सुख से वढ़कर, उत्तरोत्तर, दूसरे सुख भी होते हैं, जैसे प्रथम ध्यान, द्वितीय ध्यान, तृतीय ध्यान तथा चतुर्थ ध्यान और फिर आकाशानन्त्यायतन, विज्ञानानन्त्यायतन, आकिंचन्यायतन तथा नैवसंज्ञानासंज्ञायतन को प्राप्त हो विहरना और फिर इसका भी सर्वथा अतिक्रमण कर संज्ञावेदयितनिरोध को प्राप्त हो विहरना।

भगवान ने यह कहा। आयुष्मान आनन्द ने भगवान के भाषण का अभिनंदन किया।

-मज्झिमनिकाय (२.१.८८-९१), वहुवेदनीयसुत्त

तुम्हेहि किच्चं आतप्पं, अक्खातारो तथागता

कोई वुद्ध किसी व्यक्ति को मुक्त नहीं कर सकता। यदि ऐसा संभव होता, तो गोतम वुद्ध आयुष्मान आनन्द को तो अर्हत वना ही देते, क्योंकि वह उनके चचेरे भाई थे, जीवन-भर उनके साथ रहे और लंवे समय तक उनकी सेवा में लगे रहे। पर ऐसा नहीं हुआ। आयुष्मान आनन्द अपने सत्प्रयत्नों से भगवान के वताये मार्ग का अनुसरण कर भव-मुक्त हुए, अर्हत हुए। वस्तुतः हर व्यक्ति को अपने ही प्रयासों से मुक्त अवस्था प्राप्त करनी होती है।

भगवान ने कहा - **"तुम्हेहि किच्चं आतप्पं, अक्खातारो तथागता"** अर्थात तथागत तो केवल मार्ग आख्यात करने वाले हैं, विधि समझा देने वाले हैं, आखिर काम तो तुम्हें ही करना होगा। सारा रास्ता तो तुम्हें स्वयं चलना होगा।

मिथ्या भ्रम से भावी जनता सदैव दूर रहे इसलिए समय-समय पर भगवान देशना के वाद भिक्षुओं को सचेत किया करते - **"भिक्षुओ! जो एक अनुकंपक हितैषी शास्ता को करना चाहिए वह मैंने तुम्हारे लिए कर दिया। आनन्द! ये वृक्षमूल हैं, शून्यागार हैं, इनमें वैठ कर ध्यान करो। प्रमाद मत करो, पीछे अफसोस मत करना। तुम्हारे लिए यह हमारी शिक्षा है।"**

इंद्रिय-संयम का उपदेश

एक समय भगवान गजङ्गला के सुवेलुवन में विहार करते थे। तव पारासरिय का शिष्य उत्तर माणवक भगवान के पास आया। भगवान का अभिवादन कर एक ओर वैठ गया। एक ओर वैठे उत्तर माणवक को भगवान ने यह कहा - "उत्तर! क्या पारासरिय व्राह्मण शिष्यों को इंद्रिय-भावना संवंधी उपदेश करता है?"

"हां, गोतम! पारासरिय व्राह्मण अपने शिष्यों को इंद्रिय-भावना का उपदेश करता है।"

"तो उत्तर! वह कैसे उपदेश करता है?"

"हे गोतम! वह बताता है - आंख से रूप न देखना, कान से शब्द नहीं सुनना। इस प्रकार वह इंद्रिय-भावना का उपदेश करता है।"

"उत्तर! तुम्हारे गुरु के अनुसार अंधा इंद्रियों को भावित करने वाला होगा, बधिर इंद्रियों को भावित करने वाला होगा। उत्तर! अंधा आंख से रूप नहीं देखता, बधिर कान से शब्द नहीं सुनता।"

भगवान के ऐसा कहने पर उत्तर माणवक चुप, मूक, अधोमुख और प्रतिभाहीन हो बैठा रहा।

तब भगवान ने आनन्द को संबोधित करते हुए कहा, "आनन्द! पारासरिय ब्राह्मण श्रावकों को दूसरी तरह इंद्रिय-भावना का उपदेश करता है, पर आर्य-विनय (धर्म) में दूसरे तरह की 'सर्वोत्कृष्ट इंद्रिय-भावना' होती है।"

"भगवान! इसी का काल है, सुगत! इसी का काल है! आर्य-विनय की अनुत्तर इंद्रिय-भावना का उपदेश करें। भगवान से सुन कर वैसा ही भिक्षु धारण करेंगे।" आयुष्मान आनन्द ने भगवान से यह कहा।

"तो आनन्द! सुनो, अच्छी तरह मन में लाओ; मैं कहता हूं।"

"अच्छा, भंते!" कह कर आनन्द ने प्रत्युत्तर दिया।

"आनन्द! किसी भिक्षु को चक्षु से रूप देखने पर प्रिय लगता है, अप्रिय लगता है, तथा प्रिय-अप्रिय लगता है। वह प्रज्ञापूर्वक जानता है – 'मुझे यह प्रिय (मनाप), अप्रिय (अमनाप), प्रिय-अप्रिय (मनाप-अमनाप) उत्पन्न हुआ है। यह संस्कृत, स्थूल तथा प्रतीत्य-समुत्पन्न (कारण से उत्पन्न हुआ) है। उत्तम तो यही है जो विषयों के प्रति उपेक्षाभाव है।' तब उसमें उत्पन्न हुआ प्रिय, अप्रिय, प्रिय-अप्रिय निरुद्ध हो जाता है और उपेक्षाभाव टिका रहता है।

"जैसे आनन्द! आंख वाला पुरुष पलक चढ़ा कर गिरा दे, पलक गिरा कर चढ़ा दे; इसी तरह आनन्द! जिस किसी को इतना शीघ्र इतनी आसानी से प्रिय, अप्रिय, प्रिय-अप्रिय दूर हो जाते हैं, उसकी उतनी ही देर तक उपेक्षा ठहरती है। आनन्द! आर्य-विनय में यह चक्षु से जानी जाने वाली (चक्षुर्विज्ञेय) रूपों के विषय की अनुत्तर इंद्रिय-भावना कही जाती है।"

ऐसे ही भगवान ने आयुष्मान आनन्द को अन्य इंद्रियों तथा उनके विषयों की इंद्रिय-भावना के बारे में विस्तारपूर्वक उपमाओं सहित बतलाया। "श्रोत्र से शब्दों को सुनकर श्रोत्र-विज्ञेय शब्दों के विषय की, घ्राण से गंध को सूंघकर घ्राण-विज्ञेय गंधों के विषय की, जिह्वा से रस को चख कर जिह्वा-विज्ञेय रसों के विषय की, काया से स्प्रष्टव्य को स्पर्श कर काय-विज्ञेय स्प्रष्टव्यों के विषय की और मन से धर्मों को जानकर मनो-विज्ञेय धर्मों के विषय की इंद्रिय-भावना कही जाती है।"

फिर भगवान ने शैक्ष्य (जिसे अभी सीखना है, जो अभी अर्हत नहीं हुआ) - प्रतिपदा की जानकारी दी। इसमें शैक्ष्य इंद्रियों द्वारा अपने-अपने विषयों को ग्रहण करने से उत्पन्न होने वाले प्रिय, अप्रिय, प्रिय-अप्रिय से दुःखी होता है, घबराता है, घृणा करता है।

तदनंतर भगवान ने बतलाया कि कोई आर्य (अर्हत) कैसे भावितेंद्रिय होता है। ऐसा व्यक्ति अपनी इच्छानुसार प्रतिकूल में अप्रतिकूल-संज्ञी, अ-प्रतिकूल में प्रतिकूल-संज्ञी, प्रतिकूल एवं अ-प्रतिकूल में अ-प्रतिकूल-संज्ञी, अ-प्रतिकूल एवं प्रतिकूल में प्रतिकूल-संज्ञी और प्रतिकूल एवं अ-प्रतिकूल दोनों को छोड़ स्मृतिमान तथा संप्रज्ञानी होकर, उपेक्षावान हो विहार करता है।

अंत में भगवान ने कहा - "आनन्द! मैंने आर्य-विनय की अनुत्तर इंद्रिय-भावना का उपदेश किया, शैक्ष्य-प्रतिपदा का उपदेश किया, भावितेंद्रिय आर्य का भी उपदेश कर दिया। **आनन्द! जो एक अनुकंपक हितैषी शास्ता को करना चाहिए वह मैंने तुम्हारे लिए कर दिया। आनन्द! ये वृक्षमूल हैं, शून्यागार हैं, इनमें बैठ कर ध्यान करो। प्रमाद मत करो, पीछे अफसोस मत करना। तुम्हारे लिए यह हमारी शिक्षा है।"**

आयुष्मान आनन्द ने संतुष्ट हो भगवान के भाषण का अभिनंदन किया।

-मज्झिमनिकाय (३.५.४५३-४६३), इन्द्रियभावनासुत्त

उपेक्षाभाव से भी चिपकाव परिनिर्वृत्ति के लिए नहीं

एक समय भगवान कुरु जनपद में कुरुओं के कम्मासधम्म नामक निगम में विहार करते थे।

वहां भगवान ने भिक्षुओं को संबोधित किया - 'भिक्षुओ!', 'भदंत!' कह कर उन भिक्षुओं ने भगवान को प्रत्युत्तर दिया।

"भिक्षुओ! काम (विषय-भोग) अनित्य, तुच्छ, असत्य और नाशवान हैं। भिक्षुओ! ये मायामय बच्चों को बहलाने के समान हैं। भिक्षुओ! ये जो ऐहिक (=इस लोक के) काम हैं और जो पारलौकिक काम हैं, जो लौकिक काम-संज्ञा (=इस लोक के विषयों का चिंतन) और जो पारलौकिक काम-संज्ञा (=परलोक के विषयों का चिंतन) हैं, ये मार के फंदे हैं। ये मार के विषय हैं, यह मार की गोचरभूमि है। इनसे मन में अकुशल भाव - लोभ, द्वेष, मोह - उत्पन्न होते हैं जो कि आर्यश्रावक की साधना के अभ्यास में विघ्न डालते हैं।"

फिर भगवान ने कहा कि आर्यश्रावक विपुल, विशाल चित्त से लोक को अभिभूत कर, मन से अधिष्ठित कर विहरता है जिससे उसकी मानसिक बुराइयां दूर हो, चित्त प्रसन्नता से भर जाता है, और वह आनेञ्ज (अचंचलता) को प्राप्त होता है या प्रज्ञा द्वारा मुक्त होता है। इस बात की संभावना रहती है कि काया छोड़ने के पश्चात उसका विज्ञान आनेञ्ज को प्राप्त होवे। यह 'आनेञ्ज - के अनुकूल' की प्रतिपदा कहलाती है, जो तीन प्रकार की होती है।

इसके पश्चात भगवान ने इससे प्रणीततर 'आकिंचन्यायतन - के अनुकूल' तीन प्रतिपदाओं और फिर 'नैवसंज्ञानासंज्ञायतन' की तीन प्रतिपदाओं के वारे में वतलाया।

तदनंतर आयुष्मान आनन्द ने भगवान से पूछा कि यदि कोई भिक्षु ऐसे प्रतिपन्न हो - 'यह न होता, यह मेरा न होता; नहीं होगा, न मेरा होगा; जो है, जो हो गया है - उसे मैं प्रज्ञापूर्वक छोड़ता हूं' - इस प्रकार उपेक्षाभाव जगा ले, तो क्या वह परिनिर्वाण-लाभ कर पायगा अथवा नहीं?'

भगवान ने कहा कि जो कोई उपेक्षाभाव का अभिनंदन कर, उससे चिपकाव कर लेगा, वह परिनिर्वृत्त नहीं होगा और जो इसका अभिनंदन न कर, उससे चिपकाव पैदा नहीं करेगा, वह परिनिर्वृत्त होगा।

तत्पश्चात 'आर्य विमोक्ष' के वारे में पूछे जाने पर भगवान ने कहा कि ऐहिक तथा पारलौकिक काम, काम-संज्ञा, रूप, रूप-संज्ञा, आनेञ्ज-संज्ञा,

आकिंचन्यायतन-संज्ञा, नैवसंज्ञानासंज्ञायतन-संज्ञा - यहां तक सत्काय होता है। इससे चिपकाव न कर जो चित्त का विमोक्ष (छूटना) है, वह अमृत (निर्वाण) है।

अंत में भगवान ने कहा - **"आनन्द! जो एक अनुकंपक हितैषी शास्ता को करना चाहिए वह मैंने तुम्हारे लिए कर दिया। आनन्द! ये वृक्षमूल हैं, शून्यागार हैं, इनमें बैठ कर ध्यान करो। प्रमाद मत करो, पीछे अफसोस मत करना। तुम्हारे लिए यह हमारी शिक्षा है।"**

भगवान ने यह कहा। आयुष्मान आनन्द ने भगवान के भाषण का अभिनंदन किया।

-मज्झिमनिकाय (३.१.६६-७३), आनेञ्जसप्पायसुत्त

स्मृतिप्रस्थानों की भावना का फल

सावत्थी में अनाथपिण्डिक का जेतवनाराम।

एक दिन आयुष्मान आनन्द ने सुआच्छादित हो पात्र-चीवर लिया और एक भिक्षुणी-आवास में पहुँचे। वहां अपने लिए बिछे आसन पर वैठ गये।

उन्हें देखकर कुछ भिक्षुणियां उनके पास आयीं और अभिवादन करके एक ओर वैठ गयीं। वे आयुष्मान आनन्द से वोलीं - "भंते आनन्द! यहां कुछ भिक्षुणियों का चित्त चार स्मृतिप्रस्थानों (काया-, वेदना-, चित्त- एवं धर्म-) में भलीभांति सुप्रतिष्ठित हो गया है। अव वे अधिक-से-अधिक विशेषताओं को प्राप्त हो रही हैं।"

तव आयुष्मान आनन्द उन भिक्षुणियों को धर्मोपदेश से उत्साहित कर, प्रेरित कर, प्रहर्षित कर अपने आसन से उठ कर चले गये।

भिक्षाटन से लौट कर भोजन कर लेने पर वे भगवान के पास आये। उनका अभिवादन कर एक ओर वैठ गये। भिक्षुणियों के साथ हुए संवाद को उन्होंने भगवान से वताया।

तव भगवान वोले - "आनन्द! ठीक है, ठीक है। जिन भिक्षुओं या भिक्षुणियों का चित्त चार स्मृतिप्रस्थानों में सुप्रतिष्ठित हो गया है, उनसे यही आशा की जाती है कि वे अधिक-से-अधिक विशेषता को प्राप्त हों।

"किन चार में?

"आनन्द! भिक्षु काया में कायानुपश्यी, वेदना में वेदनानुपश्यी, चित्त में चित्तानुपश्यी और धर्मों में धर्मानुपश्यी हो विहार करता है। इस प्रकार विहार करने से उसका चित्त प्रमुदित होता है, प्रीतियुक्त होता है। शरीर प्रश्रब्ध होकर सुख को प्राप्त होता है। सुख होने पर चित्त समाहित होता है। वह वितर्क और विचार से रहित हो अपने भीतर-ही-भीतर स्मृतिमान हो 'सुखपूर्वक विहार कर रहा हूं' ऐसा जान लेता है।"

फिर भगवान ने प्रणिधान (श्रद्धेय आधार पर चित्त लगाना) और अप्रणिधान विधियों द्वारा स्मृतिप्रस्थानों की भावना के बारे में बताया। आगे आयुष्मान आनन्द को सचेत करते हुए कहा – **"आनन्द! जो एक अनुकंपक हितैषी शास्ता को करना चाहिए वह मैंने तुम्हारे लिए कर दिया। आनन्द! ये वृक्षमूल हैं, शून्यागार हैं, इनमें बैठ कर ध्यान करो। प्रमाद मत करो, पीछे अफसोस मत करना। तुम्हारे लिए यह हमारी शिक्षा है।"**

ऐसा सुनकर प्रसन्न और संतुष्ट मन से आयुष्मान आनन्द ने भगवान के कथन का अनुमोदन किया और वहां से उठकर चले गये।

-संयुत्तनिकाय (३.५.३७६), भिक्खुनुपस्सयसुत्त

आनन्द द्वारा धर्म की व्याख्या

कामराग से मुक्ति का उपाय

एक समय आयुष्मान आनन्द सावत्थी में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे। प्रातःकाल सुआच्छादित हो पात्र-चीवर ले वह सावत्थी में भिक्षाटन के लिए निकले। साथ में आयुष्मान वङ्गीस को भी ले लिया, जो उनके पीछे-पीछे चल रहे थे।

उस समय आयुष्मान वङ्गीस का चित्त क्षुब्ध और मोहत्रस्त हो रहा था, काम-राग से चंचल हो रहा था। तब आयुष्मान वङ्गीस ने आयुष्मान आनन्द से गाथाओं में कहा -

"मैं काम-राग से जल रहा हूं, मेरा चित्त छटपटा रहा है।

हे गोतमकुलोत्पन्न भिक्षु! कृपा करके इसे शांत करने का उपाय बतावें।"

"आवुस! चित्त के भटकने के कारण यह जल रहा है। राग उत्पन्न करने वाले निमित्त को त्याग दो। संस्कारों को पराये के जैसा देखो, उन्हें दुःख और अनात्म समझो, इस तरह बढ़े हुए इस महान राग को पुनः पुनः जलने दो। एकाग्र और सुसमाहित चित्त के लिए अशुभ को भावित करें। कायगतास्मृति का अभ्यास करें। अनिमित्त की भावना करते हुए, मान और अभिमान त्यागते हुए तुम शांत विचरण करोगे।"

-संयुत्तनिकाय (१.१.२१२), आनन्दसुत्त

छंद-राग ही बंधन है

एक समय आयुष्मान आनन्द और आयुष्मान कामभू कोसम्वी में घोसिताराम में विहार करते थे। तव आयुष्मान कामभू सायंकाल ध्यान से उठकर आयुष्मान आनन्द के पास आये और कुशल-क्षेम पूछकर एक ओर बैठ गये।

एक ओर वैठे आयुष्मान कामभू ने आयुष्मान आनन्द से कहा - "आयुष्मान आनन्द! क्या चक्षु रूप का वंधन (संयोजन) है या रूप चक्षु का? श्रोत्र शब्द का वंधन है या शब्द श्रोत्र का?" इसी प्रकार उन्होंने घ्राण-गंध ....., जिह्वा-रस ....., काय-स्प्रष्टव्य ..... और मन-धर्म ..... छहों इंद्रियों और उनके विषयों के संवंध में प्रश्न किया।

आयुष्मान आनन्द ने उत्तर दिया - "आयुष्मान कामभू! न तो चक्षु रूप का वंधन है, न रूप चक्षु का। अपितु इन दोनों के प्रत्यय से उत्पन्न होने वाला छंद-राग ही वंधन है। न श्रोत्र शब्द का वंधन है, न शब्द श्रोत्र का। अपितु इन दोनों के प्रत्यय से उत्पन्न होने वाला छंद-राग ही वंधन है।" इसी प्रकार उन्होंने घ्राण-गंध ....., जिह्वा-रस ....., काय-स्प्रष्टव्य ..... तथा मन-धर्म ..... - छहों इंद्रियों और उनके विषयों के वारे में समझाया।

"आयुष्मान! एक उपमा कहता हूं। उपमा से भी कितने विज्ञ लोग कहने का तात्पर्य समझ लेते हैं।

"आयुष्मान! एक काला वैल और एक उजला वैल है। दोनों को एक दूसरे के साथ एक रस्सी से वांध दिया गया। अव यदि कोई यह समझे कि काला वैल, उजले वैल का या उजला वैल, काले वैल का वंधन है तो क्या यह वात ठीक मानी जायगी?"

"नहीं, आयुष्मान आनन्द! दोनों वैल एक-दूसरे का वंधन नहीं हैं वल्कि वह रस्सी वंधन है, जिससे वे एक-साथ वँधे हैं।"

"आयुष्मान कामभू! वैसे ही चक्षु रूपों का, श्रोत्र शब्दों का, घ्राण गंधों का, जिह्वा रसों का, काया स्प्रष्टव्यों का और मन धर्मों का संयोजन नहीं होता, वल्कि जहां इनके प्रत्यय से छंद-राग उत्पन्न होता है वही वंधन होता है।"

-संयुत्तनिकाय (२.४.२३३), कामभूसुत्त

ब्रह्मचर्य का लक्ष्य

एक समय आयुष्मान आनन्द और आयुष्मान भद्द पाटलिपुत्त में कुक्कुटाराम में विहार करते थे।

सायंकाल आयुष्मान भद्द ध्यान से उठे और आयुष्मान आनन्द के पास आये। कुशल-क्षेम पूछकर वहीं वैठ गये।

वहां वैठे आयुष्मान भद्द ने आयुष्मान आनन्द से पूछा - "आवुस आनन्द! लोग 'अव्रह्मचर्य', 'अव्रह्मचर्य' कहा करते हैं। यह 'अव्रह्मचर्य' क्या है?"

"साधु, साधु, आवुस भद्द! भली है आवुस भद्द की उमंग!, भला है आवुस भद्द का प्रतिभान; जो यह कल्याणकारी प्रश्न पूछा।

"आवुस भद्द! यही अष्टांगिक मिथ्या-मार्ग 'अव्रह्मचर्य' कहलाता है जो है - मिथ्यादृष्टि, मिथ्यासंकल्प, मिथ्यावचन, मिथ्याकर्मांत, मिथ्याआजीविका, मिथ्याव्यायाम, मिथ्यास्मृति तथा मिथ्यासमाधि।"

इसी प्रकार आयुष्मान भद्द ने आगे पूछा - "आवुस आनन्द! लोग 'व्रह्मचर्य', 'व्रह्मचर्य' कहा करते हैं। यह 'व्रह्मचर्य' क्या है, इसका अंतिम उद्देश्य क्या है?"

"आवुस भद्द! यही आर्य अष्टांगिक मार्ग 'व्रह्मचर्य' कहलाता है जो है - **सम्यकदृष्टि**, **सम्यकसंकल्प**, **सम्यकवाणी**, **सम्यककर्मांत**, **सम्यकआजीविका**, **सम्यकव्यायाम**, **सम्यकस्मृति** तथा **सम्यकसमाधि**। इस व्रह्मचर्य का अंतिम उद्देश्य होता है राग-क्षय, द्वेष-क्षय तथा मोह-क्षय।"

"आवुस आनन्द! लोग 'व्रह्मचारी', 'व्रह्मचारी' कहा करते हैं। यह 'व्रह्मचारी' क्या है, इसका अंतिम उद्देश्य क्या है?"

"आवुस भद्द! जो इस आर्य अष्टांगिक मार्ग पर चलता है वही 'व्रह्मचारी' कहलाता है। राग, द्वेष और मोह का क्षय इसका अंतिम उद्देश्य होता है।"

-संयुत्तनिकाय (३.५.१८-२०), पठमकुक्कुटारामसुत्त, दुतियकुक्कुटारामसुत्त, ततियकुक्कुटारामसुत्त

धर्म के तीन स्कंध

भगवान बुद्ध के परिनिर्वाण के कुछ ही दिन वाद आयुष्मान आनन्द सावत्थी में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार कर रहे थे। उस समय तोदेय्यपुत्त सुभ नाम के माणवक ने उन्हें अपने घर पर आमंत्रित कर उनसे कहा - "आप भगवान गोतम के वहुत दिनों तक सेवक तथा समीपचारी रहे। कृपया यह वतलायें कि भगवान किन धर्मों की प्रशंसा

किया करते थे, किन धर्मों को वे जनता को सिखाते और उनमें प्रवेशित-प्रतिष्ठित करते थे?"

इस पर आयुष्मान आनन्द ने उसे भगवान द्वारा प्रशंसित तीन स्कंधों की जानकारी दी -

(१) आर्य शील-स्कंध, (२) आर्य समाधि-स्कंध, तथा (३) आर्य प्रज्ञा-स्कंध।

सुभ माणवक द्वारा पूछे जाने पर कि कोई कैसे शील-संपन्न होता है, आयुष्मान आनन्द ने कहा - "संसार में जब कोई तथागत उत्पन्न होता है तब वह अर्हत अवस्था पर पहुँचा हुआ, सम्यक-संबुद्ध, विद्या और आचरण में संपन्न, अच्छी गति वाला, लोकों का जानकार, श्रेष्ठ, लोगों को रास्ते पर लाने वाला, देवों और मनुष्यों का शास्ता होकर अपने ही प्रयत्नों से सारे लोकों का साक्षात्कार कर ऐसे धर्म का उपदेश देता है जो आदि में कल्याणकारी, मध्य में कल्याणकारी तथा अंत में कल्याणकारी होता है। ऐसे धर्म को सुन कर कोई भी गृहपति श्रद्धावान हो घर-बार त्याग कर प्रव्रजित हो जाता है और उनके द्वारा उपदिष्ट ब्रह्मचर्य का पालन करने में जुट जाता है। इसमें पुष्ट होने के लिए वह विविध प्रकार के शील पालन करता है। विविध प्रकार के शीलों का पालन कर 'शील-संपन्न' हो जाता है।

"फिर इंद्रियों को वश में करता हुआ, हर अवस्था में स्मृति और संप्रज्ञान बनाये हुए, संतुष्ट रह कर, पांचों नीवरणों का प्रहाण कर, एक-के-वाद-एक चारों ध्यान करके 'समाधिसंपन्न' हो जाता है।

"और तदनंतर अपने चित्त में विपश्यना-ज्ञान से लेकर आस्रवक्षय-ज्ञान तक विविध प्रकार के ज्ञान जगा कर 'प्रज्ञासंपन्न' हो जाता है। आस्रवक्षय-ज्ञान होने के साथ ही उस व्यक्ति को यह अभिज्ञात हो जाता है - 'मैं मुक्त हो गया! मैं मुक्त हो गया!'

"आर्य प्रज्ञा-स्कंध से परे करने को कुछ शेष नहीं रह जाता है।"

सुभ माणवक ने भी 'आर्य प्रज्ञा-स्कंध' की परिपूर्णता को जान कर आश्चर्य व्यक्त किया और शरण-त्रय ग्रहण करते हुए आयुष्मान आनन्द से याचना की कि वे उसे जीवन-भर के लिए अपनी शरण में आया हुआ उपासक स्वीकार करें।

-दीघनिकाय (१.१०.४४४-४८०), सुभसुत्त

चार स्मृतिप्रस्थानों के अभ्यास से अनागामी फल की प्राप्ति

एक समय आयुष्मान आनन्द राजगह के वेळुवन में कलन्दकनिवाप में विहार करते थे। उस समय सिरिवड्ढ गृहपति वड़ा बीमार पड़ा था। उसने अपने एक सेवक को बुलाया और कहा - "भणे! तू आयुष्मान आनन्द के पास जा और मेरी ओर से उनके चरणों में सिर से वंदना करना। उनसे कहना - 'भंते! सिरिवड्ढ गृहपति बड़ा बीमार है। वह आयुष्मान आनन्द के चरणों में प्रणाम करता है और कहता है कि भंते! वड़ा अच्छा होता यदि आयुष्मान आनन्द कृपा करके सिरिवड्ढ गृहपति के घर चलते।'"

सिरिवड्ढ के ऐसा कहने पर वह सेवक आयुष्मान आनन्द के पास गया और उन्हें अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया। उसने आयुष्मान आनन्द को सिरिवड्ढ गृहपति के संदेश को कह सुनाया।

मौन रहकर आयुष्मान आनन्द ने सिरिवड्ढ का निवेदन स्वीकार कर लिया। प्रातःकाल सुआच्छादित हो पात्र-चीवर ले आयुष्मान आनन्द सिरिवड्ढ के घर पहुँचे और बिछे आसन पर बैठ गये।

आयुष्मान आनन्द ने गृहपति से पूछा - "गृहपति! ठीक तो हो? दुःखद वेदना हट तो रही है, लौट तो नहीं रही है? व्याधि का हटना तो मालूम हो रहा है; लौटना तो नहीं मालूम हो रहा है?"

"नहीं भंते! दुःखद वेदना हट नहीं रही है, बीमारी घटती नहीं बल्कि बढ़ती ही मालूम होती है।"

"गृहपति! तुम्हें ऐसा सीखना चाहिए -

"(साढ़े तीन हाथ के काया-रूपी) लोक में राग और द्वेष को दूर कर, श्रमशील, स्मृतिमान और संप्रज्ञानी वन, काया में कायानुपश्यी होकर विहार करूंगा;

"(साढ़े तीन हाथ के काया-रूपी) लोक में राग और द्वेष को दूर कर, श्रमशील, स्मृतिमान और संप्रज्ञानी वन वेदनाओं में वेदनानुपश्यी होकर विहार करूंगा;

"(साढ़े तीन हाथ के काया-रूपी) लोक में राग और द्वेष को दूर कर, श्रमशील, स्मृतिमान और संप्रज्ञानी वन चित्त में चित्तानुपश्यी होकर विहार करूंगा;

"(साढ़े तीन हाथ के काया-रूपी) लोक में राग और द्वेष को दूर कर, श्रमशील, स्मृतिमान और संप्रज्ञानी वन धर्म में धर्मानुपश्यी होकर विहार करूंगा।"

"भंते! भगवान ने जिन चार स्मृतिप्रस्थानों की भावना और अभ्यास करना बताया है, मैं उन्हीं चार धर्मों के अनुसार विहार करता हूं। भंते! मैं काया में कायानुपश्यी हो विहार करता हूं, वेदना में ....., चित्त में..... और धर्मों में धर्मानुपश्यी हो विहार करता हूं।

"भंते! भगवान ने जो पांच अधोभागीय संयोजन बतलाये हैं, उनमें से मेरे अंदर कोई नहीं वचा है। सवका प्रहाण हो चुका है।"

"गृहपति! तुमने वहुत वड़ी संपत्ति प्राप्त कर ली है। गृहपति! तुम अनागामी फल को प्राप्त हुए हो।"

-संयुत्तनिकाय (३.५.३९५), सिरिवड्ढसुत्त

उपादान से अहंभाव

एक समय आयुष्मान आनन्द अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे। उन्होंने धर्म के प्रथम चरण की शिक्षा आयुष्मान मन्ताणिपुत्त पुण्ण से प्राप्त की थी। अपने उपाध्याय से पूर्व में प्राप्त धर्मोपदेश को वे सहभिक्षुओं को सुना रहे थे।

"आवुस! यह आयुष्मान मन्ताणिपुत्त पुण्ण जव हम नये भिक्षु थे, हम पर वड़े उपकार करने वाले थे। वे हमें ऐसा उपदेश देते थे - 'आवुस आनन्द! उपादान (आसक्ति) के कारण ही *अस्मिता* (=मैं हूं) होती है, अनुपादान के कारण नहीं।

किसके उपादान से *अस्मिता* होती है, अनुपादान के कारण नहीं?

रूप के उपादान से *अस्मिता* होती है, उसके अनुपादान से नहीं।

वेदना के उपादान से *अस्मिता* होती है, उसके अनुपादान से नहीं।

संज्ञा के उपादान से *अस्मिता* होती है, उसके अनुपादान से नहीं।

संस्कारों के उपादान से *अस्मिता* होती है, उनके अनुपादान से नहीं।

विज्ञान के उपादान से *अस्मिता* होती है, उसके अनुपादान से नहीं।"

"आवुस आनन्द! जैसे कोई अलंकार-प्रेमी युवती या जवान पुरुष दर्पण या परिशुद्ध, निर्मल, स्वच्छ जलपात्र में अपने चेहरे का प्रत्यवेक्षण करते हुए इसे उपादान के साथ देखे, अनुपादान के साथ नहीं। आवुस आनन्द! इसी प्रकार रूप के उपादान से अस्मिता होती है, उसके अनुपादान से नहीं।

वेदना के उपादान से *अस्मिता* होती है, उसके अनुपादान से नहीं।

संज्ञा के उपादान से *अस्मिता* होती है, उसके अनुपादान से नहीं।

संस्कार के उपादान से *अस्मिता* होती है, उसके अनुपादान से नहीं।

विज्ञान के उपादान से *अस्मिता* होती है, उसके अनुपादान से नहीं।"

आयुष्मान आनन्द ने भिक्षुओं से कहा – "आवुसो! मन्ताणिपुत्त पुण्ण हम नये भिक्षुओं के वड़े ही उपकारी हैं, हितैषी हैं, सुहृद हैं। वे हमें ऐसे-ऐसे उपदेश करते हैं। उनके उपदेश को सुनकर मैं सोतापन्न अवस्था को प्राप्त हो गया।"

भिक्षुओं ने आयुष्मान आनन्द के कथन का प्रसन्नमन अनुमोदन किया।

-संयुत्तनिकाय (२.३.८३), आनन्दसुत्त

ऐसा धर्म जिससे अमुक्त चित्त विमुक्त हो जाय

एक समय आयुष्मान आनन्द वेसाली के दक्षिण की ओर वेळुवगामक में विहार करते थे। उस समय अट्ठक नगर निवासी दसम गृहपति किसी काम से पाटलिपुत्त आया हुआ था। पाटलिपुत्त में अपना काम पूरा करके दसम गृहपति एक भिक्षु से आयुष्मान आनन्द का पता पूछ कर उनके दर्शनार्थ वेळुवगामक पहुँचा। वहां आयुष्मान आनन्द का अभिवादन कर एक ओर वैठ गया।

गृहपति ने आयुष्मान आनन्द से कहा, "भंते आनन्द! क्या जाननहार, देखनहार, अर्हत-अवस्था-प्राप्त, सम्यक-संबुद्ध भगवान ने कोई ऐसा एक धर्मोपदेश दिया है जिसमें प्रमादरहित, उद्योगशील, तत्पर होकर विहरते हुए, विमुक्त न हुआ चित्त विमुक्त हो जाय, पूरी तरह क्षीण न हुए आस्रव पूरी तरह क्षीण हो जायं, प्राप्त न हुआ अनुपम योगक्षेम (निर्वाण) प्राप्त हो जाय?"

"गृहपति! यहां कोई भिक्षु कामभोगों और अकुशल धर्मों से विरहित, वितर्क और विचार सहित, विवेकजन्य प्रीति-सुख वाले प्रथम ध्यान को प्राप्त हो विहरता है तब वह इसे अभिसंस्कृत (कृत) समझता हुआ इसे अपनी प्रज्ञा से अनित्य एवं निरोध स्वभाव वाला जानता है। इस ध्यान में अवस्थित हो वह आस्रवों के क्षय से औपपातिक अनागामी हो जाता है।"

आयुष्मान आनन्द ने ऐसे ही द्वितीय ध्यान, तृतीय ध्यान एवं चतुर्थ ध्यान, चारों ब्रह्मविहारों, आकाशानन्त्यायतन, विज्ञानानन्त्यायतन एवं आकिंचन्यायतन को लेकर भी गृहपति को समझाया।

तब गृहपति ने कहा - "भंते! जैसे कोई पुरुष एक निधि-मुख (खजाने के मुँह) को खोजते हुए एक ही वार ग्यारह निधिमुखों को पा जाय, ऐसे ही मैंने एक अमृत-द्वार को खोजते हुए एक ही वार ग्यारह अमृत-द्वार पा लिये हैं।"

तव प्रसन्नचित्त हो दसम गृहपति ने पाटलिपुत्त तथा वेसाली के भिक्षुओं को अपने हाथ से उत्तम भोजन कराया। एक-एक भिक्षु को एक-एक धुस्से का जोड़ा ओढ़ाया और आयुष्मान आनन्द को तीन चीवरों (=संघाटी, उत्तरासंग, अंतर्वासक) से आच्छादित किया तथा आयुष्मान आनन्द के लिए पांच सौ के मूल्य का विहार वनवाया और पांच सौ के मूल्य की पर्णशाला भी वनवायी।

-मज्झिमनिकाय (२.१.१७-२१), अट्ठकनागरसुत्त

आनन्द की धर्मदेशना की पद्धति

एक समय आयुष्मान आनन्द कोसम्बी के घोसिताराम में विहार कर रहे थे। उस समय आजीवक संप्रदाय का एक गृहस्थ शिष्य आयुष्मान आनन्द के पास आया। पास जाकर आयुष्मान आनन्द को प्रणाम कर एक ओर बैठ

गया। एक ओर बैठे उस आजीवक गृहस्थ ने आयुष्मान आनन्द को यह कहा -

"भंते आनन्द! वास्तव में किसका धर्म सु-आख्यात (भली प्रकार कहा गया) है? संसार में कौन ठीक मार्ग पर चलते हैं? संसार में कौन सुकर्मी हैं?"

इस पर आयुष्मान आनन्द ने गृहपति से ही पूछा - "हे गृहपति! तू क्या मानता है कि जो राग, द्वेष और मोह के प्रहाण का उपदेश देते हैं उनका धर्म भली प्रकार कहा गया है या नहीं? तुम्हारी क्या राय है?"

"भंते! जो राग, द्वेप, मोह के प्रहाण के लिए धर्मोपदेश देते हैं, उनका धर्म भली प्रकार कहा गया है, ऐसी मेरी राय है।"

"हे गृहपति! क्या मानते हो जो राग, द्वेप, मोह के प्रहाण में लगे हैं, संसार में वे ठीक मार्ग पर चल रहे हैं या नहीं? तुम्हारी क्या राय है?"

"भंते! जो राग, द्वेप तथा मोह के प्रहाण में लगे हैं, संसार में ठीक मार्ग पर चल रहे हैं, ऐसी मेरी राय है।"

"हे गृहपति! क्या मानते हो जिनके राग, द्वेप, मोह प्रहीण हो गये हैं, जड़ से जाते रहे हैं, कटे ताड़ के समान हो गये हैं, अभावप्राप्त हो गये हैं, भविष्य में पुनरुत्पत्ति की कोई संभावना नहीं रही है, वे संसार में सुकर्मी हैं या नहीं? तुम्हारी क्या राय है?"

"भंते! जिनके राग, द्वेप, मोह प्रहीण हो गये हैं, जड़ से जाते रहे हैं, कटे ताड़ के समान हो गये हैं, अभावप्राप्त हो गये हैं, भविष्य में पुनरुत्पत्ति की कोई संभावना नहीं रही है, वे संसार में सुकर्मी हैं, ऐसी मेरी राय है।"

"गृहपति अव तू ही यह कह रहा है - 'भंते! जो राग, द्वेप, मोह के प्रहाण के लिए धर्मोपदेश देते हैं, उनका धर्म भली प्रकार कहा गया है।' तू ही यह कह रहा है - 'भंते! जो राग, द्वेप, मोह के प्रहाण में लगे हैं, संसार में वे ठीक मार्ग पर चल रहे हैं।' तू ही यह कह रहा है - 'जिनके राग, द्वेप, मोह प्रहीण हो गये हैं, जड़ से जाते रहे हैं, कटे ताड़ के समान हो गये हैं, अभावप्राप्त हो गये हैं, भविष्य में पुनरुत्पत्ति की कोई संभावना नहीं रही है, वे संसार में सुकर्मी हैं - ऐसी मेरी राय है'।"

"भंते! आश्चर्य है। भंते! अद्भुत है। अपने मत को ऊपर भी नहीं उठाया है और दूसरे के मत को नीचे भी नहीं गिराया है। उचित क्षेत्र में

धर्म-देशना मात्र हुई है। (कल्याण की) बात कह दी गयी। अपने-आप को बीच में नहीं लाया गया।

"भंते आनन्द! आप लोग राग, द्वेष, मोह के प्रहाण के लिए धर्मोपदेश देते हैं, इसलिए भंते! आप लोगों का धर्म सु-आख्यात (भली प्रकार कहा गया) है। भंते आनन्द! आप लोग राग, द्वेष, मोह के प्रहाण में प्रतिपन्न हैं, आप लोग संसार में ठीक मार्ग पर चल रहे हैं। भंते आनन्द! आप लोगों का राग, द्वेष, मोह प्रहीण है, जड़ से जाता रहा है, कटे ताड़ के समान हो गया है, अभावप्राप्त हो गया है, भविष्य में पुनरुत्पत्ति की कोई संभावना नहीं रही है, इसलिए आप सुकर्मी हैं।

"सुंदर, भंते! बहुत सुंदर, भंते! जैसे कोई उल्टे को सीधा कर दे, ढंके को उघाड़ दे, मार्ग-भूले को रास्ता बता दे अथवा अंधेरे में मशाल धारण करे, जिससे आंख वाले चीजों को देख सकें। इसी प्रकार आर्य आनन्द ने अनेक प्रकार से धर्म को प्रकाशित किया है। भंते आनन्द! मैं उन भगवान, धर्म तथा भिक्षु-संघ की शरण जाता हूं। आर्य आनन्द! आज से जीवनपर्यंत मुझे अपना शरणागत उपासक जानें।"

-अङ्गुत्तरनिकाय (१.३.७३), आजीवकसुत्त

उत्तम ब्रह्मचर्यवास

एक समय भगवान कोसम्बी के घोसिताराम में विहार करते थे। उस समय पांच सौ परिव्राजक-परिषद के साथ सन्दक परिव्राजक पिलक्ख गुफा में वास करता था।

तब आयुष्मान आनन्द भिक्षुओं के साथ देवकतसोब्भ की गुफा देखने के लिए गये। उस समय सन्दक परिव्राजक-परिषद राजकथा, चोरकथा, युद्धकथा, अन्नकथा, नगरकथा, स्त्रीकथा, प्रेतकथा, पनघटकथा इत्यादि निरर्थक सांसारिक कथाएं कहती और शोर मचाती थी। सन्दक परिव्राजक ने दूर से ही आयुष्मान आनन्द को आते हुए देख कर अपनी परिषद से कहा, "आवुसो! आप सब शांत हों। श्रमण गोतम के शिष्य आयुष्मान आनन्द इधर आ रहे हैं। ये आयुष्मान लोग अल्पभाषी और

अल्प-शब्द-प्रशंसक होते हैं। परिषद को शांत देख, हो सकता है इधर आ जायं। ऐसा सुन कर वे परिव्राजक चुप हो गये।

आयुष्मान आनन्द सन्दक परिव्राजक के पास गये। परिव्राजक ने कहा, "आवें आप आनन्द! स्वागत है। बहुत दिनों बाद आप इधर पधारे हैं। यह आसन बिछा है, इस पर विराजें।"

आयुष्मान आनन्द के बैठने के बाद सन्दक परिव्राजक भी एक नीचा आसन ले एक ओर बैठ गया। सन्दक परिव्राजक से आयुष्मान आनन्द ने पूछा – "सन्दक! परिषद में क्या कथा चल रही थी?"

सन्दक ने कहा, "हे आनन्द! छोड़िए इस कथा को, ऐसी कथाएं सुनने को बहुत मिलेंगी। अच्छा हो, यदि आप अपने आचार्य द्वारा अनुमोदित कोई धर्मकथा कहें।"

"तो सन्दक! सुनो अच्छी तरह मन में धारण करो। सन्दक! उन जाननहार, देखनहार, सम्यक-संबुद्ध भगवान ने चार अब्रह्मचर्यवास और चार आश्वासन न देने वाले ब्रह्मचर्यवास कहे हैं। इनमें वास करके कोई भी विज्ञजन कुशल धर्म का, निर्वाण का साक्षात्कार नहीं कर सकेगा।" फिर उन्होंने उनमें से प्रत्येक की विस्तृत जानकारी दी।

तदनंतर सन्दक ने न्याय, कुशल-धर्म को प्राप्त कराने वाले ब्रह्मचर्यवास के बारे में पूछा।

इस पर आयुष्मान आनन्द ने बताया कि जब कोई तथागत संसार में उत्पन्न होता है और उसके द्वारा साक्षात्कार किये गये धर्म को सुन कर कोई गृहपति उसके प्रति श्रद्धावान हो आर्य शील, आर्य इंद्रिय-संवर, आर्य स्मृति-संप्रज्ञान का अभ्यासी हो, अपने चित्त से पांचों नीवरणों को दूरकर, प्रथम ध्यान प्राप्त कर विहरने लगे, तब वह श्रावक शास्ता के पास अपनी पूरी शक्ति लगाकर ब्रह्मचर्यवास करता हुआ न्याय, कुशल-धर्म को पा सकता है। ऐसे ही द्वितीय ध्यान, तृतीय ध्यान तथा चतुर्थ ध्यान को प्राप्तकर विहरते हुए; और फिर चित्त के समाहित, परिशुद्ध, उपक्लेश-रहित, मृदु एवं अडोल होने पर इसे भिन्न उद्देश्यों के लिए नवाने पर पूर्व-निवासों की स्मृति उभरने, अथवा कर्मानुसार प्राणियों की च्युति एवं उत्पाद, अथवा आस्रवों

के क्षय का ज्ञान होने पर भी शास्ता के पास अपनी पूरी शक्ति लगा कर ब्रह्मचर्यवास करता हुआ न्याय, कुशल-धर्म को पा सकता है।

सन्दक ने आगे पूछा - "हे आनन्द! इस धर्म-विनय में कितने निर्याता (मार्गदर्शक) हैं?"

"सन्दक! सौ नहीं, दो सौ नहीं, तीन सौ नहीं, चार सौ ..... पांच सौ ..... बल्कि इससे भी अधिक इस धर्म-विनय में निर्याता हैं।"

"आश्चर्य है, हे आनन्द! अद्भुत है, हे आनन्द! न अपने धर्म की प्रशंसा करना, न पर-धर्म की निंदा बल्कि ठीक जगह पर धर्म उपदेशते हैं। इतने अधिक मार्गदर्शक इस धर्म-विनय में हैं! ये आजीवक तो अपनी बड़ाई करते थकते नहीं। केवल तीन को ही मार्गदर्शक वतलाते हैं - नन्द वच्छ, किस संकिच्च और मक्खलि गोसाल।"

तव सन्दक परिव्राजक ने अपनी परिषद को संवोधित किया - "आप सभी परिव्राजक श्रमण गोतम के पास ब्रह्मचर्यवास करें। हमारे लिए तो लाभ-सत्कार, प्रशंसा छोड़ना इस समय आसान नहीं है।"

ऐसा कह सन्दक परिव्राजक ने अपनी परिव्राजक-परिषद को भगवान के पास ब्रह्मचर्यवास करने के लिए प्रेरित किया।

-मज्झिमनिकाय (२.३.२२३-२३६), सन्दकसुत्त

भूत और वर्तमान के धर्मों में आसक्त न हों

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे। उस समय आयुष्मान आनन्द उपस्थानशाला (सभाभवन) में भिक्षुओं को धार्मिक कथा द्वारा समुत्तेजित और प्रहर्षित कर रहे थे। भद्रैकरक्त के उद्देश्य और विभंग (विभाजन) को कहते थे। तव भगवान सायंकाल ध्यान से उठकर सभाभवन में गये। वहां विछे आसन पर वैठ कर भगवान ने भिक्षुओं को संवोधित किया - "भिक्षुओ! आज किसने सभाकक्ष में भिक्षुओं को धर्मकथा द्वारा समुत्तेजित और प्रेरित किया? भद्रैकरक्त के उद्देश्य और विभंग को कहा?"

"भंते! आयुष्मान आनन्द ने भद्रैकरक्त के उद्देश्य और विभंग को कहा।"

तव भगवान ने आयुष्मान आनन्द से कहा, "कैसे आनन्द! तूने भिक्षुओं को धार्मिक कथा द्वारा समुत्तेजित किया, कैसे भद्रैकरक्त के उद्देश्य और विभंग को कहा?"

"भंते! इस प्रकार मैंने भिक्षुओं से भद्रैकरक्त के उद्देश्य और विभंग को कहा -

"अतीतं नान्वागमेय्य, नप्पटिकङ्खे अनागतं।
यदतीतं पहीनं तं, अप्पत्तञ्च अनागतं॥

["अतीत के पीछे न पड़े, भविष्य की चिंता न करे। अतीत तो नष्ट हो चुका है और भविष्य अभी आया नहीं है।]

****

"पच्चुप्पन्नञ्च यो धम्मं, तत्थ तत्थ विपस्सति।
असंहीरं असंकुप्पं, तं विद्वा मनुब्रूहये॥

["जो प्रत्युत्पन्न (इस समय प्रकट हुआ या हो रहा है) धर्म है, उसकी विपश्यना कर उसे भलीभांति जान अजेय रूप से, अकंप रूप से (टुकड़े-टुकड़े) करते हुए देखें। जो अविनाशी, अचल है, उसका वढ़ावा करें।]

****

"अज्जेव किच्चमातप्पं, को जञ्ञा मरणं सुवे।
न हि नो सङ्गरं तेन, महासेनेन मच्चुना॥

["आज से ही उद्योग आरंभ कर देना चाहिए, कौन जाने कल मरना हो जाय! वड़ी सेना वाले मृत्युराज के साथ हमारा कोई इकरार नहीं है।"]

****

"एवं विहारिं आतापिं, अहोरत्तमतन्दितं।
तं वे भद्देकरत्तोति, सन्तो आचिक्खते मुनि"॥

["रात-दिन, बिना आलस किये, उद्योगी हो, इस प्रकार विहार करने वाले को शांत मुनि-जन ऐसा व्यक्ति कहते हैं जिसकी एक रात भद्र होती है।"]

****

"आवुस! कैसे कोई अतीत का अनुगमन (चिंतन) करता है?"

"अतीत में मेरा ऐसा रूप था, यह सोच राग पैदा करता है; अतीत में मुझे ऐसी वेदना हुई, यह सोच राग पैदा करता है; अतीत में मुझे ऐसी संज्ञा उत्पन्न हुई, यह सोच राग पैदा करता है; अतीत में मुझे ऐसा संस्कार जागा, यह सोच राग पैदा करता है; अतीत में मुझे ऐसा विज्ञान जागा, यह सोच राग पैदा करता है। आवुस! इस प्रकार कोई अतीत का अनुगमन करता है।

"आवुस! कैसे कोई अतीत का अनुगमन नहीं करता है?

"अतीत में मेरा ऐसा रूप, ऐसी वेदना, ऐसी संज्ञा, ऐसा संस्कार, ऐसा विज्ञान जागा - यह जानकर वह राग नहीं जगाता। इस प्रकार वह अतीत का अनुगमन नहीं करता।

"आवुस! भविष्य के पीछे कोई कैसे पड़ा रहता है?

"आवुस! कोई ऐसे भविष्य के बारे में चिंतन करता है - मेरा ऐसा रूप होगा, मुझे ऐसी वेदना, ऐसी संज्ञा, ऐसा संस्कार, ऐसा विज्ञान होगा - ऐसी अटकलों में राग जगाता हुआ भविष्य के पीछे पड़ा रहता है। इसी प्रकार कोई ऐसा ही चिंतन करता हुआ राग नहीं जगाता है तो वह भविष्य के व्यर्थ चिंतन में पड़ा नहीं रहता है।

"आवुस! कोई कैसे वर्तमान धर्मों में आसक्त नहीं होता है? आवुस! कोई असुतवा (जिसने धर्म के विषय में सुना ही न हो), पृथग्जन, आर्यसत्यों को न देखने वाला, आर्यधर्म को न जानने वाला, आर्यधर्म में अविनीत, सत्पुरुषों को न देखने वाला, सत्पुरुषों के धर्म के प्रति अज्ञानी, सत्पुरुष के धर्म के प्रति अविनीत, रूप को 'मैं', रूप 'मेरा', रूप 'मेरी आत्मा', रूप में 'आत्मा' इस प्रकार वर्तमान धर्मों को देखता हुआ उनमें आसक्त रहता है। इसके विपरीत जब वह रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान को मैं, मेरा, मेरी आत्मा इत्यादि नहीं मानता है, तब वह वर्तमान धर्मों की विपश्यना करता है।"

"भंते भगवान! इस प्रकार मैंने भिक्षुओं को समुत्तेजित और प्रेरित किया, उस व्यक्ति के उद्देश्य और विभंग को कहा जिसकी रात भद्र होती है।" भगवान ने इसका न केवल अनुमोदन ही किया बल्कि स्वयं भी इसको दोहराया।

-मज्झिमनिकाय (३.४.२७६-२७८), आनन्दभद्देकरत्तसुत्त

मध्यम मार्ग का उपदेश

प्रव्रज्या ग्रहण करने के पूर्व आयुष्मान छन्न बोधिसत्त्व सिद्धार्थ गौतम के सारथी थे। महाभिनिष्क्रमण की रात बोधिसत्त्व इन्हीं के साथ राजमहल से निकले थे। तीस योजन दूर अनोमा नदी के दूसरे तट पर पहुँच कर सिद्धार्थ गौतम ने अपने प्रव्रजित होने की बात कही। ऐसा सुनकर छन्न ने भी अपने लिए प्रव्रज्या ग्रहण करने की अनुमति मांगी। पर, स्वामी के मना करने पर, छन्न उनके मूल्यवान वस्त्राभूषण और अश्व कन्थक को लेकर कपिलवस्तु वापस आ गये। बाद में छन्न भी भगवान के धर्म में दीक्षित हो गये।

एक समय कुछ स्थविर भिक्षु वाराणसी के पास ऋषिपत्तन मृगदाय में विहार करते थे। उन्हीं के साथ आयुष्मान छन्न भी थे। संध्या समय वह ध्यान से उठे और एक विहार से दूसरे विहार जाकर स्थविर भिक्षुओं से कहा - "आयुष्मानो! आप स्थविर लोग मुझे उपदेश दें और धर्म की बात कहें जिससे मैं भी धर्म को अच्छी तरह जान सकूं।"

तब उन स्थविरों ने कहा - "आवुस! रूप अनित्य है, संज्ञा अनित्य है। इसी प्रकार वेदना, संस्कार और विज्ञान भी अनित्य हैं। रूप अनात्म है, संज्ञा अनात्म है। इसी प्रकार वेदना, संस्कार और विज्ञान भी अनात्म हैं। सभी संस्कार अनित्य हैं, सभी धर्म अनात्म हैं।"

स्थविरों के उपदेश को सुनकर आयुष्मान छन्न के मन में हुआ - "मैं भी ऐसा ही मानता हूं। सभी संस्कार अनित्य हैं और सभी धर्म अनात्म हैं। पर, मेरे सभी संस्कारों के शांत हो जाने पर, तृष्णा के क्षय हो जाने पर भी विराग, निरोध और निर्वाण में चित्त शांत, शुद्ध और भार-मुक्त नहीं हो जाता। कौन मुझे ऐसा धर्मोपदेश करे कि मैं धर्म को ठीक-ठीक जान सकूं?"

तव उन्होंने सोचा – "आयुष्मान आनन्द कोसम्बी के घोसिताराम में विहार करते हैं। विज्ञ भिक्षुओं में उनका वड़ा सम्मान है। भगवान स्वयं उनकी प्रशंसा करते हैं। अतः क्यों न मैं धर्मश्रवण के लिए आयुष्मान आनन्द के पास चलूं?"

ऐसा विचार कर आयुष्मान छन्न अपना पात्र-चीवर और विछावन लेकर कोसम्वी में स्थविर आनन्द के पास पहुँचे। कुशल-क्षेम के वाद आयुष्मान छन्न ने आयुष्मान आनन्द से धर्मोपदेश करने का निवेदन किया - "आयुष्मान आनन्द! आप मुझे धर्म ऐसा समझावें, उसकी ऐसी व्याख्या करें, उसे इस प्रकार वतावें कि मेरे लिए उसका रहस्य एकदम खुल जाय।"

"आयुष्मान छन्न! हम इतने से ही प्रसन्न हैं कि आपने अपने हृदय की वात हमारे सामने प्रकट कर दी। आयुष्मान छन्न! आप सोतापत्तिफल का लाभ करें। आप धर्म को अच्छी तरह जान सकते हैं।"

आयुष्मान आनन्द के प्रेरक वचन सुनकर आयुष्मान छन्न के मन में वड़ी प्रीति उत्पन्न हुयी।

"आवुस आनन्द! मैं धर्म अच्छी तरह जान सकता हूं?"

आयुष्मान आनन्द वोले - "आयुष्मान छन्न! मैंने स्वयं भगवान को कच्चान भिक्षु को उपदेश देते सुना है - कच्चान! यह संसार दो अज्ञान में पड़ा है, जिनके कारण आस्तिकता ('सभी कुछ है') और नास्तिकता ('कुछ नहीं है') का भ्रम होता है। संसार के समुदय की वास्तविकता को जान लेने पर संसार के प्रति नास्तिकता की वुद्धि नहीं रह जाती। कच्चान! संसार के निरोध की वास्तविकता को जान लेने पर संसार के प्रति आस्तिकता की वुद्धि नहीं रह जाती। यह संसार उपधि, उपादान, अभिनिवेश से वेतरह जकड़ा हुआ है।

इसे जान लेने से चित्त में अभिनिवेश और अनुशय नहीं रह जाते, न ही उसे आत्मा का भ्रम होता है। उत्पन्न होकर दुःख ही उत्पन्न होता है और निरुद्ध होकर दुःख ही निरुद्ध होता है। पंच उपादान (रूप, संज्ञा, वेदना, संस्कार और विज्ञान) जो उत्पन्न होते हैं, वे दुःख ही हैं। ये ही पंच उपादान निरुद्ध भी होते हैं, इस प्रकार दुःख ही निरुद्ध होता है। इसमें तनिक संदेह नहीं। इससे प्रतीत्य-समुत्पाद का पूरा-पूरा ज्ञान हो पाता है। यही सम्यकदृष्टि है।

"कच्चान! सर्वास्ति (सभी कुछ है) यह एक अंत है और सर्वनास्ति (कुछ नहीं है), यह दूसरा अंत है। इन दोनों अंतों में न जाकर तथागत धर्म का मध्य से उपदेश करते हैं।

"अविद्या के प्रत्यय (कारण) से संस्कार, संस्कार के प्रत्यय से विज्ञान, विज्ञान के प्रत्यय से नामरूप, नामरूप के प्रत्यय से छः आयतन, छः आयतनों के प्रत्यय से स्पर्श, स्पर्श के प्रत्यय से वेदना, वेदना के प्रत्यय से तृष्णा, तृष्णा के प्रत्यय से उपादान, उपादान के प्रत्यय से भव, भव के प्रत्यय से जाति (जन्म), जाति के प्रत्यय से जरा, मरण, शोक, रोना-पीटना, दुःख, वेचैनी और परेशानी होती है। इस प्रकार समूचे दुःख-स्कंध का समुदय होता है।

"लेकिन अविद्या के प्रति संपूर्णतया विरक्त और (इस प्रकार) इसके निरुद्ध हो जाने से संस्कार का निरोध हो जाता है। संस्कार के निरुद्ध हो जाने से विज्ञान का निरोध हो जाता है। विज्ञान के निरुद्ध हो जाने से नामरूप का निरोध हो जाता है। नामरूप के निरुद्ध हो जाने से छः आयतनों का निरोध हो जाता है। छः आयतनों के निरुद्ध हो जाने से स्पर्श का निरोध हो जाता है। स्पर्श के निरुद्ध हो जाने से वेदना का निरोध हो जाता है। वेदना के निरुद्ध हो जाने से तृष्णा का निरोध हो जाता है। तृष्णा के निरुद्ध हो जाने से उपादान का निरोध हो जाता है। उपादान के निरुद्ध हो जाने से भव का निरोध हो जाता है। भव के निरुद्ध हो जाने से जन्म का निरोध हो जाता है। जन्म के निरुद्ध हो जाने से जरा, मरण, शोक, रोना-पीटना, दुःखित होना, वेचैन और परेशान होना निरुद्ध हो जाते हैं। इस प्रकार इस समूचे दुःख-स्कंध का निरोध हो जाता है।"

प्रसन्न होकर आयुष्मान छन्न वोले – "जिन आयुष्मानों के आप जैसे कृपालु, परमार्थी उपदेशक गुरुभाई होते हैं, उन्हें धर्म समझने में कठिनाई नहीं हो सकती। अव मुझे अच्छी तरह धर्म का ज्ञान हो गया।"

-संयुत्तनिकाय (२.३.९०), छन्नसुत्त

भगवान द्वारा आनन्द की प्रशंसा

सालवन का आत्यंतिक वर्णन

एक अवसर पर महागोसिङ्गसालवन में प्रसिद्ध-प्रसिद्ध भिक्षु जैसे आयुष्मान सारिपुत्त, आयुष्मान महामोग्गल्लान, आयुष्मान महाकस्सप, आयुष्मान अनुरुद्ध, आयुष्मान रेवत, आयुष्मान आनन्द इत्यादि एकत्र हुए थे। उस समय आयुष्मान सारिपुत्त ने उनके समक्ष यह प्रस्ताव रखा - "रमणीय है यह सालवन। आज चांदनी रात है। सालवृक्ष सब प्रकार से पुष्पित हैं। मानो दिव्य गंध वहा रहे हैं। अच्छा हो यदि इस विषय पर चर्चा हो कि किस प्रकार के भिक्षु से इस सालवन की शोभा में और भी वृद्धि हो सकती है।"

उपस्थित भिक्षु-वृंद में से सभी ने अपनी-अपनी राय दी। जब आयुष्मान आनन्द की वारी आयी तव उन्होंने कहा - "आयुष्मान सारिपुत्त! यदि भिक्षु वहुश्रुत, श्रुतधर, श्रुतसंचयी हो, उसने उस धर्म को, जो आदि में कल्याण, मध्य में कल्याण, अंत में कल्याण करने वाला हो और केवल परिपूर्ण, परिशुद्ध ब्रह्मचर्य को वखारनेवाला हो, अच्छी तरह सुना हो, धारण किया हो, वचन से परिचय किया हो, मन से परखा हो, दृष्टि में धँसा लिया हो, तो ऐसा भिक्षु चार प्रकार की परिषदों को सर्वांगपूर्ण, पद-व्यंजन युक्त, स्वतंत्रतापूर्वक अनुशयों (चित्तमलों) के नाश के लिए ऐसे धर्म का उपदेश दे, तो आवुस सारिपुत्त! इस प्रकार के भिक्षु द्वारा गोसिङ्गसालवन सुशोभित होगा।"

जव आयुष्मान सारिपुत्त ने आयुष्मान आनन्द का यह सुभाषित भगवान को सुनाया तव भगवान वोले - **"साधु, साधु सारिपुत्त! आनन्द ही ठीक से कथन करेगा। आनन्द वहुश्रुत है, श्रुतधर है, श्रुतसंचयी है ..... धर्म का अनुशयों के नाश के लिए उपदेश करता है।"**

भगवान ने सभी के कथन को सुभाषित वतलाया और अपनी ओर से कहा - "किस प्रकार के भिक्षु से गोसिङ्गसालवन शोभायमान हो सकता है? यहां, सारिपुत्त, कोई भिक्षु भोजन के उपरांत भिक्षा से निवृत्त हो, पालथी मार, शरीर को सीधा रख, मुख के ऊपरी भाग पर स्मृति को प्रतिष्ठापित कर यह संकल्प करे - 'मैं तव तक इस आसन को नहीं छोडूंगा जव तक मेरे चित्त से पूर्णतया आस्रव छूट न जायं।' सारिपुत्त! ऐसे भिक्षु से गोसिङ्गसालवन शोभायमान होगा।"

-मज्झिमनिकाय (१.४.३३२-३४५), महागोसिङ्गसुत्त

सफल शीलव्रत

एक समय आयुष्मान आनन्द भगवान के पास पहुँचे। पास जाकर भगवान को अभिवादन कर एक ओर वैठ गये। एक ओर वैठे आयुष्मान आनन्द को भगवान ने इस प्रकार कहा -

"आनन्द! क्या सभी प्रकार के शील-व्रत, सभी प्रकार की जीवनशैली, सभी प्रकार के ब्रह्मचर्य, सभी प्रकार के उपस्थान-सार (सेवा) सफल होते हैं?"

"भंते! सर्वांश में यह ऐसा नहीं है।"

"तो आनन्द! विभक्त करके कहो।"

"भंते! जिस शील-व्रत से, जिस जीवनशैली से, जिस ब्रह्मचर्य के पालन करने से, जिस उपस्थान-सार (सेवा) से अकुशल-धर्म वढ़ते हैं तथा कुशल-धर्म प्रहीण होते हैं, वह शील-व्रत, वह जीवनशैली, वह ब्रह्मचर्य, वह उपस्थान-सार निष्फल हैं। जिस शील-व्रत से, जिस जीवनशैली से, जिस ब्रह्मचर्य से, जिस उपस्थान-सार से, अकुशल-धर्म प्रहीण होते हैं तथा कुशल-धर्म वढ़ते हैं, वह शील-व्रत, वह जीवनशैली, वह ब्रह्मचर्य, वह उपस्थान-सार सफल होते हैं।"

आयुष्मान आनन्द ने यह कहा। शास्ता संतुष्ट हुए।

आयुष्मान आनन्द ने यह जान कर कि शास्ता मेरे उत्तर से संतुष्ट हैं, भगवान का अभिवादन किया और प्रदक्षिणा कर चले गये।

तब भगवान ने आयुष्मान आनन्द के चले जाने के थोड़ी देर बाद भिक्षुओं को बुलाकर संबोधित किया – **"भिक्षुओ! आनन्द शैक्ष्य है, तो भी प्रज्ञा में इसकी बराबरी करने वाला सुलभ नहीं है।"**

-अङ्गुत्तरनिकाय (१.३.७९), सीलब्बतसुत्त

चलकर लोक का अंत पाना संभव नहीं

एक बार भगवान ने भिक्षुओं को संबोधित किया – "भिक्षुओ! मैं ऐसा नहीं कहता कि कोई चल-चल कर लोक के अंत को जान लेगा, देख लेगा या पा लेगा। पर, भिक्षुओ! मैं ऐसा भी नहीं कहता कि बिना लोक का अंत पाये दु:खों का अंत हो जायगा।"

इतना कह कर भगवान अपने आसन से उठ कर विहार के भीतर चले गये। तब भगवान के कथन पर भिक्षुओं में विचार होने लगा – "आवुसो! भगवान संक्षेप में यह संकेत देकर चले गये, इसे विस्तार से समझाया नहीं। कौन भगवान के इस संक्षिप्त कथन की व्याख्या कर सकेगा, जिससे हमलोग इसे अच्छी तरह से समझ सकें।"

तब, उन भिक्षुओं ने सोचा – "आयुष्मान आनन्द स्वयं भगवान और विज्ञ गुरुभाइयों द्वारा प्रशंसित और सम्मानित हैं। वे ही भगवान के इस संक्षिप्त कथन को विस्तार से समझाने में समर्थ हैं। इसलिए, हमलोग आयुष्मान आनन्द के पास चलें और उनसे भगवान के कथन को विस्तार से समझें।"

ऐसा सोचकर सभी भिक्षु आयुष्मान आनन्द के पास गये। कुशल-क्षेम के उपरांत भिक्षुओं ने आयुष्मान आनन्द को शास्ता का कथन सुनाया तथा उनसे इसे विस्तार से समझाने के लिए अनुरोध किया।

आयुष्मान आनन्द ने कहा – "आवुसो! जैसे कोई व्यक्ति वृक्ष का सार पाने के लिए उसके मूल और तने को छोड़कर उसकी टहनियों और पत्तियों में सार की खोज करे, वैसे ही आवुसो! आप लोग भगवान को छोड़कर मुझसे अर्थविस्तार जानना चाहते हैं। भगवान देखनहार हैं, जाननहार हैं, वह भगवान चक्षुस्वरूप हैं, ज्ञानस्वरूप हैं, धर्मस्वरूप हैं, यथार्थ के ज्ञाता हैं, अमृत के दाता हैं, वक्ता हैं, प्रवक्ता हैं, धर्म के स्वामी हैं, तथागत हैं। ऐसे

भगवान को छोड़कर आवुसो! आपलोग मुझसे पूछने आये हैं। इसका अर्थ शास्ता से ही पूछना चाहिए। जैसा भगवान बतायें, वैसा ही आप समझें, सीखें और धारण करें।"

"आयुष्मान आनन्द! आपका कहना उचित है। जैसा भगवान बतावें वैसा हमलोग समझें। फिर भी आवुस! आप क्लिष्ट को सरल और अस्पष्ट को स्पष्ट करने में सक्षम हैं। आयुष्मान आनन्द स्वयं भगवान तथा गुरुभाइयों से प्रशंसित और सम्मानित हैं। आप इसकी सुबोध व्याख्या कर सकते हैं।"

"तो आवुसो! सुनो, अच्छी तरह मन में लाओ, मैं कहता हूं।

"आवुसो! मैं भगवान के संक्षिप्त कथन का विस्तार से इस प्रकार अर्थ समझता हूं।

"आवुसो! जिससे लोक में लोक की संज्ञा या उसका मान होता है इसे ही आर्यविनय में लोक कहा जाता है। आवुसो! किससे लोक में लोक की संज्ञा या उसका मान होता है?

"आवुसो! चक्षु से लोक में लोक की संज्ञा या उसका मान होता है।

"श्रोत्र से लोक में लोक की संज्ञा या उसका मान होता है।"

इसी तरह घ्राण से, जिह्वा से, काया से, मन से लोक में लोक की संज्ञा या उसका मान होता है। इसे ही आर्यविनय में लोक कहा जाता है।

"आवुसो! मैं विस्तार से इसका यही अर्थ समझता हूं। यदि आप चाहें तो भगवान के पास जाकर इसका अर्थ पूछें। जैसा भगवान बताएं वैसा ही समझें, सीखें, धारण करें।"

ऐसा सुनकर सभी भिक्षु भगवान के पास गये और आयुष्मान आनन्द के साथ हुए वार्त्तालाप को कह सुनाया।

भगवान ने आयुष्मान आनन्द के कथन का अनुमोदन करते हुए कहा - **"भिक्षुओ! आनन्द पंडित है, महाप्राज्ञ है। यदि तुम मुझसे पूछते, तो मैं भी ठीक वैसे ही समझाता जैसा आनन्द ने बताया। उसका यही अर्थ है, इसे अच्छी तरह सीखो, धारण करो।"**

-संयुत्तनिकाय (२.४.११६), लोकन्तगमनसुत्त

चित्त-प्रसाद का सुपरिणाम

एक समय आयुष्मान आनन्द भगवान के पास गये और उनका अभिवादन करके एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान आनन्द ने भगवान से कहा–

"भंते! मैंने भगवान के मुँह से सुना है, भगवान के मुँह से ग्रहण किया है कि 'हे आनन्द! भगवान सिखी सम्यक-संबुद्ध का अभिभू नामक श्रावक ब्रह्मलोक में स्थित होकर जो बोलता है, वह सहस्रलोकधातु में सुनायी पड़ता है।' भंते! भगवान अर्हत हैं, सम्यक-संबुद्ध हैं। भंते! भगवान की आवाज कहां तक सुनी जा सकती है?"

"आनन्द! वह एक श्रावक है और तथागतों का बल तो अपरिमेय होता है।"

यही बात आयुष्मान आनन्द ने दूसरी बार, फिर तीसरी बार कही।

तब भगवान ने कहा – "आनन्द! सुना है तूने कि एक सहस्री चूळ लोकधातु है?"

"भगवान! इसी का समय है, सुगत! इसी का समय है। आप कहें। आप से सुनकर भिक्षु ग्रहण करेंगे।"

"तो आनन्द! सुनो, अच्छी तरह मन में धारण करो; कहता हूं।

"आनन्द! जहां तक चंद्रमा और सूर्य का प्रकाश फैला है वहां तक सहस्रधा लोक है। उस प्रकार के सहस्र चंद्रमा, सहस्र सूर्य, सहस्र सुमेरु पर्वतराज होने से, सहस्र जंबूद्वीप होने से, सहस्र अपरगोयन होने से, सहस्र उत्तरकुरु होने से, सहस्र पूर्व-विदेह होने से, चार हजार महासमुद्र होने से, चार हजार महाराजगण होने से, सहस्र चातुम्महाराजिक होने से, सहस्र तावतिंस होने से, सहस्र याम होने से, सहस्र तुसित होने से, सहस्र निम्मानरति होने से, सहस्र परनिम्मितवसवत्ती होने से, सहस्र ब्रह्मलोक होने से आनन्द! यह लोक 'सहस्री चूळ लोकधातु' कहलाता है। आनन्द! जितना बड़ा क्षेत्र 'सहस्री चूळ लोकधातु' का है वैसे हजार लोकों का एक लोक 'द्विसहस्री मध्यम लोकधातु' कहलाता है। और, आनन्द! जितना बड़ा क्षेत्र 'द्विसहस्री मध्यम लोकधातु' का है वैसे ही हजार लोकों का एक लोक

'त्रिसहस्री-महासहस्री लोकधातु' कहलाता है। आनन्द! यदि तथागत चाहें तो त्रिसहस्री-महासहस्री लोकधातु तक अथवा जहां तक उनकी आकांक्षा हो वहां तक अपनी आवाज सुना सकते हैं, पहुँचा सकते हैं।"

"भंते! त्रिसहस्री-महासहस्री लोकधातु को अथवा जहां तक आकांक्षा करें - उस सारे प्रदेश तक अपनी आवाज कैसे सुनायेंगे?"

"यहां, आनन्द! तथागत त्रिसहस्री-महासहस्री लोकधातु को अपने प्रकाश से व्याप्त करते हैं और जब वे प्राणी उस आलोक को पहचान लें तब तथागत घोषणा कर सकते हैं, आवाज सुना सकते हैं। इस प्रकार आनन्द! तथागत आकांक्षा करें तो त्रिसहस्री-महासहस्री लोकधातु तक अपनी आवाज सुना सकते हैं अथवा और भी जहां तक आकांक्षा करें।"

ऐसे कहे जाने पर आयुष्मान आनन्द ने आयुष्मान उदायी से कहा – "आवुस उदायी! यह हम लोगों के लिए लाभ है, सुलभ है कि हमारे शास्ता ऐसे ऋद्धिमान एवं महानुभाव हैं।" इस पर आयुष्मान उदायी ने कहा – "आनन्द! तुझे इससे क्या लाभ यदि शास्ता ऐसे ऋद्धिमान हों अथवा महानुभावी हों?"

ऐसा कहने पर भगवान ने आयुष्मान उदायी को यह कहा - **"उदायि! ऐसा मत कहो। ऐसा मत कहो उदायि! यदि आनन्द बिना वीतराग हुए, शरीर छोड़े, तो वह इसी चित्त की प्रसन्नता के कारण देव-लोक में सात बार देव-राज्य करे अथवा इसी जंबूद्वीप में महाराजा बने। लेकिन उदायि! आनन्द तो इसी जीवन में परिनिर्वाण को प्राप्त होगा।"**

-अङ्गुत्तरनिकाय (१.३.८१), चूळनिकासुत्त

बुद्ध निंदित कर्म से परे

एक बार भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे। तब आयुष्मान आनन्द वस्त्र पहनकर, पात्र-चीवर ले नगर में भिक्षाटन के लिए निकले। उस समय महाराज पसेनदि (प्रसेनजित) हाथी पर सवार होकर नगर के बाहर जा रहे थे। रास्ते में उन्होंने आयुष्मान आनन्द को कुछ दूरी पर आते हुए देखा। अपने एक सेवक को भेज कर

स्थविर को वहीं रुके रहने का निवेदन किया। आयुष्मान आनन्द ने सेवक द्वारा महाराज का निवेदन सुन मौन रहकर इसे स्वीकार कर लिया।

तब कोशलनरेश हाथी से उतर कर आयुष्मान आनन्द के पास पहुँचे। वहां स्थविर का समुचित अभिवादन किया। फिर एक वृक्ष की छाया में जाकर राजा ने आयुष्मान आनन्द के बैठने की उचित व्यवस्था की। दोनों लोग अपने-अपने आसन पर बैठ गये।

उस समय राजा पसेनदि ने आयुष्मान आनन्द से पूछा – "भंते! क्या भगवान ऐसा कायिक आचरण कर सकते हैं जो श्रमणों, ब्राह्मणों और विज्ञों द्वारा निंदित हो?"

"नहीं, महाराज! भगवान ऐसा कायिक आचरण नहीं कर सकते हैं जो श्रमणों, ब्राह्मणों और विज्ञों द्वारा निंदित हो।"

"तो, भंते! क्या ऐसा वाचिक आचरण कर सकते हैं .....?"

"नहीं, महाराज!"

"आश्चर्य, भंते! अद्भुत, भंते!! जो उत्तर हम अन्य श्रमणों से नहीं पा सके वह आयुष्मान आनन्द ने स्पष्ट रूप से दे दिया।"

तदनंतर राजा पसेनदि के अन्य प्रश्नों के उत्तर में आयुष्मान आनन्द ने वतलाया -

- अकुशल आचरण स-दोष होता है।
- स-दोष आचरण हिंसा-युक्त होता है।
- हिंसा-युक्त आचरण दुःख-परिणामी होता है।
- दुःख-परिणामी आचरण वह होता है जो अपनी पीड़ा, पर-पीड़ा, दोनों की पीड़ा के लिए होता है।

फिर यह भी वतलाया -

- कुशल आचरण अ-दोष होता है।
- अ-दोष आचरण हिंसा-रहित होता है।
- हिंसा-रहित आचरण सुख-परिणामी होता है।
- सुख-परिणामी आचरण वह होता है जो न अपनी पीड़ा, न पर-पीड़ा, न दोनों की पीड़ा के लिए होता है।

उन्होंने यह भी कहा कि भगवान सभी अकुशल धर्मों से रहित और सभी कुशल धर्मों से युक्त हैं।

"आश्चर्य, भंते! अद्भुत, भंते! कितना सुंदर कथन है, भंते आयुष्मान आनन्द का!

"भंते! आयुष्मान आनन्द के इस सुभाषित से हम परम प्रसन्न हैं। हम भंते! आयुष्मान आनन्द को हाथीरत्न, अश्वरत्न, गांव ..... कुछ भी देना चाहते हैं। पर आयुष्मान को ग्राह्य नहीं है। फिर भी मेरे पास मगधनरेश अजातसत्तु से भेंट में प्राप्त एक सोलह हाथ लंवा, आठ हाथ चौड़ा वाहितिक (वस्त्र-विशेष) है। भंते! कृपा करके इसे स्वीकार करें।"

"नहीं, महाराज! मेरे तीनों चीवर पूरे हैं।"

"भंते! यह अचिरवती नदी आयुष्मान आनन्द ने देखी है और हमने भी। जब ऊपर पर्वत पर महामेघ वरसता है, तव यह अचिरवती दोनों तटों को भर कर वहती है। ऐसे ही भंते! इस वाहितिक से आयुष्मान आनन्द अपना त्रिचीवर वनावेंगे, जो भंते आयुष्मान आनन्द के चीवर हैं, उन्हें सव्रह्मचारी वांट लेंगे। इस प्रकार हमारी दक्षिणा मानों भर कर वहती हुई होगी। भंते! आयुष्मान आनन्द मेरी वाहितिक स्वीकार करें।"

तव आयुष्मान आनन्द ने वाहितिक को स्वीकार कर लिया।

तव कोशलनरेश ने कहा, "अच्छा भंते! अव हम चलते हैं। हम वहुकृत्य, वहु-करणीय हैं।"

आयुष्मान आनन्द ने कहा – "महाराज! जिसका आप काल समझते हों।"

तव राजा आयुष्मान आनन्द के भाषण का अनुमोदन कर, अभिनंदन कर, आसन से उठ उनका अभिवादन और प्रदक्षिणा कर चले गये।

उसके वाद आयुष्मान आनन्द भगवान के पास आये। आयुष्मान आनन्द ने महाराज पसेनदि के साथ हुए कथा-संलाप को भगवान को कह सुनाया तथा महाराज पसेनदि से भेंटस्वरूप प्राप्त वाहितिक को भगवान को समर्पित कर दिया। भगवान ने भिक्षुओं को आमंत्रित किया -

"भिक्षुओ! राजा पसेनदि को लाभ है, सुलाभ है, जो राजा ने आनन्द का दर्शन प्राप्त किया एवं उनकी संगति की।"

भगवान ने यह कहा। संतुष्ट हो उन भिक्षुओं ने भगवान के भाषण का अभिनंदन किया।

-मज्झिमनिकाय (२.४.३५८-३६३), बाहितिकसुत्त

शैक्ष्यमार्ग की व्याख्या

एक समय भगवान (सक्क) शाक्य जनपद में कपिलवत्थु के निग्रोधाराम में विहार करते थे। उस समय कपिलवत्थु के शाक्यों ने एक नया संस्थागार वनवाया था। उन्होंने भगवान के पास जाकर अभ्यर्थना की कि प्रथम वार आप ही इसका उपभोग करें। इसके वाद जव हम इसका उपयोग करेंगे, तव वह चिरकाल तक हमारे हित-सुख के लिए' होगा।

इस पर भगवान ने संस्थागार में जाकर शाक्यों को वहुत रात तक धार्मिक कथा कह कर समुत्तेजित, संप्रहर्षित किया और फिर आयुष्मान आनन्द को वाकी उपदेश देने के लिए कह कर स्वयं स्मृति-संप्रज्ञान के साथ विश्राम करने लगे।

तत्पश्चात आयुष्मान आनन्द ने महानाम शाक्य को संवोधित करते हुए कहा - "महानाम! आर्यश्रावक शील-सदाचार से युक्त, इंद्रियों में संयम रखने वाला, भोजन की मात्रा का जानकार, जागरण में तत्पर, सात सद्धर्मों सहित इसी जन्म में सुख-विहार के लिए उपयोगी चारों चैतसिक ध्यानों का इच्छानुसार एवं विना किसी कठिनाई के प्राप्त करने वाला होता है।"

फिर आयुष्मान आनन्द ने इस पर विस्तार से प्रकाश डालते हुए कहा कि ऐसा आर्यश्रावक शैक्ष्य-प्रातिपद (निर्वाण-प्राप्ति के लिए मार्गारूढ़) कहलाता है। वह निर्भेदन करने, संवोधि प्राप्त करने तथा अनुपम योगक्षेम अधिगत करने के योग्य होता है। वह उपेक्षा और जागरूकता की परिशुद्धता को प्राप्त कर अनेक प्रकार के पूर्वजन्मों का स्मरण करने लगता है, दिव्य चक्षु से कर्मानुसार गति को प्राप्त होते प्राणियों को प्रज्ञापूर्वक जानने लगता है, आस्रवों के क्षय से आस्रव-रहित चित्त की विमुक्ति और प्रज्ञा द्वारा विमुक्ति इसी जन्म में स्वयं जान कर, साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहरने लगता है। ऐसा आर्यश्रावक विद्यासंपन्न कहलाता है, चरणसंपन्न भी और विद्याचरणसंपन्न भी।

तव भगवान ने उठकर आयुष्मान आनन्द को संवोधित किया, **"साधु, साधु, आनन्द! तूने कपिलवत्थु के शाक्यों के लिए शैक्ष्यमार्ग का अच्छी तरह व्याख्यान किया।"**

भगवान द्वारा साधुवाद करने के पश्चात कपिलवत्थु के शाक्यों ने आयुष्मान आनन्द के भाषण का अभिनंदन किया।

-मज्झिमनिकाय (२.१.२२-३०), सेखसुत्त

आनन्द की पहचान

एक समय भगवान राजगह में गिज्झकूट (गृध्रकूट) पर्वत पर विहार करते थे। उस समय आयुष्मान सारिपुत्त कुछ भिक्षुओं के साथ भगवान से कुछ ही दूरी पर चंक्रमण कर रहे थे। आयुष्मान महामोग्गल्लान, आयुष्मान महाकस्सप, आयुष्मान अनुरुद्ध, आयुष्मान पुण्ण मन्ताणिपुत्त, आयुष्मान उपालि, आयुष्मान आनन्द और देवदत्त भी कुछ भिक्षुओं के साथ कुछ दूरी पर चंक्रमण कर रहे थे। भगवान ने भिक्षुओं को आमंत्रित किया -

"भिक्षुओ! तुम सारिपुत्त को कुछ भिक्षुओं के साथ चंक्रमण करते देख रहे हो न?"

"हां, भंते!"

"भिक्षुओ! वे सभी भिक्षु वड़े प्रज्ञा वाले हैं।

"भिक्षुओ! तुम मोग्गल्लान को कुछ भिक्षुओं के साथ चंक्रमण करते देख रहे हो न?"

"हां, भंते!"

"भिक्षुओ! वे सभी भिक्षु वड़े ऋद्धि वाले हैं।

"भिक्षुओ! तुम कस्सप को कुछ भिक्षुओं के साथ चंक्रमण करते देख रहे हो न?"

"हां, भंते!"

"भिक्षुओ! वे सभी भिक्षु धुतंग धारण करने वाले हैं।

"भिक्षुओ! तुम अनुरुद्ध को कुछ भिक्षुओं के साथ चंक्रमण करते देख रहे हो न?"

"हां, भंते!"

"भिक्षुओ! वे सभी भिक्षु दिव्य चक्षु वाले हैं।

"भिक्षुओ! तुम पुण्ण मन्ताणिपुत्त को कुछ भिक्षुओं के साथ चंक्रमण करते देख रहे हो न?"

"हां, भंते!"

"भिक्षुओ! वे सभी वड़े धर्मकथिक हैं।

"भिक्षुओ! तुम उपालि को कुछ भिक्षुओं के साथ चंक्रमण करते देख रहे हो न?"

"हां, भंते!"

"भिक्षुओ! वे सभी वड़े विनयधर हैं।

"भिक्षुओ! तुम आनन्द को कुछ भिक्षुओं के साथ चंक्रमण करते देख रहे हो न?"

"हां, भंते!"

"भिक्षुओ! वे सभी वहुश्रुत हैं।

"भिक्षुओ! तुम देवदत्त को कुछ भिक्षुओं के साथ चंक्रमण करते देख रहे हो न?"

"हां, भंते!"

"भिक्षुओ! वे सभी पापेच्छ हैं।

"भिक्षुओ! सभी प्राणी धातुओं के अनुसार परस्पर मेलजोल करते हैं। हीन प्रवृत्ति वाले हीन प्रवृत्ति वालों के साथ, उत्तम प्रवृत्ति वाले उत्तम प्रवृति वालों के साथ।

"भिक्षुओ! अतीत काल में भी ऐसा ही होता था, अनागत (भविष्य) में भी ऐसा ही होगा और इस समय भी ऐसा ही हो रहा है।"

-संयुत्तनिकाय (१.२.९९), चङ्कमसुत्त

गुणागार आनन्द

आनन्द की लोकप्रियता

आयुष्मान आनन्द के वारे में यह विख्यात था कि 'वे सवको प्रसन्न रखने वाले, अभिरूप, दर्शनीय, वहुश्रुत और संघ की शोभा हैं।' उनके इन गुणों के कारण उनके दर्शन के लिए भी भिक्षु, भिक्षुणियां, उपासक, उपासिकाएं इत्यादि आते रहते।

आयुष्मान आनन्द भिक्षु-भिक्षुणी, उपासक-उपासिका, श्रावक-श्राविका, तैर्थिक और भगवान – सवके प्रिय थे। उनके व्यवहार से सभी प्रसन्न रहते। सभी उनको चाहते। वे वड़े ही प्रेम के साथ सवको भगवान के दर्शन कराते तथा लोगों की शंकाओं का निराकरण करते थे। यथापरिस्थिति लोगों को बुद्ध, धर्म तथा संघ में प्रतिष्ठित करने में सहायक होते।

भगवान के दर्शनार्थ जव भिक्षु आते तव दर्शन कराने के पहले आयुष्मान आनन्द वड़े ही प्रेम के साथ उनका हाल-चाल पूछते। भिक्षुओं से उनके प्रश्न होते – "रास्ते में कोई कष्ट तो नहीं हुआ? ठीक से भोजन मिला न? अच्छी तरह सोच-विचार कर कार्य करते हो, साधना करते हो न? आचार्य उपाध्याय का व्रत पूर्ण करते हो?" इस तरह मैत्रीपूर्ण स्वागत करने का धर्म वखूवी निभाते।

भिक्षुणियों से – "वहनो! क्या आठ गुरुधर्मों का पालन करती हो?"

उपासकों से पारिवारिक मैत्रीपूर्ण हाल-चाल नहीं करते – जैसे "आओ, स्वागत है। कोई शारीरिक कष्ट तो नहीं। परिवार के स्वजन स्वस्थ हैं न?" वल्कि धर्म के अनुरूप उनका हालचाल पूछते – "उपासको! तीन शरण और पांच शील का अच्छी तरह पालन करते हो न? माता-पिता की सेवा ठीक से करते हो? उपोसथ व्रत के पालन में ढिलाई तो नहीं करते? साधु-संत, श्रमण-व्राह्मण के पालन-पोषण हेतु दान-दक्षिणा देते हो न?" इसी प्रकार उपासिकाओं से भी उनका हाल-चाल पूछते थे।

सर्वहितैषी आनन्द

विसाखा की एक सखी एक वस्त्र (गलीचा) लेकर आयी जिसका मूल्य एक लाख मुद्रा था। उसने विसाखा से कहा - "सखी! मैं इस वस्त्र को तेरे द्वारा बनवाये गये नये विहार में विछाना चाहती हूं।" विसाखा ने कहा - "यदि मैं तुम्हें कहूंगी कि कोई स्थान खाली नहीं है तो तुम्हें दुःख होगा। अतः तुम स्वयं ही देख लो यदि कोई इसके उपयुक्त स्थान खाली हो।" सखी प्रासाद के हजार कमरों में घूम आयी परंतु उसे कोई भी स्थान नहीं दिखा जहां पर वह उस वस्त्र को बिछा सके। 'इस वस्त्र को विहार में दान देने का पुण्य-लाभ न पा सकूंगी' यह सोच निराश होकर वह एक ओर वैठ कर अश्रु वहाने लगी। आनन्द स्थविर ने उसे वैठा देख कारण पूछा। पूरी वात सुनकर उन्होंने उसे कहा - "पादप्रक्षालन के स्थान पर इसे विछाओ, पैर धोने के पश्चात भिक्षु यहां पर पैर पोंछकर भीतर प्रवेश करेंगे। तुम असीम पुण्य की भागी वनोगी। यह स्थान विसाखा उपासिका के ध्यान में न आने से छूट गया था।"

धम्मकथिक आनन्द

जव भी कोई उपासक या राजपरिवार धर्म सुनने के लिए किसी भिक्षु की मांग करता तव भगवान आयुष्मान आनन्द से ही जाने के लिए कहते। इस वात को लेकर कुछ भिक्षुओं के मन में हुआ 'ऐसा क्यों? महास्थविर सारिपुत्त, महास्थविर महामोग्गल्लान, महास्थविर महाकस्सप इत्यादि महाश्रावकों के रहते हुए भी शास्ता आयुष्मान आनन्द को ही क्यों भेजते हैं?'

परिषद के अध्याशय के कारण आयुष्मान वहुश्रुतों में अग्र हैं। शव्द और अर्थ को अच्छी तरह समझते-समझाते हैं, मृदुभाषी हैं और सवके प्रिय हैं। चारों ओर से पद-व्यंजन के साथ मधुर धर्मकथा करने में समर्थ हैं। शाक्य राजाओं ने पहले विहार जाकर उनकी कथा सुनी थी। प्रसन्नतापूर्वक उसका अनुमोदन किया था। शाक्यमंडली के लिए आयुष्मान आनन्द लोकप्रिय और श्रेष्ठ धर्मकथिक हैं।

राजपरिवार की स्त्रियों को विहार जाकर अपनी इच्छानुसार धर्म सुनने का अवसर नहीं प्राप्त होता था। इसलिए राजा के निवेदन पर वहां धर्मकथा के लिए शास्ता आयुष्मान आनन्द को ही भेजते थे। वे स्त्रियां आयुष्मान आनन्द से धर्मकथा सुनना पसंद करती थीं, सुनकर प्रसन्न और संतुष्ट हो जाती थीं।

आयुष्मान आनन्द के इन्हीं गुणों के कारण भगवान ने उन्हें यह कार्य सौंपा। आयुष्मान आनन्द शास्ता द्वारा सौंपे गये उत्तरदायित्व का निष्ठापूर्वक निर्वाह भी करते।

आनन्द की वस्त्र व्यवस्था

बुद्ध-विरोधी मागण्डिया ने समय-समय पर भगवान बुद्ध के प्रति ईर्ष्या के चलते उन्हें नीचा दिखाने के लिए त्रिरत्न-श्रद्धालु सामावती को मोहरा वनाकर अनेक षड्यंत्र रचे। परंतु रानी मागण्डिया सामावती के मैत्री-भावना के चलते हर कदम पर विफल होती रही। राजा उदयन को पता चला रानी सामावती निर्दोष है। बुद्ध-विरोधी मागण्डिया रानी सामावती पर तरह-तरह के लांछन लगा रही है। राजा उदयन ने रानी सामावती से कहा - "देवी! तुम निष्कलंक हो। मैं तुझे वर देना चाहता हूं। तुम्हारी क्या इच्छा पूरी करूं?"

"महाराज! मुझे धन-दौलत, सोने-चांदी की आवश्यकता नहीं है। यदि आप प्रसन्न हैं, तो यही वर दें कि प्रतिदिन शास्ता राजभवन आयें और मैं उनसे धर्म सुनूं।"

महाराज ने रानी की इच्छा को भगवान के समक्ष प्रकट किया तथा निवेदन किया - "भंते! प्रतिदिन पांच सौ भिक्षुओं के साथ भगवान राजभवन पधारें। रानी सामावती अपनी सहेलियों के साथ धर्मोपदेश सुनना चाहती है।"

"महाराज! वुद्धों को प्रतिदिन एक ही जगह पिंडपात के लिए नहीं जाना चाहिए। अन्य स्थानों पर जनता शास्ता के आगमन की प्रतीक्षा करती रहती है। उन्हें वुद्ध के दर्शन से वंचित नहीं किया जा सकता।"

शास्ता ने थेर आनन्द को आज्ञा दी। तब से वे पांच सौ भिक्षुओं के साथ नियमित रूप से राजकुल जाते। वे देवियां प्रतिदिन अपने हाथ से परोस कर भिक्षुओं को भोजन करातीं और धर्म सुनतीं।

एक दिन स्थविर से धर्मोपदेश सुनकर वे सभी बहुत ही प्रसन्न हुईं। पांच सौ उत्तरासंगों (ऊपर के कपड़ों) से धर्म की पूजा की। एक-एक वस्त्र पांच सौ मूल्य का था।

सायंकाल महाराज ने सभी स्त्रियों को एक वस्त्र में देखकर पूछा -"तुम लोगों के उत्तरासंग कहां हैं?"

"महाराज! हम लोगों ने आर्य आयुष्मान आनन्द को दे दिये।"

राजा को आश्चर्य हुआ - "उन्होंने सब ले लिये?"

"हां, महाराज! ले लिये।"

"भिक्षुगण इतने वस्त्रों का क्या करेंगे?"

राजा स्थविर आनन्द के पास गये। उनकी वंदना की। एक ओर बैठ गये। देवियों द्वारा दिये गये वस्त्रों की चर्चा की। फिर राजा ने पूछा - "भंते! क्या ये अधिक नहीं हैं? इतने वस्त्रों का आप क्या करेंगे?"

आयुष्मान आनन्द ने कहा - "महाराज! हम लोग पर्याप्त वस्त्र लेकर शेष वैसे भिक्षुओं को देंगे जिनके वस्त्र जीर्ण हो गये हैं।"

महाराज ने पूछा - "भिक्षु अपने जीर्ण वस्त्र का क्या करेंगे?"

"जिन भिक्षुओं के वस्त्र जीर्णतर हैं उनको देंगे।"

"वे अपने जीर्णतर चीवर का क्या करेंगे?'

"महाराज! वे उनसे बिछाने की चादर बनायेंगे।"

"आयुष्मान! पुराने बिछाने की चादर का क्या करेंगे?"

स्थविर ने कहा - "जमीन पर बिछाने के काम में लायेंगे।"

"और जमीन पर बिछाने वाले जो पुराने हो गये, उनका क्या करेंगे?"

"महाराज! पैर पोंछना बनायेंगे।"

"भंते! पुराने पैर पोंछना का क्या करेंगे?"

"उसके टुकड़े-टुकड़े करके उसमें मिट्टी मिला कर उसे दीवाल लीपने के काम में लायेंगे।"

"भंते! इतना करने पर भी आर्यों को दिया गया नष्ट नहीं होता?"

"हां, महाराज! ऐसा ही समझें।"

राजा ने प्रसन्न होकर और भी पांच सौ वस्त्र मंगवाकर स्थविर के चरणों पर रखकर वंदना की।

भगवान के महापरिनिर्वाण के पश्चात स्थविर आनन्द पूरे जंबूद्वीप में घूमते हुए विहारों में गये और अपने लिए मिले सभी वस्त्रों को सह-भिक्षुओं में बांट दिया।

घुड़साल से भिक्षा लाना
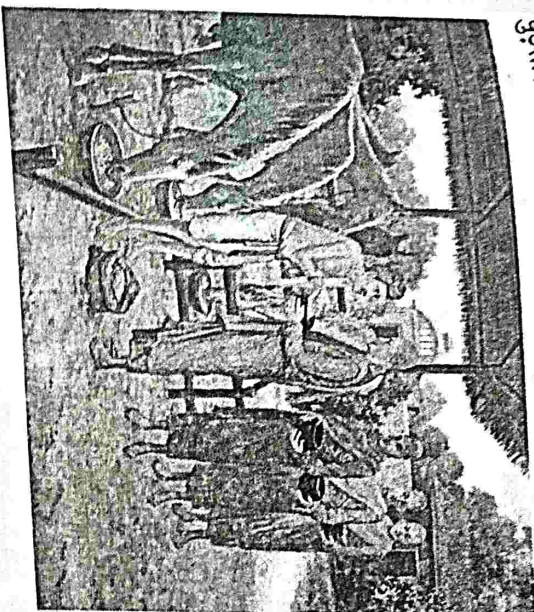
भगवान बुद्ध और उनकी शिक्षा का विरोधी वेरंजा ब्राह्मणग्राम का अधिपति वेरंज ब्राह्मण, जब पहली बार भगवान से मिला और उनका धर्मप्रवचन सुना तब अत्यंत प्रभावित हुआ। प्रवचन में ही उसकी अनेक शंकाओं का समाधान हो गया। जो बची-खुची थीं, उनका भी प्रश्नोत्तर में पूर्णतया समाधान हो गया। वह अत्यंत संतुष्ट-प्रसन्न हुआ। उसने भिक्षु-संघ-सहित भगवान को अगला वर्षावास वेरंजा ब्राह्मणग्राम में उसके अतिथि होकर बिताने के लिए विनम्रतापूर्वक आमंत्रित किया।

भगवान समय पर वेरंजा पहुँचे। परंतु तव तक वेरंज ब्राह्मण भूल गया था कि उसने भिक्षु-संघ-सहित भगवान को वेरंजाग्राम में वर्षावास के लिए आमंत्रित कर रखा है। वह वेरंजाग्राम के निवासी ब्राह्मणों को भी यह नहीं वता पाया कि अव वुद्ध और उनकी शिक्षा के संवंध में उसकी सारी शंकाएं निर्मूल हो गयी हैं।

विनय के नियमों के अनुसार अव पूरा वर्षावास उन्हें वेरंजा में ही विताना था। वेरंजा छोड़ कर वे अन्यत्र कहीं जा नहीं सकते थे। उन्हीं दिनों वर्षा ऋतु में अकाल पड़ा। समय पर वर्षा नहीं हुई। इससे भिक्षुओं की परेशानियां और वढ़ीं। संयोग से उसी समय घोड़ों के कुछ व्यापारी पांच सौ घोड़ों के साथ वेरंजाग्राम में टिके हुए थे। उनके पास पर्याप्त मात्रा में घोड़ों को खिलाने कि लिए, परंतु मनुष्यों के न खाने योग्य, हल्के किस्म का अनाज था। घोड़े के व्यापारी वही अनाज भिक्षुओं को दान में देते थे। सभी भिक्षु उसी को ऊखल में कूट कर जीवनयापन करते थे।

आनन्द उन्हीं दानों को ऊखल में कूट कर, सिलवट में पीस कर, पानी में भिगो कर भगवान को देते थे। भगवान उसी का आहार ग्रहण करते थे।

ऊखल की आवाज सुन कर भगवान ने आनन्द से पूछा - "आनन्द! यह कैसी आवाज है?" आनन्द ने भगवान को सारी वास्तविक स्थिति वतायी।

भगवान ने साधुकार दिया।

साधु! आनन्द, साधु! तुम सत्पुरुषों ने दुर्भिक्ष को जीत लिया है। तुममें लोभ नहीं है। इच्छाओं पर तुमने विजय प्राप्त कर ली है। इसे देख कर आने वाली पीढ़ियों के भिक्षु भोजन के प्रति उपेक्षाभाव रखना सीखेंगे।

इसी प्रसंग में उन्होंने यह गाथा कही -

सब्बत्थ वे सप्पुरिसा चजन्ति, न कामकामा लपयन्ति सन्तो।
सुखेन फुट्ठा अथ वा दुखेन, न उच्चावचं पण्डिता दस्सयन्ति॥

-धम्मपद (८३), पण्डितवग्गो

[सत्पुरुष सर्वत्र इच्छाओं का त्याग करते हैं। संत लोग कामनाओं के लिए लपलपाते नहीं। चाहे सुख मिले या दुःख, ज्ञानी जन (अपने मन का) उतार-चढ़ाव प्रदर्शित नहीं करते।]

भगवान अपना नियम सदा निभाते हैं। जो वर्षावास के लिए आमंत्रित करता, वर्षावास पूरा होने पर उससे विदाई लेने अवश्य जाते। यहां भी यही हुआ। वर्षावास पूरा होने पर भिक्षु-संघ-सहित भगवान वेरंज ब्राह्मण के घर पहुँचे। पहचानते ही वेरंज को अपनी भूल याद आयी। उसने कहा, पारिवारिक व्यस्तता के कारण वह आमंत्रण को विल्कुल भूल गया। अव विदाई के समय भिक्षु-संघ-सहित भगवान को दूसरे दिन भोजन के लिए आमंत्रित किया। भगवान ने स्वीकारा और उसके घर पहुँचे। उसने वहुत उत्तम भोजन परोसा। भिक्षुओं ने इसे भी उसी अनासक्तभाव से ग्रहण किया, जैसे कि घोड़ों का अन्न ग्रहण किया था।

आनन्द सहित भगवान ने वेरंज ब्राह्मण के मंगल-कल्याण हेतु उसे धर्म का उपदेश दिया।

अछूत कन्या

ऊंच-नीच तथा जात-पांत का विकट भेदभाव और अस्पृश्यता का कलंक न जाने कव से भारत की सामाजिक व्यवस्था को दूषित करता आ रहा है। आयुष्मान आनन्द के जीवनकाल की एक घटना -

प्रकृति नाम की एक षोडशी अछूत-कन्या, अपने परिवार के लिए अछूतों के कुँए में से जल भर रही है। दरिद्रता के मारे मैले-कुचैले, फटे-पुराने वस्त्र पहने है। सामने से भगवान वुद्ध के उपस्थाक आयुष्मान आनन्द चले आ रहे हैं। भगवान के चचेरे भाई अत्यंत सुंदर हैं, गौरवर्ण हैं, प्रवल प्रभावशाली व्यक्तित्व के धनी हैं। स्पष्टरूप से उच्चवर्णीय क्षत्रिय दिखते हैं। चल कर आ रहे हैं। गर्मी के मारे शरीर झुलस रहा है। प्यास के मारे कंठ सूख रहा है। कुँए के समीप आते हैं और प्रकृति को पानी भरते देख कर, उससे पीने के लिए पानी मांगते हैं। अछूत-कन्या प्रकृति सहम जाती है। यह व्यक्ति भिक्षु होते हुए भी स्पष्टतया उच्च वर्ण का ही है। लेकिन यह नहीं जानता है कि मैं नीची जाति की हूं। क्यों न मैं इसे जतला दूं कि मैं अछूत परिवार की युवती हूं। यह कुँआ भी अछूतों का है। यह पानी मैं किसी ऊंचे कुल के व्यक्ति को पीने के लिए नहीं दे सकती।

तव वह भोलेपन से कहती है -
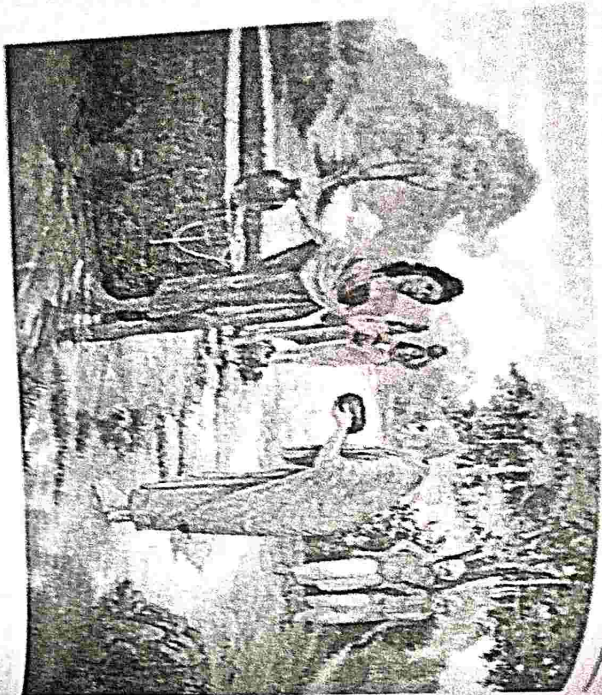
"श्रमण! मैं नीची जाति की युवती हूं। मैं आपको पीने के लिए इस कुंए का जल कैसे दे सकती हूं?"

भिक्षु आनन्द ने तपाक से उत्तर दिया -

"बहन! मैंने तुमसे पानी मांगा। जाति नहीं पूछी।"

आयुष्मान आनन्द ने अपनी प्यास बुझायी और आगे चल पड़े। अछूतपुत्री प्रकृति धक-धक करते हुए कलेजे से उनकी ओर एकटक निहारती रह गयी।

यकायक उसके मन में बिजली-सी कौंधी। यह जो उच्च जाति का युवा पुरुष मुझ अछूतपुत्री के हाथ का पानी पीने से नहीं हिचकिचाया, वह मुझे अपनी अर्धांगिनी बनाना भी अवश्य स्वीकार कर लेगा। यदि ऐसा हुआ तो मैं निहाल हो जाऊंगी। मेरा जीवन सफल हो जायगा। हम अछूत वालाओं को ऐसा सुंदर और उदारचेता जीवनसंगी कहां मिल सकता है?

यह विचार मन में आते ही वह द्रुत गति से चल कर भिक्षु आनन्द के पास जा पहुंची और अपना निवेदन उनके सामने प्रस्तुत किया। भिक्षु ने उसे तुरंत अस्वीकार कर दिया। उसे बड़ी निराशा हुई। बेचारी का मुंह उतर गया। केवल इतना पूछ पायी -

"आखिर क्यों? जब आप मुझ निम्नजाति की महिला के हाथ का पानी पी सकते हैं, तब मेरे साथ गृहस्थ-जीवन बिताने में क्या ऐतराज है?"

"जात-पांत के भेदभाव के कारण मैं तुम्हारा प्रस्ताव अस्वीकार नहीं करता। लेकिन आजन्म ब्रह्मचर्य का व्रत लिए होने के कारण मैं असमर्थ हूं। हमारे महाकारुणिक भगवान बुद्ध ने मनुष्यमात्र को शरण दी है। तुम भी उनके यहां जाकर शरण लो। भगवान सबको शरण देते हैं। तुम्हें भी वहां शरण मिलेगी। उनके यहां जाति-जन्म का भेदभाव नहीं है। उनकी शरण में आकर साधना करते हुए अनार्य आर्य बन जाते हैं।"

यह सुनकर प्रकृति अत्यंत प्रसन्न हुई, उत्साहित हुई और भगवान की शरण की ओर उन्मुख हो गयी। उसका भाग्य जागा। वह धन्य हुई।

आनन्दबोधि

कोसलदेश की राजधानी सावत्थी।

श्रेष्ठी अनाथपिण्डिक ने करोड़ों की संपदा लगाकर जेतवन में महाविहार बनवाया। भगवान वर्षावास के दिनों में उस विहार में रहते और लोगों को धर्म सिखाते। वर्षावास के बाद वे अन्य प्रदेशों के लोगों को धर्म बांटने के लिए चारिका के लिए निकल पड़ते। भगवान के निवासकाल में विहार में जो चहल-पहल रहती वह उनकी अनुपस्थिति में बहुत कम हो जाती। वातावरण उतना जीवंत नहीं रहता, फीका पड़ जाता। कुछ एक नगर-वासी भक्तजन विहार में आते। भगवान के निवास की खाली कुटी के सामने श्रद्धा के फूल चढ़ाकर चले जाते। पर उन्हें संतोष नहीं होता। श्रद्धा व्यक्त करने के लिए उन्हें कोई ठोस आधार चाहिए था। श्रेष्ठी अनाथपिण्डिक को यह कमी खलती।

लोग चाहते थे कि भगवान की अनुपस्थिति में वहां कोई मंदिर हो जहां वे अपनी श्रद्धाभाजन देवी, देवता, यक्ष, ब्रह्म अथवा संतों के नाम पर चैत्य बनाते, मंदिर बनाते। इनमें अपने इष्ट की मूर्ति अथवा चिह्न स्थापित करते। इन चैत्यों व देवस्थानों पर अकेले अथवा समूह में भक्तजन जाते, पूजन-अर्चन करते, पत्र-पुष्प चढ़ाते, धूप-दीप जलाते, मनौती मनाते और

मनौती पूरी होने पर उत्सव-मंगल मनाते। यों इन देव-स्थानों पर बड़ी धूमधाम और चहल-पहल वनी रहती।

श्रेष्ठी अनाथपिण्डिक चाहता था कि ऐसा ही कुछ जेतवन पर भी हो, जिससे भगवान की अनुपस्थिति में भी वहां चहल-पहल वनी रहे। उसने अपनी मनोकामना भिक्षु आनन्द के सामने प्रकट की। आनन्द ने वहुत व्यवहार-कौशल्य से यह वात भगवान तक पहुँचायी। उसने भगवान से पूछा -

"भंते भगवान! चैत्य कितने प्रकार के होते हैं?"

भगवान ने कहा, "तीन प्रकार के - शारीरिक, उद्देसिक और पारिभोगिक।" आयुष्मान आनन्द ने पूछा, "भगवान! क्या वुद्ध के जीते जी उनके नाम पर कोई चैत्य वनाया जा सकता है?"

भगवान ने कहा, "शारीरिक चैत्य तथागत के शरीर त्यागने पर उनकी अस्थि-अवशेषों पर ही वन सकता है। उद्देसिक चैत्य में मूर्ति चिह्न आदि की स्थापना द्वारा मनोकल्पना की प्रमुखता होती है जो कि अवांछनीय है। हां, पारिभोगिक चैत्य तथागत के जीवनकाल में भी वन सकता है।"

आनन्द ने अनाथपिण्डिक की इच्छा सामने रखते हुए जेतवन में ऐसा एक पारिभोगिक चैत्य स्थापित करने की भगवान से स्वीकृति मांगी ताकि उनकी अनुपस्थिति में जेतवन जनशून्य और उत्साहशून्य न हो जाया करे।

यह तो स्पष्ट था कि भगवान के परिनिर्वाण के वाद उनके द्वारा प्रयोग में लाये हुए भिक्षापात्र, चीवर, लकुटी आदि वस्तुओं पर चैत्य वनने लगेंगे। परंतु जीते जी वे ऐसी परंपरा स्थापित किया चाहते थे जो कि परम अर्थ के क्षेत्र में स्वस्थ हो, कल्याणकारिणी हो। वह अपनी उपभोग की हुई किसी भौतिक वस्तु पर कोई चैत्य वनवाना नहीं चाहते थे। लोकोत्तर निर्वाण की प्राप्ति के लिए जिसका उपभोग किया वह तो वोधिवृक्ष था। अतः आनन्द का ध्यान उसी ओर खींचते हुए भगवान ने कहा, "तथागत के जीते जी वोधिवृक्ष ही पारिभोगिक चैत्य होता है जिसकी छाया में वैठकर अन्य लोग भी निर्वाण के सुख का रसास्वादन कर सकें।"

आनन्द को यह वात वहुत भायी। उन्होंने महामोग्गल्लान से प्रार्थना की और उनके जरिए वोधगया के वोधिवृक्ष का वीज मंगवाया और महाराज पसेनदि, माता विसाखा तथा अन्यान्य भक्तों की उपस्थिति में जेतवन के
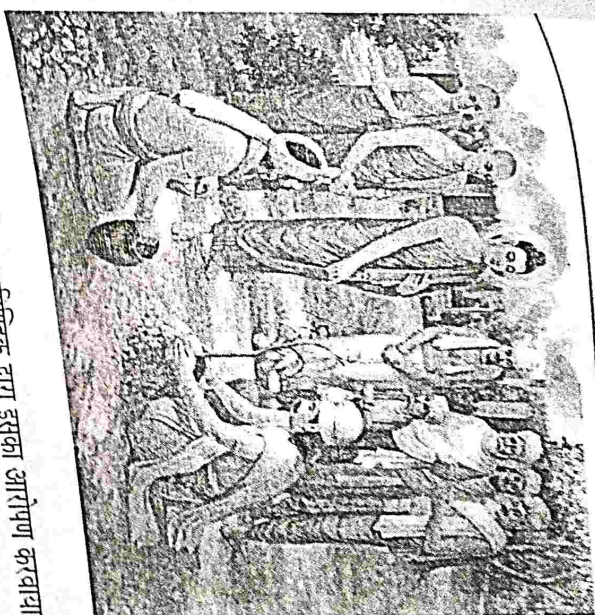
मुख्य द्वार के समीप श्रेष्ठी अनाथपिण्डिक द्वारा इसका आरोपण करवाया। जव वृक्ष वढ़कर तैयार हुआ तव आनन्द के सत्प्रयत्नों से लगाया गया था इसलिए यह वृक्ष 'आनन्दवोधि' कहलाया।

आनन्द ने भगवान से प्रार्थना की कि जिस प्रकार उन्होंने वोधिवृक्ष के नीचे रात-भर साधना की थी, उसी प्रकार यहां भी करें। पहली वार सम्यक-संवोधि जगाने वाली साधना तो अद्वितीय ही होती है। फिर भी भगवान ने साधकों के कल्याण के लिए आनन्दवोधि के नीचे एक पूरी रात निरोध-समापत्ति की साधना की और उस स्थान के अणु-अणु को निर्वाणधातु और धर्मधातु की तरंगों से आप्लावित कर चिरकाल के लिए परम पावन वना दिया।

सर्वसाधारण सामान्य गृहस्थ ही नहीं, अनेक ऐसे भिक्षु भी जो कि भगवान के साधना-संवंधी गंभीर धर्म में परिपक्व नहीं हो पाये थे, वे भगवान के जीवनकाल में ही इस आनन्दवोधि रूपी चैत्य पर श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पुष्प आदि चढ़ाकर पुण्य अर्जित करते रहे और यह परंपरा आगे भी चलती रही। परंतु साथ-साथ एक अन्य परंपरा गंभीर साधकों की भी थी। उन्होंने भगवान के जीवनकाल में और तत्पश्चात भी आनन्दवोधि का उपयोग साधना के लिए किया। आनन्दवोधि आज भी

जीवित है। संभवतः यह संसार का सबसे पुरातन बूढ़ा वृक्ष है। भारतवर्ष में पुनर्जागृत विपश्यना के गंभीर साधक आज भी जब इस पावन वृक्ष के नीचे बैठकर विपश्यना साधना करते हैं तब देखते हैं कि कितना शीघ्र उनका मानस अनित्यबोध की धर्म-तरंगों से आप्लावित होने लगता है।

आनन्द तथा सारिपुत्त में परस्पर स्नेहभाव

जिन पांच शाक्य कुमारों - अनुरुद्ध, आनन्द, भगु, किमिल और भद्दिय ने एक साथ प्रव्रज्या ली, आयुष्मान आनन्द उनमें सबसे नये थे। फिर भी महास्थविर सारिपुत्त सबसे पहले उन्हीं को पूछते थे। एक-दूसरे के गुणों से प्रसन्न होकर दोनों ही एक दूसरे के प्रति सम्मान एवं आदरभाव रखते थे। निर्विवाद हो, दूध-जल की तरह मिश्रित हो, एक दूसरे का सम्मोदन करते हुए, एक दूसरे को प्रिय नेत्रों से देखते हुए विहार करते।

यदि आयुष्मान आनन्द अच्छा भोजन, प्रणीत चीवर, आदि दान में पाते तो पहले स्थविर सारिपुत्त को ही देते। भगवान के उपस्थाक होने के कारण गृहस्थों और दायकों से आयुष्मान आनन्द के संपर्क अधिक थे। उन दायकों को प्रव्रजित कराकर स्थविर सारिपुत्त को उनका उपाध्याय वनाते थे, उनसे उन्हें संपन्न कराते थे। इस प्रकार पांच सौ भिक्षुओं को उनका शिष्य वनवाया। आयुष्मान आनन्द के लिए महास्थविर उनके ज्येष्ठ भ्राता के समान थे। आयुष्मान आनन्द सोचते थे - 'महास्थविर ने एक असंखेय्य और एक लाख कल्पों तक पारमी पूरी करके सोलह प्रकार की प्रज्ञा का प्रतिवेधन किया है, तव वे शास्ता के धर्म-सेनापति वने हैं। भगवान ने स्वयं उन्हें अग्रश्रावक के स्थान पर प्रतिष्ठित किया है।'

स्थविर सारिपुत्त भी आयुष्मान आनन्द को कनिष्ठ भाई के समान स्नेह और सम्मान देते थे। आयुष्मान सारिपुत्त को इस वात से प्रसन्नता और संतोष होता था कि सम्यक-संवुद्ध के प्रति उनके जो कर्त्तव्य हैं, उन सभी कर्त्तव्यों को आयुष्मान आनन्द वखूवी निभाते थे।

सारिपुत्त के प्रति भगवान का भाव

सावत्थी का प्रसंग।

उस समय आयुष्मान आनन्द भगवान के पास गये। पास जाकर भगवान का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान आनन्द को भगवान ने यह कहा - - "आनन्द! तुझे सारिपुत्त सुहाता है न?"

"भंते! मूर्ख, दुष्ट, मूढ़ और सनकी व्यक्ति को छोड़कर ऐसा कौन होगा जिसे महास्थविर सारिपुत्त न सुहायें!"

"भंते! पंडित हैं सारिपुत्त! भंते! महाप्रज्ञावान हैं सारिपुत्त! भंते! अतिविस्तृत प्रज्ञा वाले हैं सारिपुत्त! भंते! अत्यधिक प्रसन्न, तीव्र एवं तीक्ष्ण प्रज्ञा वाले हैं सारिपुत्त! उसमें पैठना सवके लिए आसान नहीं। भंते! स्थविर सारिपुत्त अति अल्पेच्छ, संतोषी और विवेकशील हैं। वे अनासक्त हैं, उत्साही हैं, कुशल वक्ता हैं, वचन कुशल हैं, व्याख्याकार हैं, पापनिंदक हैं। भंते! मूर्ख, दुष्ट, मूढ़ और सनकी व्यक्ति को छोड़कर भला ऐसा कौन होगा जिसे महास्थविर पसंद न हों?"

तव भगवान ने आयुष्मान आनन्द के कथन का अनुमोदन किया।

-संयुत्तनिकाय (१.१.११०), सुसिमसुत्त

बहुश्रुत आनन्द ही धर्मरत्न

एक वार एक व्राह्मण ने सोचा - "बुद्धरत्न और संघरत्न की पूजा तो स्पष्ट है पर धर्मरत्न की पूजा कैसे होती है? भगवान के पास जाकर उसने इसके वारे में पूछा।

भगवान ने कहा - "व्राह्मण! यदि तुम धर्मरत्न की पूजा करना चाहते हो तो वहुश्रुत की पूजा करो।

"भंते! वहुश्रुत कौन है?"

"व्राह्मण! संघ से पूछो।"

व्राह्मण ने भिक्षु-संघ के पास जाकर पूछा - "भंते! वहुश्रुत कौन हैं? वताने की कृपा करें।"

"व्राह्मण! स्थविर आनन्द वहुश्रुत हैं।"

व्राह्मण आयुष्मान आनन्द से मिला। एक लाख मूल्य के चीवर से उसने स्थविर आनन्द की पूजा की। स्थविर वह चीवर लेकर शास्ता के पास आये।

भगवान ने पूछा - "आनन्द! इसे कहां से पाया?"

"भंते! एक व्राह्मण ने दिया है।"

"आनन्द! इसका क्या करोगे?"

"भंते! इसे मैं आयुष्मान सारिपुत्त को देना चाहता हूं।"

"वहुत अच्छा, आनन्द! वहुत अच्छा!" सहर्ष भगवान ने कहा।

"किंतु भंते! वे तो चारिका पर हैं, आने पर दूंगा।"

"तो आने पर देना।"

आनन्द ने कहा - "भंते! इसे अपने पास रखना विनय के अनुकूल होगा?"

"सारिपुत्त कव आयेंगे?"

"भंते! दस दिनों वाद।"

भगवान ने कहा - "आनन्द! आज्ञा देता हूं, दस दिनों तक अतिरिक्त चीवर रखने की" - यह कह भगवान ने यह शिक्षापद प्रज्ञापित किया।

पांच गुणों से युक्त आयुष्मान आनन्द

एक समय आयुष्मान आनन्द आयुष्मान सारिपुत्त के पास गये। पास जाकर उनका कुशल-क्षेम पूछकर एक ओर वैठ गये। एक ओर वैठे आयुष्मान आनन्द ने आयुष्मान सारिपुत्त से यह कहा - "आवुस सारिपुत्त! कौन-से गुण होने से भिक्षु कुशल-धर्मों के प्रति क्षिप्र-ध्यान देने वाला कहा जाता है, सम्यक प्रकार ग्रहण करने वाला तथा ग्रहण की हुई वात को धारण कर रखने वाला होता है?"

"आयुष्मान आनन्द वहुश्रुत हैं। आयुष्मान आनन्द ही इस विषय में अपना मत प्रकट करें।"

"आवुस सारिपुत्त! सुनो, अच्छी तरह मन में धारण करो, मैं कहता हूं।

"आवुस सारिपुत्त! यहां कोई भिक्षु अर्थकुशल होता है, धर्मकुशल होता है, व्यंजनकुशल होता है, निरुक्ति(=शब्दों की व्युत्पत्ति के वारे में)कुशल होता है, पूर्वापर(=क्रम)कुशल होता है। आवुस सारिपुत्त! इतने धर्मों के होने से कोई भिक्षु कुशल-धर्मों के प्रति क्षिप्र-ध्यान देने वाला कहा जाता है,

सम्यक प्रकार ग्रहण करने वाला तथा ग्रहण की हुई वात को धारण कर रखने वाला होता है।"

"आश्चर्य है, आवुस! अद्भुत है, आवुस! आयुष्मान आनन्द का यह सुभाषित। हमारी यह मान्यता है कि आयुष्मान आनन्द इन पांच गुणों से युक्त हैं। आयुष्मान आनन्द अर्थकुशल हैं, धर्मकुशल हैं, व्यंजनकुशल हैं, निरुक्तिकुशल हैं, पूर्वापरकुशल हैं।"

-अङ्गुत्तरनिकाय (२.५.१६९), खिप्पनिसन्तिसुत्त

सोतापन्न चार गुणों से युक्त

एक समय आयुष्मान सारिपुत्त और आयुष्मान आनन्द सावत्थी में अनाथपिण्डिक के जेतवन में विहार करते थे। तव सायंकाल आयुष्मान आनन्द आयुष्मान सारिपुत्त के पास आये। एक ओर वैठे आयुष्मान आनन्द आयुष्मान सारिपुत्त से वोले - "आवुस सारिपुत्त! कितने धर्मों से युक्त होने से भगवान ने किसी को सोतापन्न वतलाया है जो मार्ग से च्युत नहीं हो सकता है, उसका संवोधि प्राप्त कर लेना सुनिश्चित होता है?"

"आवुस आनन्द! चार धर्मों से युक्त होने से भगवान ने किसी को सोतापन्न वताया है।

"आवुस! आर्यश्रावक वुद्ध के प्रति अचल श्रद्धा से युक्त होता है - **'ऐसे ही तो हैं वे भगवान! अर्हत, सम्यक-संवुद्ध, विद्या तथा सदाचरण से संपन्न, उत्तम गति प्राप्त, समस्त लोकों के ज्ञाता, सर्वश्रेष्ठ, (पथ-भ्रष्ट घोड़ों की तरह) भटके लोगों को सही मार्ग पर ले आने वाले सारथी, देवताओं और मनुष्यों के शास्ता (आचार्य), वुद्ध भगवान।'**

"आवुस! आर्यश्रावक धर्म के प्रति अचल श्रद्धा से युक्त होता है - **'भगवान द्वारा भली प्रकार आख्यात किया गया यह धर्म सांदृष्टिक है, काल्पनिक नहीं, प्रत्यक्ष है, तत्काल फलदायक है, आओ और देखो (कहलाने योग्य है), निर्वाण तक ले जाने योग्य है, प्रत्येक समझदार व्यक्ति के साक्षात करने योग्य है।'**

"आवुस! आर्यश्रावक संघ के प्रति अचल श्रद्धा से युक्त होता है - **'सुमार्ग पर चलने वाला है भगवान का श्रावक-संघ, ऋजु मार्ग पर चलने वाला है भगवान का श्रावक-संघ, न्याय (सत्य) मार्ग पर चलने वाला है भगवान का श्रावक-संघ, यह जो (मार्ग-फल प्राप्त) आर्य-व्यक्तियों के चार जोड़े हैं, यानी आठ पुरुष पुद्गल हैं – यही भगवान का श्रावक-संघ है, (यही) आवाहन करने योग्य है, पाहुना (अतिथि) वनाने योग्य है, दक्षिणा देने योग्य है, अंजलिवद्ध (प्रणाम) किये जाने योग्य है। लोगों का यही श्रेष्ठतम पुण्य-क्षेत्र है।'**

"आवुस! आर्यश्रावक आर्यों के प्रिय, अखंड, अछिद्र, निर्मल, शुद्ध, निर्वाध, विज्ञों द्वारा प्रशंसा-प्राप्त, मिश्रण-रहित, समाधि के लिए प्रेरक शीलों से युक्त होता है।

"इन चार धर्मों से युक्त आर्यश्रावक सोतापन्न हो जाता है। फिर वह धर्ममार्ग से च्युत नहीं हो सकता और उसका संवोधि प्राप्त कर लेना सुनिश्चित होता है।"

-संयुत्तनिकाय (३.५.१०००), पठमसारिपुत्तसुत्त

अनाथपिण्डिक की मृत्यु

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे। उस समय अनाथपिण्डिक गृहपति वहुत वीमार और दुःखी था। उसने यह सूचना भगवान को भिजवायी और आयुष्मान सारिपुत्त को भी सूचित करते हुए अपने यहां आने के लिए कहला भेजा।

आयुष्मान सारिपुत्त आयुष्मान आनन्द को अनुगामी वना अनाथपिण्डिक के घर गये और उसका कुशल-क्षेम पूछा। इस पर अनाथपिण्डिक ने कहा - "मुझे ठीक नहीं है, वड़ी दुःखमय वेदनाएं आ रही हैं जो जाने का नाम नहीं लेतीं, सिर में अत्यधिक पीड़ा है, तेज वायु पेट को काट रही है और शरीर खूव जल रहा है।"

यह सुन कर आयुष्मान सारिपुत्त ने अनाथपिण्डिक को चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काया एवं मन - इन छः इंद्रियों, इनके विषयों, इनके विज्ञान, इनके संस्पर्श, इनके संस्पर्श से होने वाली वेदनाओं; (आकाश-धातु एवं विज्ञान-धातु सहित) छः धातुओं; पांच स्कंधों; आकाशानन्त्यायतन, विज्ञानानन्त्यायतन, आकिंचन्यायतन, नैवसंज्ञानासंज्ञायतन; इहलोक, परलोक; दृष्ट, श्रुत, घ्राण, जिह्वा तथा स्पर्शेन्द्रिय द्वारा अनुभूत, विज्ञात,

प्राप्त, पर्येषित, अनुपर्येषित तथा मन द्वारा अनुविचारित के प्रति उपादान न करने और इनमें विज्ञान (चित्त) को न ठहराने का अभ्यास करने के लिए कहा।

ऐसा कहे जाने पर अनाथपिण्डिक रो पड़ा और कहने लगा कि मैंने ऐसी धार्मिक कथा पहले कभी नहीं सुनी।

आयुष्मान सारिपुत्त तथा आयुष्मान आनन्द के चले जाने के थोड़े ही समय के वाद अनाथपिण्डिक गृहपति ने शरीर छोड़ दिया और वह तुषित देवलोक में उत्पन्न हुआ।

तव प्रकाश-युक्त रात्रि में अनाथपिण्डिक देवपुत्र, भगवान के पास गया; जाकर भगवान को अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया। अनाथपिण्डिक देवपुत्र ने भगवान से गाथाओं में यह कहा -

"ऋषि-संघ से सेवित। धर्मराज वुद्ध का वास रह चुका यह जेतवन मेरे लिए प्रीतिदायक है।

"कर्म, विद्या, धर्म, शील और उत्तम जीवन; इनसे मनुष्य शुद्ध होते हैं, गोत्र और धन से नहीं।

"इसलिए पंडित पुरुष अपने हित को देखते, योनिशः कार्य-कारण का खूव ख्याल करके धर्म का चयन करे, ऐसे वह शुद्ध होता है।

"प्रज्ञा, शील और उपशम में सारिपुत्त-सा पारंगत जो भिक्षु हो, वह भी इतना ही महान होवे।"

अनाथपिण्डिक देवपुत्र भगवान को ये गाथाएं कहकर वहां से अंतर्धान हो गया। तव भगवान ने उस देवपुत्र की गाथाओं को भिक्षुओं को वताया। भगवान की वात सुन, आयुष्मान आनन्द ने भगवान से यह कहा -

"भंते! वह जरूर अनाथपिण्डिक देवपुत्र होगा। भंते! अनाथपिण्डिक गृहपति आयुष्मान सारिपुत्त के प्रति अति श्रद्धावान था।"

"साधु, साधु, आनन्द! जितना कुछ आनन्द तर्क से पाया जा सकता है, वह तूने पा लिया है। आनन्द! वह देवपुत्र अनाथपिण्डिक ही था।"

भगवान ने यह कहा, संतुष्ट हो आयुष्मान आनन्द ने भगवान के कहे का अभिनंदन किया।

-मज्झिमनिकाय (३.५.३८३-३८८), अनाथपिण्डिकोवादसुत्त

सारिपुत्त का परिनिर्वाण

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे। उस समय आयुष्मान सारिपुत्त मगध के नालकगाम में वीमार पड़े थे। श्रामणेर चुन्द आयुष्मान सारिपुत्त के उपस्थाक थे।

उसी वीमारी से आयुष्मान सारिपुत्त परिनिर्वाण को प्राप्त हो गये। श्रामणेर चुन्द ने आयुष्मान आनन्द को स्थविर सारिपुत्त के परिनिर्वाण का समाचार वताया तथा उनके पात्र-चीवर को भी साथ ले आया।

श्रामणेर को साथ लेकर आयुष्मान आनन्द भगवान के पास आये। उनका अभिवादन करके एक ओर वैठ गये। एक ओर वैठे आयुष्मान आनन्द भगवान से वोले – "भंते! श्रामणेर चुन्द कहता है कि आयुष्मान सारिपुत्त परिनिर्वाण को प्राप्त हो गये। यह उनका पात्र-चीवर है। भंते! इस समाचार को सुनकर मैं वहुत ही व्याकुल और वेचैन हो रहा हूं। मुझे दिशाएं भी सूझ नहीं रही हैं। धर्म भी समझ में नहीं आ रहा है।"

"आनन्द! क्या सारिपुत्त शीलस्कंध को लेकर परिनिर्वृत्त हुआ है, या फिर समाधिस्कंध को, या प्रज्ञास्कंध को, या विमुक्तिस्कंध को, या विमुक्तिज्ञानदर्शन को लेकर परिनिर्वृत्त हुआ है?"

"नहीं, भंते! आयुष्मान सारिपुत्त न तो शीलस्कंध को लेकर परिनिर्वृत्त हुए हैं, न तो समाधिस्कंध को, न तो प्रज्ञास्कंध को, न तो विमुक्तिस्कंध को, न तो विमुक्तिज्ञानदर्शन को लेकर परिनिर्वृत्त हुए हैं किंतु वे मुझे उपदेश देने वाले, धर्म दिखाने वाले, धर्म वताने वाले, उत्साहित, प्रेरित और प्रहर्षित करने वाले थे। भगवन! सव्रह्मचारियों पर अनुग्रह रखने वाले थे। धर्म-संवंधी उलझनों को दूर करने वाले थे। मैं इस समय आयुष्मान सारिपुत्त द्वारा धर्म में किये गये उपकारों को स्मरण करता हूं। मैं उनके प्रति अति कृतज्ञ हूं।"

"आनन्द! क्या मैंने पहले ही उपदेश नहीं किया है कि सभी प्रियों से वियोग होता ही रहता है। जो कुछ उत्पन्न हुआ है वह विनाश को प्राप्त न हो - ऐसा नहीं हो सकता।

"आनन्द! जैसे किसी सारयुक्त वड़े वृक्ष की सवसे वड़ी डाल हो और वह गिर जाय, वैसे ही इस महान भिक्षु-संघ के रहते हुए भी सवसे वड़े सारयुक्त भिक्षु सारिपुत्त का परिनिर्वाण हो गया। आनन्द! यही सृष्टि का

नियम है। जो उत्पन्न हुआ है, वह एक-न-एक दिन अवश्य नष्ट होगा ही। अतः अपने आप को अपना द्वीप वनाओ, आत्मनिर्भर होओ, किसी दूसरे के भरोसे मत रहो। धर्म को अपना द्वीप वनाओ, धर्म की शरण ग्रहण करो, किसी अन्य की नहीं।

"आनन्द! कोई भिक्षु आत्मद्वीप होकर, आत्मशरण होकर, न कि अन्य किसी की शरण ग्रहण कर, धर्मद्वीप होकर, धर्मशरण होकर; न कि अन्य किसी की शरण ग्रहण कर कैसे विहार करता है?

"आनन्द! भिक्षु (साढ़े तीन हाथ के काया-रूपी) लोक में राग और द्वेष को दूर कर, श्रमशील, स्मृतिमान और संप्रज्ञानी वन, काया में कायानुपश्यी होकर विहार करता है;

"(साढ़े तीन हाथ के काया-रूपी) लोक में राग और द्वेष को दूर कर, श्रमशील, स्मृतिमान और संप्रज्ञानी वन, वेदनाओं में वेदनानुपश्यी होकर विहार करता है;

"(साढ़े तीन हाथ के काया-रूपी) लोक में राग और द्वेष को दूर कर, श्रमशील, स्मृतिमान और संप्रज्ञानी वन, चित्त में चित्तानुपश्यी होकर विहार करता है;

"(साढ़े तीन हाथ के काया-रूपी) लोक में राग और द्वेष को दूर कर, श्रमशील, स्मृतिमान और संप्रज्ञानी वन, धर्म में धर्मानुपश्यी होकर विहार करता है।

"आनन्द! इस प्रकार भिक्षु आत्मद्वीप होकर, आत्मशरण होकर, न कि अन्य किसी की शरण ग्रहण कर, धर्मद्वीप होकर, धर्मशरण होकर; न कि अन्य किसी की शरण ग्रहण कर विहार करता है।"

"आनन्द! जो कोई भी इस तरह साधना करते हुए आत्मद्वीप होकर, आत्मशरण होकर, न कि किसी अन्य की शरण ग्रहण कर, धर्मद्वीप होकर, धर्मशरण होकर; न कि किसी अन्य की शरण ग्रहण कर विहार करेंगे वे ही शिक्षाकामी भिक्षु (मेरे द्वारा उपदिष्ट धर्म में) अग्र (श्रेष्ठ) होंगे।"

-संयुत्तनिकाय (३.५.३७९), चुन्दसुत्त

विविध प्रकरण

मधुपिण्डिकोपदेश

एक वार एक गूढ़ प्रसंग को स्थविर महाकच्चान ने भिक्षुओं को वड़े ही सरल एवं अच्छे ढंग से समझाया। उसकी व्याख्या सुनकर भिक्षु अति प्रसन्न, प्रेरित एवं संतुष्ट हुए। उन्होंने आकर भगवान से सव कह सुनाया।

शास्ता ने कहा - "भिक्षुओ! पंडित है महाकच्चान, महाप्रज्ञावान है महाकच्चान! यदि तुमने यह अर्थ मुझसे पूछा होता, तो मैं भी इसका ऐसे ही व्याख्यान करता जैसे महाकच्चान ने किया है। इसको ऐसे ही धारण करो।"

तदनंतर आयुष्मान आनन्द ने कहा - "भंते! जैसे किसी वहुत भूखे व्यक्ति को कोई मधुपिंड (लड्डू) मिल जाये और वह इसे जहां-जहां से खाये, वहीं-वहीं से तृप्तिकारक स्वादु रस पाये; ऐसे ही कोई कुशाग्रवुद्धि भिक्षु इस धर्मपर्याय के अर्थ को अपनी प्रज्ञा से जहां कहीं से परखे, वहीं-वहीं से आत्मविभोरता और चित्त की प्रसन्नता प्राप्त करेगा। भंते! क्या नाम है इस धर्मपर्याय का?"

इस पर भगवान ने कहा - "तो आनन्द! इसे मधुपिण्डिक-धर्मपर्याय के नाम से धारण कर।"

-मज्झिमनिकाय (१.२.१९९-२०५), मधुपिण्डिकसुत्त

अस्थि-पंजर से राग कैसा?

एक समय पांच सौ भिक्षु भगवान के पास आये और उनसे कर्मस्थान ग्रहण कर अरण्य में साधना हेतु चले गये। वहां इन भिक्षुओं ने खूव परिश्रमपूर्वक ध्यान किया। कुछ दिनों वाद उन्हें ऐसा लगा कि वे अर्हत्व को प्राप्त हो गये हैं। तव वे सव अपनी अर्हत्व-समापत्ति की जानकारी भगवान को देने आ रहे थे। यह वात पहले से ही जानकर भगवान ने आनन्द से कहा, "आनन्द! इन भिक्षुओं को मेरे दर्शन करने की आवश्यकता नहीं है।

उन्हें कह देना कि वे पहले श्मशान जायं, फिर वहां से लौटकर मुझसे भेंट करें।"

आयुष्मान आनन्द ने भिक्षुओं को यह सूचना दी। भिक्षुओं ने सोचा - "भगवान दूरदर्शी हैं, अवश्य कोई कारण होगा।" वे सभी श्मशान गये। वहां शवों को देखा जो एक दिन, दो दिन पुराने थे। उन्हें देख कर भिक्षुओं को घृणा, जुगुप्सा और निर्वेद-सा होने लगा। उसी समय एक शव आया जिसे देखकर उन लोगों के मन में राग पैदा हुआ। उसी समय उन्हें यह पता चला कि अभी उनके संपूर्ण विकार निरुद्ध नहीं हुए हैं। अपनी गंधकुटी में बैठे-ही-बैठे शास्ता ने भिक्षुओं को निम्न गाथा कहते हुए सचेत किया, जैसे वे भगवान के सम्मुख उपस्थित हों -

यानिमानि अपत्थानि, अलाबूनेव सारदे।
कापोतकानि अट्ठीनि, तानि दिस्वान का रति॥

-धम्मपद १४९, जरावग्गो

[शरद काल की फेंकी गयी (अपथ्य) लौकी के समान (कुम्हलाये हुए मृत शरीर को देख कर) या कबूतरों के से वर्ण वाली (श्मशान में पड़ी) हड्डियों को देख कर किसको (इस देह से) अनुराग होगा?]

स्नान से शुद्धि – मुक्ति नहीं

सावत्थी का प्रसंग।

उस समय सङ्गारव नाम का ब्राह्मण सावत्थी में वास करता था जो कि उदकशुद्धि (जल-स्नान से पापों से मुक्ति) हेतु प्रतिदिन प्रातःकाल एवं सायंकाल जल में ही पैठा रहता था।

एक दिन आयुष्मान आनन्द सावत्थी में भिक्षाटन के बाद भगवान के पास गये। ब्राह्मण सङ्गारव के क्रिया-कलाप के संबंध में बताकर उन्होंने भगवान से निवेदन किया - "अच्छा हो, भंते! भगवान सङ्गारव ब्राह्मण के घर चलने की अनुकंपा करें ताकि उसकी उदक-शुद्धि संबंधी मिथ्यादृष्टि से उसे छुटकारा दिलाया जा सके।" चुप रह कर भगवान ने आयुष्मान आनन्द की प्रार्थना स्वीकार कर ली।

दूसरे दिन आयुष्मान आनन्द को साथ लेकर शास्ता ब्राह्मण के घर पहुँचे। सङ्गारव कुशल-क्षेम पूछकर नीचे आसन पर एक ओर बैठ गया। भगवान ने पूछा - "ब्राह्मण! क्या सचमुच तुम 'उदक-शुद्धिक' हो? प्रातः एवं सायंकाल जल में ही पैठे रहते हो? ब्राह्मण! तुम किस उद्देश्य से ऐसा करते हो?"

"हे गोतम! दिन भर में मुझसे जो पाप होते हैं, मैं सायंकाल नहाकर उन्हें वहा देता हूं और रात भर में जो पाप हो जाते हैं उन्हें प्रातः नहाकर बहा देता हूं। इसी महान उद्देश्य से मैं 'उदक-शुद्धिक' हूं। मैं 'उदक-शुद्धि' के सिद्धांत को मानता हूं और प्रातः एवं सायंकाल जल में पैठा रहता हूं।"

भगवान ने कहा -

"धम्मो रहदो ब्राह्मण सीलतित्थो,
अनाविलो सब्भि सतं पसत्थो।
यत्थ हवे वेदगुनो सिनाता,
अनल्लगत्ताव तरन्ति पारं।"

["हे ब्राह्मण! धर्म ही जलाशय है, शील का आचरण उसमें उतरने की सीढ़ियां (तीर्थ=घाट) हैं जो कि पूर्णतः स्वच्छ हैं। विद्वज्जन द्वारा यह प्रशस्त है। इसमें परम पुरुष ही स्नान कर पवित्रशरीर होकर भवसागर के पार चला जाता है।"]

"सुंदर, हे गोतम! बहुत सुंदर, हे गोतम! जैसे कोई उल्टे को सीधा कर दे, ढँके को उघाड़ दे, मार्ग-भूले को रास्ता बता दे अथवा अंधेरे में मशाल धारण करे, जिससे आंख वाले चीजों को देख सकें। इसी प्रकार गोतम ने अनेक प्रकार से धर्म को प्रकाशित किया है। हे गोतम! मैं उन भगवान, धर्म तथा भिक्षु-संघ की शरण जाता हूं। हे गोतम! आज से जीवनपर्यंत मुझे अपना शरणागत उपासक जानें।"

-संयुत्तनिकाय (१.१.२०७), सङ्गारवसुत्त

रोगी की सेवा

एक समय एक भिक्षु बीमार होने की वजह से दुर्बल, असहाय अवस्था में अपने मल-मूत्र में पड़ा था। अपने अस्वच्छ शरीर को स्वयं स्वच्छ करने
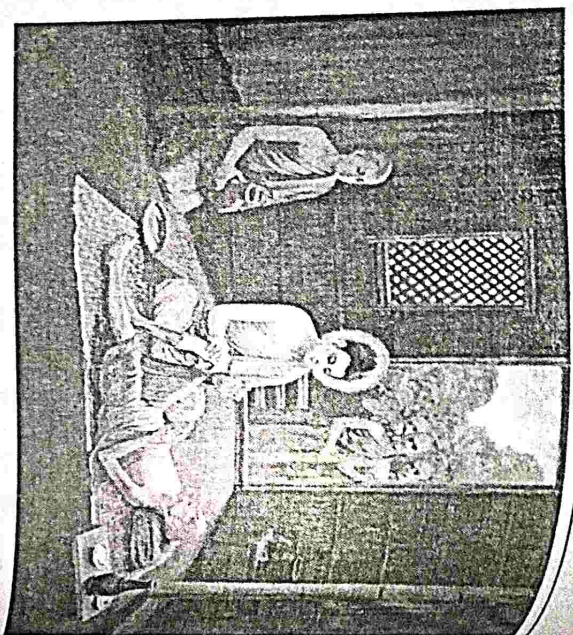
की उसमें जरा-भी शक्ति नहीं थी। उस समय भगवान आयुष्मान आनन्द को साथ लेकर विहार का निरीक्षण करते हुए उस भिक्षु के निवास पर गये। भगवान ने उस भिक्षु को अपने मल-मूत्र में पड़ा देखा। भगवान द्वारा भिक्षु से वीमारी का कारण पूछने पर उस भिक्षु ने भगवान को अपनी वीमारी का कारण वताया। भगवान ने उससे पूछा -

"भिक्षु! क्या तुम्हारे पास कोई परिचारक नहीं है?"

"नहीं है, भगवान।"

"क्या अन्य भिक्षु तुम्हारी परिचर्या (सेवा) नहीं करते?"

"भंते! मैंने भिक्षुओं की कभी कोई सेवा नहीं की थी, इसलिए भिक्षु मेरी सेवा नहीं करते।"

तव भगवान ने आयुष्मान आनन्द को संवोधित किया - "जा आनन्द! पानी ला, इस भिक्षु को नहलायेंगे।"

"अच्छा, भंते!" कह कर आयुष्मान आनन्द पानी लेकर आये।

भगवान ने रोगी के शरीर पर पानी डाला। आयुष्मान आनन्द ने उसे धोया। भगवान ने उसे सिर से पकड़ा। आयुष्मान आनन्द ने पैर से। उन्होंने उसे उठा कर चारपाई पर लिटा दिया।

तव भगवान ने इसी संवंध में भिक्षु-संघ को एकत्रित कर उस भिक्षु की वीमारी, उसके परिचारक तथा उसकी कोई सेवा नहीं करता, इन सवका कारण पूछा।

भिक्षुओं ने भगवान को वताया - "भंते! उस भिक्षु ने अन्य रोगी भिक्षुओं की कभी कोई सेवा नहीं की, इसलिए कोई भिक्षु उसकी सेवा नहीं करता।"

"भिक्षुओ! न यहां तुम्हारी माता है, न पिता, जो कि तुम्हारी सेवा करें। यदि तुम एक दूसरे की सेवा नहीं करोगे तो अन्य कौन करेगा?"

"यदि रोगी उपाध्याय हो या आचार्य हो या शिष्य हो, या साथ विहार करने वाला भिक्षु हो तो यावज्जीवन उसकी सेवा करनी चाहिए, जव तक कि वह रोगमुक्त न हो जाय। यदि सेवा न करे तो दुक्कट (दुष्कृत) का दोष हो।"

"भिक्षुओ! कौन होता है योग्य रोगी-परिचारक?"

"पांच वातों से युक्त रोगी-परिचारक रोगी की परिचर्या करने योग्य होता है -

(१) दवा ठीक समय पर देने में समर्थ होता है;

(२) अनुकूल-प्रतिकूल को जानता है। प्रतिकूल को हटाता है, अनुकूल को देता है;

(३) किसी लाभ के लिए नहीं, बल्कि मैत्रीपूर्ण चित्त से रोगी की सेवा करता है;

(४) मल-मूत्र, थूक और वमन को हटाने में घृणा नहीं करता;

(५) रोगी को समय-समय पर, धार्मिक कथा सुना कर सम्यक प्रकार से धर्म में प्रेरित और हर्षित करने में समर्थ होता है।"

यह सदा ध्यान रहे -

यो, भिक्खवे, मं उपट्ठहेय्य सो गिलानं उपट्ठहेय्य।

- "भिक्षुओ! जो मेरी सेवा करना चाहे, वह रोगी की सेवा करे।"

गालियों की बौछार
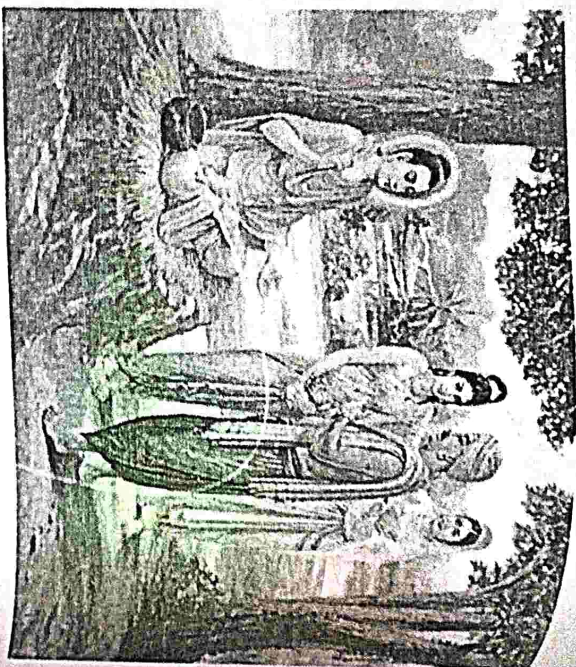
कुरु प्रदेश के कम्मासधम्म निगम में मागण्डिय ब्राह्मण की मागण्डिया नाम की सुंदर, सुवर्ण-वर्णी पुत्री थी। ब्राह्मण का निर्णय था कि वह अपनी रूपसी कन्या का हाथ उसी को देगा जो उसी के सदृश सुवर्ण-वर्ण हो। एक दिन उसने भगवान को एक वृक्ष के नीचे ध्यानावस्था में वैठे देखा। वह भगवान के रूप-सौंदर्य को देखकर वहुत प्रभावित हुआ। उसने अपनी कन्या के लिए यह वर उपयुक्त समझा। पुत्री को भगवान के समक्ष लाकर भगवान से वोला - "महाश्रमण! मेरी इस रूपवती कन्या को स्वीकार करें। यह सर्वथा आपके उपयुक्त है और आप इसके उपयुक्त हैं। इसके साथ सुखी गृहस्थ-जीवन विताइए।"

भगवान ने कहा, "ब्राह्मण! मैं गृहस्थ जीवन से मुक्त हो चुका हूं। मैं वीतकाम हूं। वीतराग हूं। अपनी कन्या का विवाह कहीं और कर।"

जव ब्राह्मण वार-वार जिद्द करता रहा तव भगवान ने कहा - "ब्राह्मण! मैं अर्हत हूं। सम्यक-संवुद्ध हूं। संवोधि प्राप्त करते हुए वोधिवृक्ष के तले जव मार मुझे साधनाच्युत करने में असफल रहा, तव मुझे लुभाने के लिए उसकी तीन सुंदरी पुत्रियां आयीं। उन परम मोहिनी देवकन्याओं के प्रति भी मेरे मन में रंच-मात्र वासना नहीं जागी। यह तो मल-मूत्र से भरा हुआ मानवी

शरीर है। मैं इसे पांव से भी नहीं छूऊंगा। ब्राह्मण! मैं समस्त कामवासनाओं से सर्वथा मुक्त हो चुका हूं।"

मागण्डिया को अपने रूप का वड़ा अभिमान था। उसे लगा कि भगवान ने उसके रूप का घोर अनादर किया है। भगवान का यह कथन कि 'उसका शरीर मल-मूत्र से भरा है अतः उसे पांव से भी नहीं छुएंगे', उसके हृदय पर विच्छू के डंक-सा लगा। वह जीवन-भर के लिए भगवान की दुश्मन वन वैठी। मागण्डिया के चाचा ने उसे कोसम्वी के शासक महाराज उदयन को समर्पित कर दिया। महाराज ने अन्य रानियों के समक्ष उसे भी पटरानी का पद दिया।

कोसम्वी के सेठों के आवाहन पर भगवान कोसम्वी आये। मागण्डिया को यह नहीं सुहाया। जव उसे पता चला कि उसकी सौत सामावती और उसकी ५०० सहेलियां भगवान की अनन्य उपासिकाएं वन गयी हैं, तव तो उसे यह असह्य हो गया।

तव उसने नगर के गुंडों को धन देकर भगवान वुद्ध के पीछे लगाया। उन्हें सिखाया गया कि इकट्ठे होकर भगवान पर इन गालियों की ऐसी वौछार करें -

"तू चोर है, तू मूर्ख है, तू मूढ़ है, तू ऊंट है, तू वैल है, तू गधा है, तू नरकवासी है, तू जानवर है, तुझे सद्गति नहीं है, तुझे दुर्गति है।"

यह सुनकर आयुष्मान आनन्द शास्ता से वोले - "भंते! नगर में इस प्रकार लोग हमें गालियां देते हैं, अच्छा हो भंते, हम किसी अन्य नगर जायं!"

"कहां, आनन्द?"

"भंते! किसी अन्य नगर।"

"आनन्द! अगर वहां पर भी मनुष्य हमें इसी प्रकार गालियां देंगे, तव पुनः कहां जायेंगे?"

"भंते! वहां से भी कहीं अन्यत्र जायेंगे।"

"वहां पर भी मनुष्य अगर हमें गाली देंगे, तव हम कहां जायेंगे?"

"भंते! वहां से किसी अन्य नगर जायेंगे।"

"आनन्द! अप्रिय अवस्था से न घबरा कर, उसका सामना करना चाहिए। जो समस्या जहां उत्पन्न होती है, उसका समाधान वहीं करना चाहिए। उससे घबराकर भागना नहीं चाहिए। आनन्द! कौन गालियां देते हैं?"

"नौकर-चाकर, मजदूर सभी गालियां देते हैं।"

"आनन्द! मैं रणभूमि में उतरे हाथी के समान हूं, संग्रामभूमि में उतरे हाथी के लिए चारों दिशाओं से आने वाले तीरों को सहन करना उसका भार (जिम्मेदारी) है। इसी प्रकार बहुत दुःशीलों से कही गयी बातों को सहन करना मेरा भार है।"

इस संबंध में भगवान ने इन तीन गाथाओं को कहा -

"अहं नागोव सङ्गामे, चापतो पतितं सरं।
अतिवाक्यं तितिक्खिस्सं, दुस्सीलो हि बहुज्जनो॥

["जैसे (किसी) संग्राम में हाथी धनुप से छोड़े गये वाण को (सहन करता है) (वैसे ही) मैं (दूसरों के) कटुवचन को सहन करूंगा, क्योंकि (संसार में) दुःशील (व्यक्ति ही) अधिक हैं।]

****

"दन्तं नयन्ति समितिं, दन्तं राजाभिरूहति।
दन्तो सेट्ठो मनुस्सेसु, योतिवाक्यं तितिक्खति॥

["दान्त (शिक्षित) हाथी को परिषद में ले जाते हैं। दान्त पर (ही) राजा चढ़ता है। मनुष्यों में भी दान्त (व्यक्ति ही) श्रेष्ठ होता है जो कि कटुवचन को सह लेता है।]

****

"वरमस्सतरा दन्ता आजानीया च सिन्धवा।
कुञ्जरा च महानागा अत्तदन्तो ततो वर"न्ति॥

-धम्मपद ३२०-३२२

["खच्चर, अच्छी नस्ल के सैंधव घोड़े और महानाग हाथी दान्त (शिक्षित) होने पर उत्तम होते हैं, (परंतु) अपने आप को दान्त किया हुआ (पुरुष) उनसे श्रेष्ठ होता है।"]

धर्मकथा जनता के लिए सार्थक हुई। इस धर्मदेशना के बाद भगवान ने आनन्द से कहा - "आनन्द! सात दिनों तक इन गालियों का सिलसिला चलेगा। आठवें दिन तक लोग शांत हो जायेंगे। बुद्ध पर लगाये गये ये आक्षेप एक सप्ताह से ज्यादा चलने वाले नहीं हैं।"

यही हुआ। सप्ताह-भर में गालियां बंद हो गयीं। मागण्डिया का प्रयोग असफल रहा। तब उसने अपना गुस्सा भगवान की उपासिका रानी सामावती और उसकी सहेलियों पर निकाला। षड्यंत्र रच कर उन्हें एक बड़े कक्ष में बंद करके आग में जला दिया। उन्होंने मैत्री-भरी समता के साथ अपने प्राण त्याग दिये। जब राजा उदयन को सच्चाई विदित हुई तब उसने मागण्डिया और उसके सहयोगियों को निर्दयतापूर्वक मृत्युदंड की सजा दी।

लोक-हित में तथागत मौन हो जाते

एक बार वच्छगोत्त परिव्राजक भगवान के पास आया। भगवान का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे वच्छगोत्त ने भगवान से कहा - "हे गोतम! क्या अस्तिता (आत्मा का अस्तित्व) है?"

उसके इस प्रश्न पर भगवान एकदम मौन रहे। भगवान को मौन देखकर उसने दूसरा प्रश्न पूछा - "क्या नास्तिता (आत्मा का अस्तित्व न होना) है?"

अब भी भगवान मौन ही रहे। तब वच्छगोत्त परिव्राजक अपने स्थान से उठकर चला गया।

वच्छगोत्त परिव्राजक के चले जाने के बाद आयुष्मान आनन्द ने भगवान से कहा - "भंते! वच्छगोत्त परिव्राजक द्वारा अस्तिता और नास्तिता के बारे में पूछे गये प्रश्नों का उत्तर भगवान ने नहीं दिया, ऐसा क्यों?"

"आनन्द! यदि मैं वच्छगोत्त परिव्राजक से यह कहता 'अस्तिता है', तो मेरी इस स्वीकृति से शाश्वतवाद का सिद्धांत प्रतिष्ठित होता। फिर, जब मैं लोगों से कहता हूं कि 'सभी धर्म अनात्म हैं' तो मेरी आस्तिकता की स्वीकृति इस कथन के अनुकूल न होकर प्रतिकूल पड़ती।"

"और आनन्द! यदि मैं उससे यह कहता कि 'नास्तिता है' तो मेरी इस स्वीकृति से उच्छेदवाद का सिद्धांत प्रतिष्ठित होता।

"आनन्द! इससे उस मूर्ख का मोह तथा अज्ञान और भी बढ़ जाता। वह सोचता - 'पहले मेरे अंदर आत्मा अवश्य थी, जो अब नहीं है।'"

-संयुत्तनिकाय (२.४.४११), आनन्दसुत्त

हाथियों ने की तथागत की सेवा

एक समय कोसम्बी भिक्षु-संघ में किसी साधारण-सी बात को लेकर मतभेद हो गया, जिसने कि बढ़ते-बढ़ते पारस्परिक अप्रिय झगड़े का, वाद-विवाद का रूप धारण कर लिया। कटुता बढ़ती चली गयी और संघ में फूट पड़ गयी। दोनों खुलेआम एक-दूसरे को गलत सिद्ध करने लगे। भगवान के बहुत समझाने पर भी उन लोगों ने नहीं माना। तब भगवान एकांतवास हेतु पास के पारिलेय्यक वनप्रदेश में चले गये। उनके पारिलेय्यक निवास की बात सारे जंबूद्वीप में फैल गयी।

तब अनाथपिण्डिक और माता विसाखा ने आयुष्मान आनन्द के पास समाचार भेजा - "भंते! हम लोगों को भगवान के दर्शन करायें।" वर्षावास संपन्न होने पर भिक्षुओं ने भी आयुष्मान आनन्द से निवेदन किया कि वे
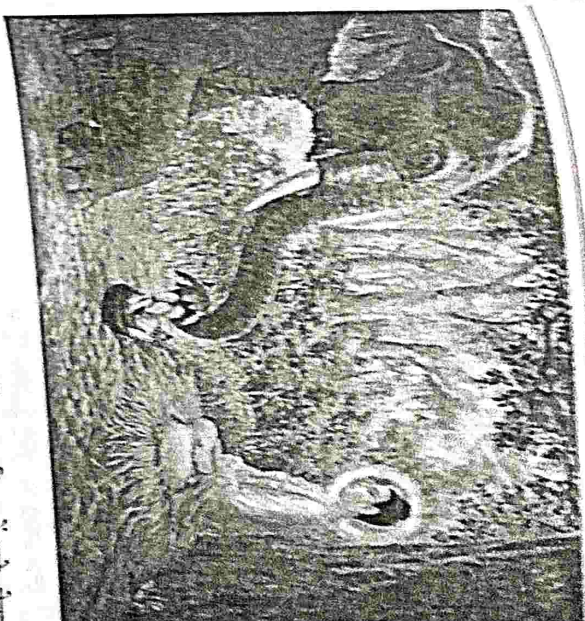
भगवान के पास धर्मकथा सुनना चाहते हैं। उन भिक्षुओं को लेकर आयुष्मान आनन्द भगवान के पास गये। तीन महीने तक भगवान अकेले विहार करते रहे, इसलिए भारी संख्या में भिक्षुओं को लेकर जाना आयुष्मान आनन्द ने उचित नहीं समझा। वे पहले अकेले ही भगवान के पास गये। पारिलेय्यक नाग ने उन्हें देखकर लाठी उठायी और झपट पड़ा। भगवान ने उसे मना करते हुए कहा - "पारिलेय्यक! दूर हटो, मत रोको। यह तथागत का उपस्थाक है।"

शास्ता ने पूछा - "आनन्द! अकेले आये हो?"

"नहीं भंते! पांच सौ भिक्षु साथ हैं।"

तब भगवान ने उन्हें भी बुला लेने के लिए कहा। उन भिक्षुओं ने आकर शास्ता की वंदना की और एक ओर बैठ गये। भगवान ने उनका मैत्रीपूर्ण स्वागत किया।

भिक्षुओं ने कहा - "भंते! भगवान बुद्ध हैं, सुकुमार हैं, क्षत्रिय हैं। भगवान के लिए तीन मास का एकांतवास दुष्कर रहा। हाथ-मुँह धोने के लिए पानी तक देनेवाला कोई साथ में नहीं था।"

तव भगवान ने कहा – "भिक्षुओ! पारिलेय्यक नागों ने सब प्रकार से मेरी सेवा की। भिक्षुओ! यदि अनुकूल मित्र न मिले, तो मूर्खों का साथ न करे।" ऐसा कहते हुए भगवान ने यह गाथा कही –

एकस्स चरितं सेय्यो, नत्थि बाले सहायता।
एको चरे न च पापानि कयिरा, अप्पोस्सुक्को मातङ्गरञ्ञेव नागो॥

-धम्मपद ३३०, नागवग्गो

[अकेला विचरना उत्तम है (किंतु) मूढ़ की मित्रता अच्छी नहीं। हस्तिवन में हाथी के समान अनासक्त होकर अकेला विचरण करे और पाप न करे।]

महापजापति गोतमी को प्रव्रज्या

एक समय भगवान कपिलवत्थु के निग्रोधाराम में विहार करते थे। तव महापजापति गोतमी भगवान के पास गयी। पास जाकर भगवान का अभिवादन कर एक ओर खड़ी हो गयी। एक ओर खड़ी महापजापति गोतमी ने भगवान से कहा – "भंते! अच्छा हो कि तथागत द्वारा उपदिष्ट धर्मविनय में स्त्रियों को भी प्रव्रज्या मिले।"

"गोतमी! हो सकता है कि तुम स्त्रियों को तथागत द्वारा उपदिष्ट धर्मविनय में घर से वेघर हो प्रव्रज्या मिलना रुचिकर न लगे।"

तव महापजापति ने दूसरी वार तथा तीसरी वार भी भगवान से स्त्रियों के लिए प्रव्रज्या के लिए निवेदन किया। इस पर भगवान ने तीनों वार स्त्रियों का धर्मविनय में प्रव्रज्या का निषेध ठहराया।

तव महापजापति गोतमी भगवान से स्त्रियों के लिए धर्मविनय में प्रव्रज्या की अनुमति न पाकर रोती हुई भगवान का अभिवादन कर वापस चली गयी।

भगवान कपिलवत्थु से चारिका करते हुए वेसाली पहुँचे। वेसाली में भगवान महावन में कूटागारशाला में विहार करते थे।

तव महापजापति गोतमी बहुत-सी शाक्य-स्त्रियों के साथ सिर को मुँड़वाकर, काषाय वस्त्र धारण कर, वेसाली की महावन कूटागारशाला
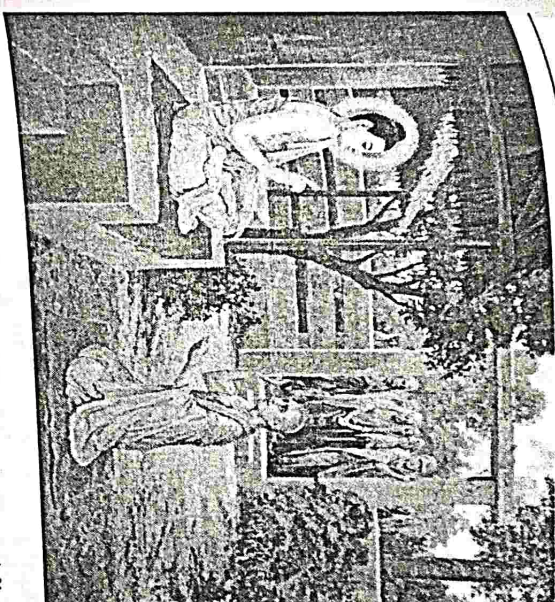
पहुँची। महापजापति गोतमी सूजे हुए पाँवों से, धूल से भरे हुए पाँवों से दुःखी मन, रोती हुई कूटागारशाला के द्वार पर खड़ी हो गयी।

तव आयुष्मान आनन्द ने महापजापति गोतमी को इस दशा में देखकर उसका कारण पूछा। महापजापति गोतमी ने भगवान से धर्मविनय में प्रव्रज्या न प्राप्त करने की वात वतलायी।

आयुष्मान आनन्द ने भगवान के पास जाकर महापजापति गोतमी के आने का समाचार कह सुनाया तथा उन स्त्रियों द्वारा धर्मविनय में प्रव्रज्या की इच्छा से अवगत कराया।

आयुष्मान आनन्द ने भगवान से कहा - "अच्छा हो, भंते! यदि स्त्रियों को भी तथागत द्वारा उपदिष्ट धर्मविनय में घर से वेघर हो प्रव्रज्या मिले।"

"आनन्द! हो सकता है कि तुझे स्त्रियों का तथागत द्वारा उपदिष्ट धर्मविनय में प्रव्रज्या देना अच्छा न लगे।"

इस प्रकार आयुष्मान आनन्द ने दूसरी वार तथा तीसरी वार भगवान से स्त्रियों के लिए प्रव्रज्या के लिए निवेदन किया। भगवान ने भी तीनों वार स्त्रियों के लिए धर्मविनय में प्रव्रज्या को उचित नहीं ठहराया।

तब आयुष्मान आनन्द को लगा कि भगवान स्त्रियों के लिए धर्मविनय को निषिद्ध ठहराते हैं। क्यों न मैं किसी अन्य तरीके से भगवान को स्त्रियों को उनके द्वारा उपदिष्ट धर्मविनय में घर से वेघर हो प्रव्रज्या के लिए याचना करूं।

तब आयुष्मान आनन्द ने भगवान से कहा - "भंते! क्या तथागत द्वारा उपदिष्ट धर्मविनय में घर से वेघर प्रव्रजित हो स्त्रियां सोतापत्तिफल, सकदागामीफल, अनागामीफल, अर्हतफल का साक्षात्कार कर सकती हैं?"

"आनन्द! स्त्रियां भी तथागत द्वारा उपदिष्ट धर्मविनय में घर से वेघर प्रव्रजित हो सोतापत्तिफल, सकदागामीफल, अनागामीफल, अर्हतफल का साक्षात्कार कर सकती हैं।"

"भंते! यदि स्त्रियां भी तथागत द्वारा उपदिष्ट धर्मविनय में घर से वेघर प्रव्रजित हो सोतापत्तिफल, सकदागामीफल, अनागामीफल, अर्हतफल का साक्षात्कार कर सकती हैं, महापजापति गोतमी तो भगवान का उपकार करनेवाली रही हैं, वे भगवान की मौसी रही हैं, विमाता रही हैं, क्षीरदायिका रही हैं, पोषिका रही हैं। भंते! जननी के शरीर त्यागने के वाद उन्होंने भगवान को दूध पिलाया; अच्छा हो भंते! यदि स्त्रियों को भी तथागत द्वारा उपदिष्ट धर्मविनय में घर से वेघर हो प्रव्रज्या मिले।"

"आनन्द! यदि महापजापति गोतमी इन आठ गुरु (गंभीर) धर्मों को स्वीकार करे तो यह उसकी उपसंपदा होगी।

१. चाहे भिक्षुणी ने सौ वर्ष से उपसंपदा प्राप्त की हो और चाहे भिक्षु उसी दिन उपसंपदा को प्राप्त हुआ हो, तो भी भिक्षुणी को ही उसका सत्कार करना होगा, उसे मानना होगा, पूजना होगा, इस धर्मविनय (नियम) का जीवन-भर अतिक्रमण नहीं करना होगा।

२. ऐसे आवास में नहीं रहना होगा, जहां रहते हुए किसी भिक्षु के पास जाकर धर्म सुन सकने की गुंजायश न हो। इस धर्मनियम का जीवन-भर अतिक्रमण न कर इसका सत्कार करना होगा, उसे मानना होगा, पूजना होगा।

३. प्रत्येक आधे-महीने पर उसे भिक्षु-संघ से दो धर्मों की आशा रखनी होगी - उपोसथ-प्रश्नों की तथा उपदेश सुनने की। इस धर्मनियम का

जीवन-भर अतिक्रमण न कर इसका सत्कार करना होगा, उसे मानना होगा, पूजना होगा।

४. वर्षावास कर चुकने पर भिक्षुणी को भिक्षु-संघ तथा भिक्षुणीसंघ - दोनों संघों में और देखे, सुने तथा संदिग्ध - तीनों प्रकार के दोषों को लेकर प्रवारणा करनी होगी। इस धर्मनियम का जीवन-भर अतिक्रमण न कर इसका सत्कार करना होगा, उसे मानना होगा, पूजना होगा।

५. संघादिशेष नामक गंभीर अपराध हो जाने पर भिक्षुणी को दोनों संघों में पक्ष-भर का प्रायश्चित्त करना होगा। इस धर्मनियम का जीवन-भर अतिक्रमण न कर इसका सत्कार करना होगा, उसे मानना होगा, पूजना होगा।

६. दो वर्षावास तक विकाल भोजन से विरत रहने के संवंध में छठे शील सहित पांच शीलों की सतत अभ्यासिनी भिक्षुणी को दोनों संघों में उपसंपदा ग्रहण करनी होगी। इस धर्मनियम का जीवन-भर अतिक्रमण न कर इसका सत्कार करना होगा, उसे मानना होगा, पूजना होगा।

७. भिक्षुणी को किसी भी स्थिति में भिक्षु को गाली आदि नहीं देनी होगी। इस धर्मनियम को जीवन-भर अतिक्रमण न कर इसका सत्कार करना होगा, उसे मानना होगा, पूजना होगा।

८. आज के वाद से भिक्षुणियों का भिक्षुओं को कुछ कहने का द्वार वंद हुआ; किंतु भिक्षुओं का भिक्षुणियों को कुछ कहने का द्वार खुला है। इस धर्मनियम का जीवन-भर अतिक्रमण न कर इसका सत्कार करना होगा, उसे मानना होगा, पूजना होगा।

"आनन्द! यदि महापजापति गोतमी इन आठ गुरु धर्मों को स्वीकार करे तो यह उसकी उपसंपदा हुई।"

तब आयुष्मान आनन्द ने भगवान से इन आठ धर्मों को जान महापजापति गोतमी को बताया - "गोतमी! तू इन आठ धर्मों को स्वीकार करे तो ही यह तेरी उपसंपदा होगी।"

"भंते! आनन्द! जैसे कोई शौकीन स्त्री, पुरुष, अल्पवयस्क या तरुण सिर से स्नान कर उत्पल-माला, जूही-माला अथवा मोतियों की माला दोनों

हाथों से स्वीकार कर सिर पर धारण करे; उसी प्रकार भंते आनन्द! मैं इन आठ गंभीर धर्मों को जीवनपर्यंत पालन करने के लिए स्वीकार करती हूं।"

आयुष्मान आनन्द ने भगवान को यह जानकारी दी कि महापजापति गोतमी ने आप द्वारा बताये गये आठ धर्मों को जीवन-भर पालन करने के लिए सहर्ष स्वीकार कर लिया है।

भगवान ने आयुष्मान आनन्द से कहा - "आनन्द! यदि स्त्रियों को तथागत द्वारा उपदिष्ट धर्मविनय में घर से बेघर हो प्रव्रजित होने की अनुमति न मिली होती, तो यह ब्रह्मचर्य चिरस्थायी होता; एक हजार वर्ष तक स्थिर रहता लेकिन अब इस धर्मविनय में स्त्रियों को अनुमति मिल जाने से सद्धर्म केवल पांच सौ वर्ष तक ही स्थिर रहेगा।"

भगवान ने तरह-तरह की उपमाओं से आयुष्मान आनन्द को इस सद्धर्म के चिरस्थायी न होने के बारे में बताया।

"आनन्द! जैसे किसी लहलहाते धान के खेत में सफेदा नामक रोग लग जाता है, तो वह धान का खेत चिरस्थायी नहीं होता, उसी प्रकार आनन्द! जिस धर्मविनय में स्त्रियों को घर से बेघर हो प्रव्रजित होने की अनुमति मिल जाती है, वहां ब्रह्मचर्य चिरस्थायी नहीं होता।

"आनन्द! जैसे किसी लहलहाते ईख के खेत को लाल-रोग लग जाता है, तो वह ईख का खेत चिरस्थायी नहीं होता, उसी प्रकार आनन्द! जिस धर्मविनय में स्त्रियों को घर से बेघर हो प्रव्रजित होने की अनुमति मिल जाती है, वहां ब्रह्मचर्य चिरस्थायी नहीं होता।

"आनन्द! जैसे कोई पुरुष पानी की रोकथाम के लिए पहले से ही किसी बड़े तालाब के गिर्द बांध बाँध दे, इसी प्रकार आनन्द! मेरे द्वारा पहले से ही भिक्षुणियों द्वारा जीवनपर्यंत पालन किये जाने वाले आठ गंभीर धर्मों को प्रज्ञप्त कर दिया गया है।"

-अङ्गुत्तरनिकाय (३.८.५१), गोतमीसुत्त

भिक्षुणी थुल्लतिस्सा का संघ से बहिष्कार

एक समय आयुष्मान महाकस्सप सावत्थी में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे।

तब आयुष्मान आनन्द पूर्वाह्न पात्र-चीवर ले आयुष्मान महाकस्सप के पास गये। वहां जाकर उनसे कहा - "भंते! जहां भिक्षुणियों का स्थान है, वहां चलें।"

महाकस्सप ने कहा - "आयुष्मान आनन्द! आप जायें, आपको बहुत काम-धाम रहता है।"

इसी प्रकार दूसरी तथा तीसरी बार आग्रह करने पर आयुष्मान महाकस्सप पात्र-चीवर ले आयुष्मान आनन्द को अनुगामी बना भिक्षुणियों के स्थान पर गये। जाकर बिछे आसन पर बैठ गये।

तब, कुछ भिक्षुणियां आयुष्मान महाकस्सप के समक्ष गयीं, जाकर उनका अभिवादन कर एक ओर बैठ गयीं। एक ओर बैठी हुई उन भिक्षुणियों को आयुष्मान महाकस्सप ने धर्मोपदेश दिया। आयुष्मान आनन्द की एक प्रशंसिका भिक्षुणी थुल्लतिस्सा को यह अच्छा नहीं लगा। उसने एक अन्य भिक्षुणी से कहा - "क्या आर्य महाकस्सप का आर्य वेदेहमुनि आनन्द के सामने धर्मोपदेश करना उचित था? जैसे, कोई सूई बेचने वाला, किसी सूई बनाने वाले के पास सूई बेचने जाय; वैसे ही आर्य महाकस्सप ने आर्य आनन्द के सामने धर्मोपदेश करने का साहस किया है।"

आयुष्मान महाकस्सप ने थुल्लतिस्सा भिक्षुणी को यह कहते सुन आयुष्मान आनन्द से पूछा - "क्या मैं सूई बेचने वाला हूं और आप सूई बनाने वाले?"

आयुष्मान आनन्द ने कहा - "भंते! मूर्खा है, कृपया इसे क्षमा करें।"

इस पर आयुष्मान महाकस्सप ने आयुष्मान आनन्द से कहा - "देखें, संघ आपके विषय में और चर्चा न करे।"

थुल्लतिस्सा भिक्षुणी धर्म से च्युत हो गयी।

-संयुत्तनिकाय (१.२.१५३), उपस्सयसुत्त

भिक्षुणी थुल्लनन्दा का संघ से बहिष्कार

एक समय आयुष्मान महाकस्सप राजगह के वेळुवन में कलन्दकनिवाप में विहार करते थे। उस समय आयुष्मान आनन्द दक्खिणगिरि में भिक्षुओं के एक बड़े संघ के साथ चारिका कर रहे थे। उस समय आयुष्मान आनन्द

के तीस अनुचर भिक्षु, जो विशेषकर कुमार थे, शिक्षा को छोड़ कर गृहस्थ हो गये। इस पर आयुष्मान महाकस्सप ने आयुष्मान आनन्द को सचेत किया - "आयुष्मान! क्यों आप इन नये भिक्षुओं के साथ चारिका करते हैं जो असंयमी, पेटू और सुतक्कड़ हैं? लगता है आप शस्य (धान के पौधों) और कुलों को नष्ट करते हुए विचरते हैं। आप की नयी मंडली घट रही है। ये नये कुमार मात्रा को नहीं जानते हैं।"

यह सुनकर आनन्द ने कहा - "भंते! मेरे बाल भी पक चुके, किंतु आज भी आयुष्मान महाकस्सप द्वारा 'कुमार' कह कर ही संवोधित किया जा रहा हूं।"

इस पर महाकस्सप ने फिर दोहराया - "तभी तो मैं कहता हूं आप क्यों इन नये भिक्षुओं के साथ चारिका करते हैं, जो असंयमी, पेटू और सुतक्कड़ हैं? लगता है आप .....।"

भिक्षुणी थुल्लनन्दा ने सुन लिया कि आयुष्मान महाकस्सप ने आर्य आनन्द को 'कुमार' कहकर धता वताया है। तव उससे नहीं रहा गया और वह भभक उठी - "आयुष्मान महाकस्सप जो पहले अन्यतैर्थिक रह चुके हैं, आर्य आनन्द को 'कुमार' कहकर धता वताने का साहस कैसे कर सकते हैं?"

जव आयुष्मान महाकस्सप ने भिक्षुणी को यह कहते हुए सुना तव वे आनन्द से वोले - "भिक्षुणी का ऐसा कहना उचित नहीं है। जव से मैं सिर-दाढ़ी मुँड़वाकर काषाय वस्त्र पहन घर से वेघर हो प्रव्रजित हुआ हूं तव से मैंने सम्यक-संवुद्ध को छोड़कर किसी दूसरे को अपना शास्ता नहीं माना है। राजगह और नालन्दा के वीच एक चैत्य पर भगवान को वैठे देखकर मेरे मन में हुआ कि यदि मैं किसी शास्ता को देखूं तो सम्यक-संवुद्ध को ही देखूं। मैंने वहीं पर भगवान के चरणों पर गिरकर कहा - 'आप मेरे शास्ता हैं, मैं आपका श्रावक हूं।' तव भगवान ने मुझे धर्मोपदेश दिया और अंत में कहा कि तुम्हें ऐसा सीखना चाहिए कि 'कायगतास्मृति' मुझसे कभी छूटने न पाय। यह उपदेश देकर भगवान आसन से उठकर चले गये। इससे आठवें दिन मुझे दिव्य ज्ञान प्राप्त हो गया। मैं तव से आस्रवों के क्षीण हो जाने से आस्रवरहित चेतोविमुक्ति और पञ्ञाविमुक्ति को इसी जन्म में स्वयं जानकर, साक्षात्कार कर और प्राप्त कर विहार कर रहा हूं।"

तव थुल्लनन्दा भिक्षुणी आयुष्मान महाकस्सप पर मिथ्या दोष लगाने के कारण धर्म से च्युत हो गयी।

-संयुत्तनिकाय (१.२.१५४), चीवरसुत्त

लिच्छवियों का भय निवारण

भगवान वुद्ध के जीवनकाल में वेसाली राज्य हर प्रकार से सुखी, समृद्ध और संपन्न था। एक वार वहां के निवासी तीन प्रकार के भीषण दु:खों से त्रस्त हो गये। वे तीन दु:ख थे - भयंकर रोग, अमानवीय उपद्रव एवं दुर्भिक्ष। वहां के राजा-प्रजा ने मिलकर सोचा कि यदि भगवान वुद्ध उनके राज्य में चरण रखें, तो उनके पुण्य-प्रताप से इन दु:खों से छुटकारा पाया जा सकता है।

ऐसा सोचकर उन लोगों ने भगवान को वेसाली लाने का निश्चय किया। उन दिनों भगवान राजगह के वेळुवन में वर्षावास करते थे। उन्हें वेसाली लाने के उद्देश्य से वेसालीनरेश ने दूत भेजे। दूतों की प्रार्थना और याचना पर वेसालीवासियों के कल्याण के लिए भगवान वेसाली आने के लिए तैयार हो गये। मगधराज विम्विसार ने भगवान की वेसाली यात्रा को सुखमय वनाने की तन-मन-धन से समुचित व्यवस्था की।

वेसाली पहुँचने पर नगरद्वार पर खड़े होकर शास्ता ने आयुष्मान आनन्द को संवोधित किया - "आनन्द! रतनसुत्त को सीखकर लिच्छवि कुमारों के साथ विचरण करते हुए वेसाली के तीनों प्राकारों के वीच परित्तपाठ करो।"

स्थविर आनन्द ने शास्ता द्वारा वताया गया रतनसुत्त सीखा। फिर पात्र में जल लेकर नगरद्वार पर खड़े होकर भगवान के अनंत गुणों, उनके दृढ़ संकल्प से प्रारंभ कर दस पारमी, दस उपपारमी, दस परमार्थ पारमी, पांच महात्याग, तीन चर्याएं, अंतिम जन्म के लिए गर्भ में आना, जन्म, महाभिनिष्क्रमण, तपश्चर्या, मारविजय, सर्वज्ञताप्राप्ति, धर्मचक्रप्रवर्तन, नौ लोकोत्तर धर्म का ध्यान करते हुए नगर में प्रवेश किया। रात के तीन प्रहरों में तीन प्राकारों के वीच परित्तपाठ करते हुए विचरण किया।

यं किञ्चि वित्तं इध वा हुरं वा,
सग्गेसु वा यं रतनं पणीतं।
न नो समं अत्थि तथागतेन,
इदम्पि बुद्धे रतनं पणीतं।
एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु॥

[इस लोक में अथवा अन्य लोकों में जो धन-संपत्ति है और स्वर्गों में भी जो अमूल्य रत्न हैं, उनमें से कोई भी तथागत (बुद्ध) के समान (श्रेष्ठ) नहीं है। सचमुच यह भी बुद्ध में एक उत्तम गुणरत्न है, इस सत्य वचन के प्रताप से स्वस्ति हो।]

****

यानीध भूतानि समागतानि, भुम्मानि वा यानि'व अन्तलिक्खे।
तथागतं देवमनुस्सपूजितं, बुद्धं नमस्साम सुवत्थि होतु॥

[इस समय धरती पर या आकाश में रहने वाले जो भी प्राणी यहां उपस्थित हैं, तथागत उन सब देवों और मनुष्यों द्वारा पूजित हैं। हम बुद्ध को नमस्कार करते हैं, कल्याण हो।]

****

यानीध भूतानि समागतानि, भुम्मानि वा यानि'व अन्तलिक्खे।
तथागतं देवमनुस्सपूजितं, धम्मं नमस्साम सुवत्थि होतु॥

[इस समय धरती पर या आकाश में रहने वाले जो भी प्राणी यहां उपस्थित हैं, तथागत उन सब देवों और मनुष्यों द्वारा पूजित हैं। हम धर्म को नमस्कार करते हैं, कल्याण हो।]

****

यानीध भूतानि समागतानि, भुम्मानि वा यानि'व अन्तलिक्खे।
तथागतं देवमनुस्सपूजितं, सङ्घं नमस्साम सुवत्थि होतु॥

-खुद्दकपाठ (३.१६-१८), रतनसुत्त

[इस समय धरती पर या आकाश में रहने वाले जो भी प्राणी यहां उपस्थित हैं, तथागत उन सब देवों और मनुष्यों द्वारा पूजित हैं। हम संघ को नमस्कार करते हैं, कल्याण हो।]

आयुष्मान आनन्द द्वारा जब 'यं किञ्चि' कहा गया उसी समय ऊपर छींटा गया जल अमनुष्यों के ऊपर गिरा। 'यानीध भूतानि' से प्रारंभ होने वाली गाथा के कहने से लेकर सिर के लिए चांदी की बनी माला की तरह जल-बिंदुएं आकाश जाकर रोगी मनुष्यों के ऊपर गिरीं। वे रोग-मुक्त हुए। 'यं किञ्चि' पद के कथन से लेकर जल-स्पर्श से स्पृष्ट नहीं भागे हुए कूड़े-कचरे के ढेर पर दीवाल आदि पर रहने वाले सभी भूत-प्रेत उन-उन दरवाजों से भाग गये। द्वारों पर भीड़ बढ़ गयी, भागने का अवकाश न पाकर दीवाल तोड़कर भाग निकले।

वेसाली की जनता ने नगर के संस्थागार को लीप-पोत कर स्वच्छ एवं सुगंधित किया। अपट स्वर्ण तार वितान बनाकर बुद्धासन की व्यवस्था की। वहां आदर-सम्मान के साथ शास्ता को ले आये। अपने लिए बिछे आसन पर भगवान बैठ गये। स्थविर आनन्द ने पूरे नगर में विचरण कर नीरोग जनता के साथ आकर शास्ता की वंदना की। फिर एक ओर बैठ गये। पूरी परिषद के बीच भगवान ने पूरे रतनसुत्त का वाचन किया। देशना की समाप्ति पर अनेक लोगों को धर्म-ज्ञान हुआ। उसी तरह एक सप्ताह तक रतनसुत्त का उपदेश होता रहा। इस प्रकार पूरे प्रदेश को भय और कष्ट मुक्त कर भगवान आयुष्मान आनन्द के साथ राजगह लौट आये। वेसाली के लोग पूर्ववत सुखपूर्वक रहने लगे।

बोधिराजकुमार

एक समय भगवान भग्ग (जनपद) में सुसुमारगिरि के भेसकळावन मृगदाय में विहार करते थे। उन दिनों बोधिराजकुमार ने कोकनद प्रासाद का निर्माण कराया था। गृह-प्रवेश के अवसर पर राजकुमार भगवान को आमंत्रित करना चाहता था। इस उद्देश्य से उसने सञ्जिकापुत्त ब्राह्मण को संबोधित किया – "सौम्य सञ्जिकापुत्त! तुम भगवान के पास जाओ और मेरी ओर से उन भगवान के चरणों में सिर से वंदना करके कुशल-समाचार

पूछो और यह भी कहो – 'भंते! भगवान भिक्षु-संघ सहित राजकुमार के यहां कल का भोजन स्वीकार करें।'"

राजकुमार के निर्देशानुसार सञ्जिकापुत्त भगवान के पास गया और उनकी स्वीकृति पाकर उसने वोधिराजकुमार को सूचित किया।

दूसरे दिन, भोजन-आसन आदि की उत्तम व्यवस्था कर वोधिराजकुमार ने भगवान को लिवाने के लिए सञ्जिकापुत्त को भेजा। सुआच्छादित हो, पात्र और चीवर लेकर भगवान राजकुमार के महल पधारे। दूर से भगवान को देखकर राजकुमार ने आगे वढ़कर उनका स्वागत-सत्कार किया, फिर कोकनद प्रासाद की ओर ले गये। प्रासाद की सीढ़ियों पर भगवान के स्वागत में उसने धुस्से विछवा रखे थे। पर भगवान धुस्सों पर पांव रखना नहीं चाहते थे। भगवान को रुका देखकर राजकुमार ने कहा – "भंते! भगवान धुस्सों पर चलें, सुगत धुस्सों पर चलें ताकि यह चिरकाल तक मेरे हित-सुख के लिए हो।"

भगवान चुपचाप खड़े थे। दूसरी वार, फिर तीसरी बार राजकुमार ने वही निवेदन किया। तव भगवान ने आयुष्मान आनन्द की ओर देखा। स्थविर आनन्द भगवान का आशय भांप गये, वोले – "राजकुमार वोधि! धुस्सों को समेट लो। भावी जनता के हित-सुख का विचार कर तथागत पांवड़े पर नहीं चलते। भगवान कोई गलत परंपरा स्थापित करना नहीं

चाहते। कहीं भविष्य के धर्माचार्य अपने शिष्यों पर ठाट-वाट, शान-शौकत के प्रदर्शन का वोझ न डालने लगें।"

राजकुमार ने धुस्सों को समेटवा लिया। कोकनद प्रासाद के ऊपर चढ़कर भगवान अपने लिए विछे आसन पर वैठ गये। राजकुमार ने भगवान सहित भिक्षु-संघ को अपने हाथों परोस कर उत्तम भोजन कराया। भोजन से हाथ खींच लेने पर स्वयं एक नीचे आसन पर वैठकर भगवान से कहा – "भंते! मुझे ऐसा होता है कि सुख से सुख प्राप्त नहीं होता है, दुःख से सुख प्राप्त होता है।"

इस पर भगवान ने कहा - "वुद्ध वनने से पहले मुझे भी ऐसा ही होता था। तव मैं तरुण अवस्था में ही घरवार छोड़कर उत्तम शांतिपद की तलाश में निकल पड़ा। आचार्य आलार कालाम ने मुझे आकिंचन्यायतन तक विद्या सिखायी और जव मैं सीख गया तव उन्होंने मुझे अपने वरावर समझा और उद्दक रामपुत्त ने इससे आगे नैवसंज्ञानासंज्ञायतन तक विद्या की वात वतायी और जव मैंने अपने से उस विद्या को सीख लिया तव मुझे उन्होंने ज्ञान में अपने पिता राम के वरावर समझा और अपने आश्रम का आचार्य वनाया और मेरी पूजा की। परंतु चूंकि ये धर्म न तो निर्वेद, न विराग, न निरोध, न उपशम, न अभिज्ञा, न संवोध और न निर्वाण के लिए थे, अतः मैं इन्हें अपर्याप्त जानकर फिर उत्तम शांतिपद की खोज में निकल गया।

"वहां से चारिका करते हुए मैं मगध में उरुवेला सेनानिगम में पहुँचा जो अत्यंत रमणीय और ध्यान के लिए अत्यंत उपयुक्त स्थान था। वहां मैंने दांतों पर दांत रख कर, जिह्वा द्वारा तालु को दवा कर, चित्त का चित्त से निग्रह किया। इससे मेरी कांख से पसीना छूटता था। फिर मैंने श्वासरहित ध्यान करना शुरू किया। इससे शरीर पर अनेक प्रकार के उपद्रव प्रकट होने लगे और मैं मृत-समान हो गया। परंतु हर अवस्था में मेरा वीर्य न दवने वाला था, मेरी स्मृति अ-मुषित थी, मेरी काया तत्पर थी, भले साधना से पीड़ित होने के कारण अशांत हो जाती थी।

"तव एक वार मैंने आहार को विल्कुल छोड़ देने की सोची, परंतु वाद में थोड़ा-थोड़ा आहार लेना आरंभ कर दिया। उस समय मेरा शरीर दुर्वलता की चरम सीमा पर पहुँच गया था। मेरी पीठ के कांटे और पेट की खाल आपस

में सट गये थे। उस समय मुझे लगता था कि जो कोई श्रमण अथवा ब्राह्मण तप करके दु:खपूर्ण, तीव्र, कठोर, कटु, वेदना अनुभव करते रहे थे, कर रहे हैं अथवा करेंगे, वह इससे अधिक नहीं हो सकती। परंतु इस दुष्कर कारिका से भी मुझे उत्तर-मनुष्यधर्म अलमार्यज्ञान-दर्शनविशेष की उपलब्धि नहीं हुई। तव मैंने सोचा कि क्या वोधि प्राप्त करने का कोई अन्य उपाय भी हो सकता है?

"तव मैंने स्थूल आहार ग्रहण कर, सवल हो, प्रथम ध्यान में विहरने का उपक्रम किया। फिर द्वितीय ध्यान, तृतीय ध्यान, चतुर्थ ध्यान को प्राप्त कर विहरने लगा।

"फिर एकाग्र हुए, नितांत शुद्ध, उपक्लेश-रहित, मृदु, अडोल चित्त को विभिन्न उद्देश्यों के लिए नवाने पर मुझे पूर्वनिवासों की स्मृति उभर आयी, कर्मानुसार प्राणियों की च्युति एवं उत्पत्ति का ज्ञान होने लगा और आस्रवों के क्षय का ज्ञान होने से स्पष्ट हो गया कि जन्म समाप्त हो गया, व्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे करने को कुछ रहा नहीं। इस प्रकार प्रमादरहित, उद्योगशील तथा आत्मसंयमी होकर विहार करते हुए मेरी अविद्या नष्ट हुई, विद्या उत्पन्न हुई, अंधकार नष्ट हुआ, प्रकाश उत्पन्न हुआ।

"तव सहम्पति व्रह्मा के सुझाव पर प्राप्त विद्या को मैंने लोगों में वांटने का निर्णय लिया। अपने आचार्य - आलार कालाम तथा सव्रह्मचारी उद्दक रामपुत्त - का देहांत हो चुकने के कारण मैं उन्हें यह विद्या नहीं सिखला पाया। तव मैंने अपने पुराने साथियों - पंचवर्गीय भिक्षुओं - को धर्मोपदेश दिया, जिसके फलस्वरूप वे भी उत्तम व्रह्मचर्य-फल को इसी जन्म में स्वयं जान कर, साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहरने लगे।"

वोधिराजकुमार के एक प्रश्न के उत्तर में भगवान ने उसे पांच प्रधानीय अंगों की जानकारी भी दी। ये अंग हैं - तथागत की वोधि के प्रति श्रद्धा का भाव, निरोगता एवं फुर्तीलापन, अशठता, दृढ़ पराक्रम तथा वींधने वाली आर्य प्रज्ञा।

फिर उन्होंने कहा कि इन अंगों से युक्त भिक्षु तथागत को विनायक पाकर अनुत्तर व्रह्मचर्य-फल को इसी जन्म में सात वर्षों में स्वयं जानकर,

साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहार कर सकता है। फिर उन्होंने सात वर्ष की अवधि को शनैः शनैः कम करते हुए यहां तक कह दिया कि इन अंगों से युक्त भिक्षु तथागततुल्य शास्ता पाकर, सायंकाल उनसे उपदेश लेकर, उस पर आचरण करता हुआ प्रातःकाल उस ज्ञानदर्शनविशेष को पा लेता है, और प्रातःकाल उनसे उपदेश लेकर, उस पर आचरण करता हुआ सायंकाल (विशेष) निर्वाणपद प्राप्त कर सकता है।

यह सुन कर प्रसन्न-चित्त हो, वोधिराजकुमार ने हर्ष के वचन कहे -

अहो वुद्धो, अहो धम्मो, अहो धम्मस्स स्वाक्खातता!

- अहो वुद्ध, अहो धर्म, अहो धर्म की सुआख्यातता, अर्थात धर्म का सुआख्यान!

तदुपरांत वोधिराजकुमार ने वताया कि जव वह गर्भ में था, तव उसकी मां भगवान को नमस्कार करने आयी और वोली कि भंते, मेरी कोख में जो भी कुमारी या कुमार है, वह भगवान की, धर्म की और संघ की शरण जाता है। इसे भी अपना शरणागत उपासक स्वीकार करें। फिर जन्म के पश्चात एक वार उसकी धाय उसे गोद में उठाये भगवान के पास आयी और भगवान को नमस्कार कर वोली - 'भंते! यह वोधिराजकुमार भगवान की, धर्म की और संघ की शरण ग्रहण करता है। इसे अपना शरणागत उपासक स्वीकार करें।' और अव यह तीसरी वार मैं स्वयं प्रत्यक्ष भगवान की, धर्म की, और संघ की शरण आया हूं। आज से भगवान मुझे जीवन-पर्यंत शरणागत उपासक स्वीकार करें।

-मज्झिमनिकाय (२.४.३२४-३४६), वोधिराजकुमारसुत्त

भगवान का महापरिनिर्वाण
तथा
उपस्थाक आनन्द

पिछले पच्चीस वर्षों से आयुष्मान आनन्द भगवान की छाया की तरह उनकी सेवा में लगे रहे, पर शास्ता के महापरिनिर्वाण के पूर्व के तीन महीनों में तो सचमुच छाया ही हो गये थे। क्षण भर के लिए भी शास्ता को न छोड़ना, मानो भगवान की छाया ही नहीं दूसरी काया हो।

किसी ज्ञानी पिता के अंतिम क्षणों में पुत्र से उसकी जैसी वातें होती हैं, ठीक वैसे ही भगवान और आयुष्मान आनन्द के वीच रह-रह कर वार्त्तालाप हो रहा था। कभी भगवान अपनी ओर से स्वयं कुछ वताते और कभी आनन्द के पूछने पर वोलते।

वज्जियों को सात अपरिहानीय धर्मों का उपदेश

एक समय भगवान राजगह के गिज्झकूट पर्वत पर विहार करते थे। उस समय मगधराज अजातसत्तु वज्जियों पर आक्रमण करके उनके वैभव को नष्ट कर उन्हें मगध के अधीन करना चाहता था। मगधनरेश अजातसत्तु अपने महामंत्री वस्सकार को भगवान के पास भेजता है और उन्हें सूचित करता है कि शीघ्र ही मगध अपने शत्रु लिच्छवियों पर आक्रमण कर उनका विध्वंस करने वाला है। वह जानना चाहता था कि इस पर भगवान की क्या प्रतिक्रिया होती है। जव वस्सकार ने यह सूचना दी, तव उससे कुछ न कह कर भगवान ने अपने पीछे खड़े आनन्द को संवोधित किया और वर्षों पहले उन्होंने सारन्दद चैत्य में वज्जियों को जो सात उपदेश दिये थे उनमें से एक-एक को दोहरा कर पूछा, "आनन्द! क्या वज्जी इसका पूर्णतया पालन करते हैं?"
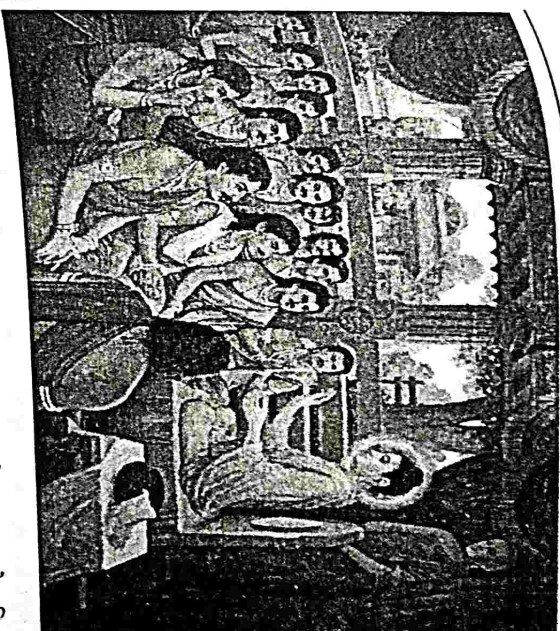
भगवान ने वज्जी गणराज्य की स्वतंत्रता और सुरक्षा के लिए लिच्छवियों को ये व्यावहारिक उपदेश दिये -

(१) लिच्छवियो! जव तक वज्जी एकता कायम रखते हुए वार-वार इकट्ठे वैठते रहेंगे, तव तक वे अजेय रहेंगे।

वज्जी गणराज्य के सांसद संसद-भवन में वार-वार एकत्र होकर देश की सुरक्षा पर विचार-विमर्श करते रहें। जव सांसद सजग रहते हैं तव देश पर हुए आक्रमण का सामूहिक रूप से सामना करने के लिए खवर सुनते ही वहां तत्काल अपना सैन्यवल भेज कर शत्रु का मर्दन करते हैं।

(२) लिच्छवियो! जव तक वज्जी एकमत होकर वैठते रहेंगे, एकमत होकर उठते रहेंगे, और एकमत होकर जो करणीय है उसे करते रहेंगे, तव तक वे अजेय रहेंगे।

किसी संकट की घड़ी में जव आह्वान की भेरी वजे तव प्रत्येक सांसद तुरंत संसद-भवन पहुँच जाय। वहां सव सर्वसम्मति से निर्णय करें। आपसी फूट होगी तो दुश्मन का सामना करना कठिन हो जायगा।

(३) लिच्छवियो! जव तक वज्जी अपने परंपरागत राज्य-विधान और न्यायसंहिता का अतिक्रमण नहीं करेंगे, तव तक वे अजेय रहेंगे।

न्याय संहिता का जरा-भी उल्लंघन किये बिना शासन चलाया जाय तो प्रजा प्रसन्न रहेगी, देश की सुरक्षा में सहर्ष भागीदार बनेगी। इसलिए संविधान को अक्षुण्ण रखना आवश्यक है।

(४) लिच्छवियो! जब तक वज्जी वयोवृद्धों का आदर-सत्कार, सम्मान-पूजन और गौरव प्रदान करते रहेंगे, उनके कथन पर ध्यान देते रहेंगे, तब तक वे अजेय रहेंगे।

देश के अनुभववृद्ध, वयोवृद्ध, अवकाशप्राप्त सांसदों का मान-सम्मान बना रहेगा तो सुरक्षा-संबंधी उनके लंबे अनुभवों का लाभ मिलता रहेगा।

(५) लिच्छवियो! जब तक वज्जी प्रजा की बहू-बेटियों को उचित संरक्षण देते रहेंगे, किसी का अपहरण नहीं करेंगे, तब तक वे अजेय रहेंगे।

सत्ता का मद बड़ा प्रबल होता है। कोई सांसद मदमत्त होकर परायी बहू-बेटियों पर अत्याचार नहीं करेगा। सांसद दुराचार से दूर रहेंगे, तो देश की सुरक्षा खतरे में नहीं पड़ेगी।

(६) लिच्छवियो! जब तक वज्जी राजनगरी के भीतर और बाहर जितने भी चैत्य हैं, देवस्थान हैं उनका मान-सम्मान करते रहेंगे, राज्य की ओर से उन्हें जो आर्थिक अनुदान मिलता रहा है उसे कायम रखेंगे, तो वे अजेय रहेंगे।

आज की भांति उन दिनों भी देश में अनेक संप्रदाय थे। उनके अपने-अपने चैत्य-चबूतरे थे, देवस्थान थे। राज्य को चाहिए कि वह सब को प्रसन्न रखे, संतुष्ट रखे। दुर्व्यवहार करके उन्हें देशद्रोही न बना ले।

(७) लिच्छवियो! जब तक वज्जी संतों, अरहंतों के लिए सुरक्षा की सुव्यवस्था कायम रखेंगे, तब तक वे अजेय रहेंगे।

जिस देश में संतों, अरहंतों का आदर किया जाना तो दूर बल्कि उन पर हाथ उठाया जाता हो, उन्हें सुख-शांतिपूर्वक विहार नहीं करने दिया जाता हो, उस देश में बाहर से संत, अर्हत आना बंद कर देते हैं और जो हैं वे देश छोड़ कर चले जाते हैं। इससे लोग सत्य धर्म के उपदेशों से वंचित रह जाते हैं, सदाचार-विहीन हो जाते हैं।

आनन्द प्रत्येक का यही उत्तर देते रहे, "हां, भगवान, मैंने सुना है कि वे पूर्णतया पालन करते हैं।"

सातों उपदेशों का यह सकारात्मक उत्तर सुन कर भगवान ने कहा, "जब तक वज्जी इनका पालन करते रहेंगे तब तक वज्जियों की वृद्धि ही होगी, हानि नहीं।"

तब भगवान ने महामात्य ब्राह्मण वस्सकार की ओर उन्मुख होकर कहा, "ब्राह्मण, एक समय सारन्दद चैत्य में विहार करते हुए मैंने वज्जियों को इन सात अपरिहानीय धर्मों (ऐसे धर्म जिनका पालन करने से हानि नहीं हो सकती) का उपदेश दिया था। ब्राह्मण, जब तक वज्जी इन सात धर्मों का पालन करते रहेंगे तब तक उनकी हानि नहीं हो सकती, उनकी वृद्धि ही होगी। अर्थात, उनकी विजय ही होगी, पराजय नहीं होगी।"

यह सुनकर ब्राह्मण वस्सकार ने कहा, "हे गोतम! सातों की तो बात ही क्या, इनमें से (एकता बनाये रखने वाले) केवल एक उपदेश का भी पालन करेंगे, तो वे अजेय ही रहेंगे।"

तब वस्सकार ब्राह्मण भगवान के भाषण का अभिनंदन कर, अनुमोदन कर आसन से उठकर चला गया।

-अङ्गुत्तरनिकाय (२.७.२१), सारन्ददसुत्त,

दीघनिकाय (२.३.१३१-१३५), महापरिनिब्बानसुत्त

भिक्षुओं को सात अपरिहानीय धर्मों का उपदेश

तब वस्सकार ब्राह्मण के चले जाने के उपरांत भगवान आयुष्मान आनन्द से बोले – "जाओ आनन्द! जितने भी भिक्षु राजगह के आस-पास विहरते हों उन सबको सभागार में एकत्र करो।"

"अच्छा, भंते!"

ऐसा कहते हुए आनन्द चले गये। कुछ समय बाद वे आये और बोले – "भंते! भिक्षु-संघ एकत्र है। अब भगवान जिसका काल समझें।"

तब, भगवान आसन से उठकर सभागार में गये। वहां बिछे आसन पर वे बैठ गये और भिक्षुओं को संबोधित किया – "भिक्षुओ! मैं तुम्हें सात

अपरिहानीय धर्मों का उपदेश करूंगा। उसे सुनो, अच्छी तरह मन में लाओ; मैं कहता हूं।"

"भंते! बहुत अच्छा" कह, भिक्षुओं ने भगवान को प्रतिवचन दिया। भगवान यह बोले -

(१) "भिक्षुओ! जब तक भिक्षु बार-बार एकत्र होकर आपस में बैठक (धर्मचर्चा) करते रहेंगे, तब तक भिक्षुओ! संघ की वृद्धि (उन्नति) ही समझना, हानि (अवनति) नहीं।

(२) "भिक्षुओ! जब तक भिक्षु एकत्र होकर बैठक करते रहेंगे, एक हो उत्थान करेंगे; एकजुट हो संघ के कर्तव्य कर्म करते रहेंगे, तब तक भिक्षुओ! संघ की उन्नति ही समझना, अवनति नहीं।

(३) "भिक्षुओ! जब तक भिक्षु अप्रज्ञप्त को प्रज्ञप्त नहीं बतलायेंगे, प्रज्ञप्त का उच्छेद नहीं करेंगे, प्रज्ञप्त शिक्षापदों को उनके मूल रूप में धारण करते रहेंगे, तब तक भिक्षुओ! संघ की उन्नति ही समझना, अवनति नहीं।

(४) "भिक्षुओ! जब तक जो धर्मरत, चिरप्रव्रजित, संघ के पिता, संघ के नायक और स्थविर भिक्षु हैं, उनका अन्य सभी भिक्षु आदर-सत्कार करेंगे, गुरुकार करेंगे, उन्हें मानित-पूजित करते रहेंगे तथा उनकी बातों को ध्यान से सुनेंगे, मानेंगे, आचरण में लायेंगे, तब तक भिक्षुओ! संघ की उन्नति ही समझना, अवनति नहीं।

(५) "भिक्षुओ! जब तक भिक्षु बार-बार उत्पन्न होने के स्वभाव वाली तृष्णा के वश में नहीं पड़ेंगे, भिक्षुओ! तब तक संघ की उन्नति ही समझना, अवनति नहीं।

(६) "भिक्षुओ! जब तक भिक्षु अरण्यवास (एकांत) में विहार करने की इच्छा वाले होंगे, तब तक भिक्षुओ! संघ की उन्नति ही समझना, अवनति नहीं।

(७) "भिक्षुओ! जब तक हर एक भिक्षु यह याद रखेगा कि भविष्य में अच्छे ब्रह्मचारी आवें, आये हुए अच्छे ब्रह्मचारी सुख से विहरें, तब तक भिक्षुओ! संघ की उन्नति ही समझना, अवनति नहीं।

"भिक्षुओ! जब तक ये सातों अपरिहानीय धर्म संघ में विद्यमान रहेंगे और सातों अपरिहानीय धर्मों को भिक्षु धारण किये हुए दिखायी देंगे, तब तक भिक्षुओ! संघ की उन्नति समझना, अवनति नहीं।"

इसी क्रम में भगवान ने अन्य सात अपरिहानीय धर्मों को भिक्षुओं को बताया - "भिक्षुओ! जब तक भिक्षु सारे दिन चीवर आदि के कार्यों में नहीं लगे रहेंगे, दिन-रात के प्रलाप (व्यर्थ की चर्चाओं) से बचते रहेंगे, दिन-रात आलस्य तथा निद्रा से बचते रहेंगे, लोगों की भीड़-भाड़ से बचते रहेंगे, पापेच्छ (पाप-कर्म की इच्छाओं के वशीभूत) नहीं होंगे, पापमित्रों से दूर रहेंगे, धर्म-साधना को बीच में नहीं छोड़ेंगे, तब तक भिक्षुओ! संघ की उन्नति ही समझना, अवनति नहीं।

"भिक्षुओ! जब तक भिक्षु इन सात बोध्यंगों - स्मृति, धर्मविचय, वीर्य, प्रीति, प्रश्रब्धि, समाधि, उपेक्षा - की भावना करते रहेंगे, तब तक भिक्षुओ! संघ की उन्नति ही समझना, अवनति नहीं।

"भिक्षुओ! जब तक भिक्षु अनित्यसंज्ञा, अनात्मसंज्ञा, अशुभसंज्ञा, आदीनवसंज्ञा, प्रहाणसंज्ञा, विरागसंज्ञा, निरोधसंज्ञा की भावना करते रहेंगे, तब तक भिक्षुओ! संघ की उन्नति ही समझना, अवनति नहीं।"

तदुपरांत भगवान ने भिक्षुओं को छः अपरिहानीय धर्मों की देशना दी।

"भिक्षुओ! जब तब भिक्षु अपने सब्रह्मचारियों (गुरुभाईयों) के साथ मैत्रीपूर्ण कायिक, वाचिक तथा चैतसिक कर्म करते रहेंगे, धार्मिक लाभों (भोग्य-पदार्थों) को शीलवान सब्रह्मचारियों के साथ बांटकर भोग करने वाले होंगे, अखंड, अछिद्र, सेवनीय, विद्वानों द्वारा प्रशंसित, अनिंदित समाधि की ओर अग्रसर करने वाले शील से युक्त होकर सब्रह्मचारियों के साथ गुप्त तथा प्रकट रूप में व्यवहार करते रहेंगे, जो यह आर्य भव-सागर को पार कराने वाली, दुःख-क्षय की ओर ले जाने वाली दृष्टि (प्रज्ञा) है, इस प्रकार दृष्टिगत हो भिक्षु सब्रह्मचारियों के साथ विहरेंगे, तब तक भिक्षुओ! संघ की उन्नति ही समझना, अवनति नहीं।"

-दीघनिकाय (२.३.१३६-१४१), महापरिनिब्बानसुत्त

दुराचार के दुष्परिणाम और सदाचार के सुपरिणाम

तब भगवान ने राजगह में इच्छानुसार विहार कर आयुष्मान आनन्द से कहा - "चलो आनन्द! अम्बलट्ठिका चलें।"

"अच्छा, भंते!" कह आयुष्मान आनन्द ने भगवान को प्रत्युत्तर दिया। विशाल भिक्षु-संघ के साथ भगवान अम्बलट्ठिका पहुँचे। वहां भगवान समय-समय पर भिक्षुओं को धर्मकथाएं कहते जैसे - 'यह शील है', 'यह समाधि है', 'यह प्रज्ञा है।' शील से परिभावित समाधि महान फलदायिनी होती है, महान कल्याणकारी होती है। समाधि से परिभावित प्रज्ञा महान फलदायिनी होती है, महान कल्याणकारी होती है। प्रज्ञा से परिभावित चित्त काम, भव, अविद्या के आस्रवों से विमुक्त हो जाता है।

तब भगवान ने अम्बलट्ठिका में यथेच्छ विहार करने के बाद, आनन्द से कहा - "चलो, आनन्द! अब नालन्दा चलें।"

"अच्छा, भंते!" कह आयुष्मान आनन्द ने भगवान को प्रत्युत्तर दिया।

विशाल भिक्षु-संघ के साथ भगवान नालन्दा पहुँचे। वहां पर भी भगवान ने भिक्षुओं को शील, समाधि, प्रज्ञा की कथाओं से समुत्तेजित किया।

तब भगवान नालन्दा में यथेच्छ विहार करने के बाद, आनन्द से बोले - "चलो, आनन्द! अब पाटलिगाम (पाटलिग्राम) चलें।"

"अच्छा, भंते!" कह आयुष्मान आनन्द ने भगवान को प्रत्युत्तर दिया।

विशाल भिक्षु-संघ के साथ भगवान पाटलिगाम पहुँचे। वहां भगवान का आगमन जानकर पाटलिगाम के उपासक भगवान के पास आये और उनका अभिवादन करके एक ओर बैठ गये।

भगवान ने उनकी ओर देखा। तब उपासकों ने निवेदन किया - "भंते! भगवान हमारी अतिथिशाला में पधारें।" मौन रह कर भगवान ने उनकी प्रार्थना स्वीकार की।

तब भगवान आयुष्मान आनन्द सहित सभी भिक्षुओं को साथ लेकर अतिथिशाला पहुँचे। सभी उपासकों ने संघ-सहित भगवान की अगवानी और स्वागत किया। भगवान अपने लिए बिछे आसन पर बैठे। उसके बाद संघ और उपासक यथानिर्धारित स्थान पर बैठ गये।

शास्ता ने उपासकों को देशना दी - "गृहपतियो! दुराचारी (दुःशील, शील से रहित व्यक्ति) को दुराचार के कारण पांच दुष्परिणाम भोगने पड़ते हैं।

"गृहपतियो! दुराचारी प्रमादवश अपने बहुत से भोगों को खो देता है - दुराचारी के दुराचार का यह पहला दुष्परिणाम है।

"समाज में दुराचारी निंदा का पात्र बनता है - दुराचारी के दुराचार का यह दूसरा दुष्परिणाम है।

"दुराचारी व्यक्ति जिस किसी सभा में जाता है, चाहे वह क्षत्रियसभा हो, ब्राह्मणसभा, गृहपतिसभा या श्रमणसभा हो, म्लान और मूक होकर ही बैठा रहता है - दुराचारी के दुराचार का यह तीसरा दुष्परिणाम है।

"दुराचारी व्यक्ति सम्मूढ़ावस्था में मृत्यु को प्राप्त होता है - दुराचारी के दुराचार का यह चौथा दुष्परिणाम है।

"गृहपतियो! काया के छूटने पर दुःशील, शील से रहित व्यक्ति अपायगति को प्राप्त निरय लोक में जा गिरता है - दुराचारी के दुराचार का यह पांचवां दुष्परिणाम है।

"गृहपतियो! दुराचारी को ये पांच दुष्परिणाम भोगने पड़ते हैं।

"गृहपतियो! अपने सदाचार के कारण सदाचारी को पांच सुपरिणाम प्राप्त होते हैं।

"अप्रमाद के कारण सदाचारी (शील-संपन्न व्यक्ति) भोगराशि को बड़ी मात्रा में इसी जन्म में प्राप्त करता है - सदाचारी के सदाचार का यह प्रथम सुपरिणाम होता है।

"समाज में सदाचारी का मंगल यश चारों ओर फैलता है - सदाचारी के सदाचार का यह दूसरा सुपरिणाम होता है।

"सदाचारी व्यक्ति जिस किसी सभा में जाता है, चाहे वह क्षत्रियसभा हो, ब्राह्मणसभा, गृहपतिसभा या श्रमणसभा हो, वह मूक न होकर विशारद बनकर जाता है - सदाचारी के सदाचार का यह तीसरा सुपरिणाम होता है।

"सदाचारी व्यक्ति असम्मूढ़ अवस्था (होशो-हवास) में मृत्यु को प्राप्त होता है - सदाचारी के सदाचार का यह चौथा सुपरिणाम होता है।

"गृहपतियो! काया के छूटने पर (मृत्यु के वाद) सदाचारी व्यक्ति सुगति को प्राप्त हो स्वर्ग लोक में उत्पन्न होता है - सदाचारी के सदाचार का यह पांचवां सुपरिणाम होता है।

"गृहपतियो! सदाचारी के सदाचार के कारण ये पांच सुपरिणाम होते हैं।"

पाटलिगाम के उपासक आसन से उठकर भगवान का अभिवादन कर, प्रदक्षिणा कर चले गये।

चार आर्यसत्यों का माहात्म्य

तव भगवान ने आयुष्मान आनन्द से कहा - "चलो, आनन्द! अव कोटिगाम (कोटिग्राम) चलें।"

"अच्छा, भंते!" कह आयुष्मान आनन्द ने भगवान को प्रत्युत्तर दिया।

विशाल भिक्षु-संघ के साथ भगवान कोटिगाम पहुँचे।

वहां पर भगवान ने भिक्षुओं को उपदेश दिया – "भिक्षुओ! चार आर्यसत्यों का अनुवोध और प्रतिवेध न होने से दीर्घ काल से लोक में (प्राणियों का) संसरण, आवागमन का चक्र चल रहा है, 'मेरा-तेरा' की भावना चल रही है।"

"कौन-से चार?

"भिक्षुओ! 'दुःख' आर्यसत्य का अनुवोध और प्रतिवेध न होने से, 'दुःख-समुदय' आर्यसत्य का अनुवोध और प्रतिवेध न होने से, 'दुःख-निरोध' आर्यसत्य का अनुवोध और प्रतिवेध न होने से, 'दुःख-निरोध-गामिनी-प्रतिपदा' आर्यसत्य का अनुवोध और प्रतिवेध न होने से।

"भिक्षुओ! जव इन चारों आर्यसत्यों को जान लिया गया, तव भवतृष्णा उच्छिन्न हो गयी, भवनेत्री क्षीण हो गयी।"

-दीघनिकाय (२.३.१५५), महापरिनिब्बानसुत्त

"जो जाने अच्छी तरह, आर्यसत्य ये चार।
भवनेत्री उसकी कटे, होय दुःखों के पार॥"

धर्म-आदर्श का उपदेश

भगवान ने कोटिगाम में यथेच्छ विहार करने के वाद, आनन्द से कहा - "चलो, आनन्द! अव नातिका चलें।"

"अच्छा, भंते!" कह आयुष्मान आनन्द ने भगवान को प्रत्युत्तर दिया।

विशाल भिक्षु-संघ के साथ भगवान नातिका पहुँचे। नातिका पहुँचकर भगवान गिञ्जकावसथ में विहार करने लगे।

तव आयुष्मान आनन्द भगवान के पास गये। भगवान का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान आनन्द ने भगवान से कहा - "भंते! भिक्षु साळ्ह नातिका में काल को प्राप्त हुआ, उसकी क्या गति हुई? उसने किस लोक में जन्म ग्रहण किया। भिक्षुणी नन्दा, सुदत्त उपासक, सुजाता उपासिका, कुक्कुट उपासक, काळिम्व उपासक, निकट उपासक, कटिस्सह उपासक, तुट्ठ उपासक, सन्तुट्ठ उपासक, भद्द उपासक तथा सुभद्द उपासक नातिका में मृत्यु को प्राप्त हो गये। भंते! उनकी क्या गति हुई? वे किस लोक में उत्पन्न हुए?"

भगवान ने कहा – "आनन्द! भिक्षु साळ्ह इसी जन्म में आस्रवों के क्षय से आस्रव-रहित चेतोविमुक्ति तथा प्रज्ञाविमुक्ति द्वारा धर्म का साक्षात्कार कर विहार कर रहा था। आनन्द! नन्दा भिक्षुणी पांच अधोभागीय संयोजनों (सत्कायदृष्टि, विचिकित्सा, शीलव्रतपरामर्श, राग, द्वेष) के क्षय से देवता हो वहां से न लौटने वाली (अनागामी) अवस्था को प्राप्त हो वहीं निर्वाण प्राप्त करेगी। सुदत्त उपासक, आनन्द! तीन संयोजनों (सत्कायदृष्टि, विचिकित्सा, शीलव्रतपरामर्श) के क्षीण होने से, राग, द्वेष और मोह के दुर्वल होने से सकदागामी हुआ। इस लोक में एक ही वार और आकर दुःखों का अंत कर लेगा। उपासिका सुजाता तीन संयोजनों के क्षय से न गिरने वाले वोधि के रास्ते पर आरूढ़ हो सोतापन्न हुई। कुक्कुट उपासक, काळिम्व उपासक, निकट उपासक, कटिस्सह उपासक, तुट्ठ उपासक, सन्तुट्ठ उपासक, भद्द उपासक तथा सुभद्द उपासक अनागामी अवस्था को प्राप्त हुए।

"आनन्द! नातिका में मृत्यु के उपरांत पचास से अधिक उपासक अनागामी, नव्वे से अधिक उपासक सकदागामी और पांच सौ से अधिक उपासक सोतापन्न अवस्था को प्राप्त हुए हैं।

"जिसने मनुष्य योनि में जन्म लिया हो, वह एक दिन अवश्य मरेगा ही। आनन्द! इसमें आश्चर्य की क्या बात है? आनन्द! यह उचित नहीं कि जो कोई भी मनुष्य मृत्यु को प्राप्त हो उसकी गति जानने के लिए तथागत के पास आया जाय। आनन्द! इस प्रकार यह तथागत को कष्ट ही देना है। इसलिए आनन्द! मैं तुम्हें धर्म-आदर्श नामक उपदेश की देशना करता हूं जिससे आर्यश्रावक स्वयं अपनी भावी गति को जान सकेगा - 'अब मैं नरकयोनि, पशुयोनि, प्रेतयोनि, अपाय गतियों से मुक्त हूं। सोतापन्न अवस्था पर आरूढ़ हो गया हूं जहां से अपाय गतियों में मेरा जाना असंभव है।'

"आनन्द! क्या है वह **धर्म-आदर्श** नामक उपदेश?

"आनन्द! जो आर्यश्रावक बुद्ध में अत्यंत श्रद्धायुक्त होता है, वह भगवान के गुणों को स्मरण करता है - *'ऐसे ही तो हैं वे भगवान! अर्हत, सम्यक-संबुद्ध, विद्या तथा सदाचरण से संपन्न, उत्तम गति प्राप्त, समस्त लोकों के ज्ञाता, सर्वश्रेष्ठ, (पथ-भ्रष्ट घोड़ों की तरह) भटके लोगों को सही मार्ग पर ले आने वाले सारथी, देवताओं और मनुष्यों के शास्ता (आचार्य), बुद्ध भगवान।'*

"आनन्द! जो आर्यश्रावक धर्म में अत्यंत श्रद्धायुक्त होता है वह धर्म के गुणों को स्मरण करता है - *'भगवान द्वारा भली प्रकार आख्यात किया गया यह धर्म सांदृष्टिक है, काल्पनिक नहीं, प्रत्यक्ष है, तत्काल फलदायक है, आओ और देखो (कहलाने योग्य है), निर्वाण तक ले जाने योग्य है, प्रत्येक समझदार व्यक्ति के साक्षात करने योग्य है।'*

"आनन्द! जो आर्यश्रावक संघ में अत्यंत श्रद्धायुक्त होता है वह संघ के गुणों को स्मरण करता है - *'सुमार्ग पर चलने वाला है भगवान का श्रावक-संघ, ऋजु मार्ग पर चलने वाला है भगवान का श्रावक-संघ, न्याय (सत्य) मार्ग पर चलने वाला है भगवान का श्रावक-संघ, उचित मार्ग पर चलने वाला है भगवान का श्रावक-संघ, यह जो (मार्ग-फल प्राप्त आर्य) व्यक्तियों के चार जोड़े हैं, याने आठ पुरुष-पुद्गल हैं - यही भगवान का श्रावक-संघ है, (यही) आवाहन करने योग्य है, पाहुना बनाने (आतिथ्य) योग्य है, दक्षिणा देने योग्य है, अंजलि-बद्ध (प्रणाम) किये जाने योग्य है। लोगों का यही श्रेष्ठतम पुण्य क्षेत्र है।'*

"आनन्द! जो आर्यश्रावक अखंड, अछिद्र, निर्दोष, निष्कलंक, अनिंदित, सेवनीय, विज्ञों द्वारा प्रशंसित शीलों से युक्त होता है जो उसकी समाधि में सहायक होते हैं।

"आनन्द! यही है धर्म-आदर्श का उपदेश जिससे आर्यश्रावक स्वयं अपनी भावी गति को जान सकता है - 'अब मैं नरकयोनि, पशुयोनि, प्रेतयोनि, अपाय गतियों से मुक्त हूं। सोतापन्न अवस्था पर आरूढ़ हो गया हूं, जहां से अपाय गतियों में मेरा जाना असंभव है।'"

नातिका में भगवान इसी प्रकार की धर्मकथाओं से भिक्षुओं को समुत्तेजित करते थे।

-दीघनिकाय (२.३.१५६-१५९), महापरिनिब्बानसुत्त

वेसाली में चारिका

भगवान ने नातिका में यथेच्छ विहार करने के बाद आनन्द से कहा - "चलो, आनन्द! अब वेसाली चलें।"

"अच्छा, भंते!" कह आयुष्मान आनन्द ने भगवान को प्रत्युत्तर दिया।

विशाल भिक्षु-संघ के साथ भगवान वेसाली पहुँचे। वेसाली में भगवान अम्बपाली वन में विहार करते थे। तब भगवान ने भिक्षुओं को आमंत्रित किया -

"भिक्षुओ! स्मृति और संप्रज्ञान के साथ विहार करो, यही हमारा (तुम्हारे लिए) अनुशासन (शिक्षा) है।

"भिक्षुओ! कोई भिक्षु कैसे स्मृतिमान होता है?

"भिक्षुओ! भिक्षु (साढ़े तीन हाथ के काया-रूपी) लोक में राग और द्वेष को दूर कर, श्रमशील, स्मृतिमान और संप्रज्ञानी बन, काया में कायानुपश्यी होकर विहार करता है;

(साढ़े तीन हाथ के काया-रूपी) लोक में राग और द्वेष को दूर कर, श्रमशील, स्मृतिमान और संप्रज्ञानी बन, वेदनाओं में वेदनानुपश्यी होकर विहार करता है;

(साढ़े तीन हाथ के काया-रूपी) लोक में राग और द्वेष को दूर कर, श्रमशील, स्मृतिमान और संप्रज्ञानी बन, चित्त में चित्तानुपश्यी होकर विहार करता है;

(साढ़े तीन हाथ के काया-रूपी) लोक में राग और द्वेष को दूर कर, श्रमशील, स्मृतिमान और संप्रज्ञानी बन, धर्म में धर्मानुपश्यी होकर विहार करता है।

इस प्रकार भिक्षुओ! भिक्षु स्मृतिमान होता है।

"और भिक्षुओ! भिक्षु कैसे संप्रज्ञानी होता है?

"भिक्षुओ! भिक्षु आगे वढ़ता है कि पीछे हटता है, तो संप्रज्ञानी होता है; सामने देखता है कि आड़े-तिरछे देखता है, तो संप्रज्ञानी होता है; वांह सिकुड़ाता है कि पसारता है, तो संप्रज्ञानी होता है; अपने वस्त्र चीवर, पात्र आदि धारण करता है, तो संप्रज्ञानी होता है; खाते, पीते, चखते समय संप्रज्ञानी होता है; मल-मूत्र त्यागते समय संप्रज्ञानी होता है; चलते हुए, खड़े हुए, वैठे हुए, सोते हुए, जागते हुए, वोलते हुए, मौन रहते समय संप्रज्ञानी होता है।

इस प्रकार भिक्षुओ, भिक्षु संप्रज्ञानी होता है।

"भिक्षुओ! भिक्षु स्मृति और संप्रज्ञान के साथ विहार करे, यही हमारा अनुशासन है।"

-दीघनिकाय (२.३.१६०), महापरिनिब्बानसुत्त

आत्मशरण हो विहरो

तव भगवान ने वेसाली में अम्वपाली वन में यथेच्छ विहार करने के वाद आनन्द से कहा - "चलो, आनन्द! अव वेळुवगाम चलें।"

"अच्छा, भंते!" कह आयुष्मान आनन्द ने भगवान को प्रत्युत्तर दिया।

विशाल भिक्षु-संघ के साथ भगवान वेळुवगाम पहुँचे।

वहां पर भगवान ने भिक्षुओं को आमंत्रित किया - "भिक्षुओ! जाओ वेसाली के चारों ओर जहां-जहां तुम्हारे मित्र, परिचित हों, वहां-वहां जाकर वर्षावास करो। मैं इसी वेळुवगाम में ही वर्षावास करूंगा।"

"भंते! बहुत अच्छा" कहते हुए सभी भिक्षु वेसाली के आस-पास के स्थानों में वर्षावास करने लगे। भगवान भी वहीं वेळुवगाम में वर्षावास करने लगे।

वेळुवगाम के वर्षावास में भगवान को कठिन रोग उत्पन्न हुआ। उन्हें मरणांतक वेदनाएं होने लगीं। भगवान ने उस रोग को स्मृति और संप्रज्ञान के साथ दूर किया। उस समय भगवान ने यह सोचा – 'अपने उपस्थाक को विना वताये और भिक्षु-संघ का विना अवलोकन किये परिनिर्वाण प्राप्त करना मेरे लिए उचित नहीं होगा। क्यों न मैं इस वाधा को दूर कर जीवन-संस्कार को दृढ़तापूर्वक धारण कर विहार करूं!' तव भगवान का वह रोग शांत हो गया। भगवान रोगमुक्त हो, विहार की छाया में विछे आसन पर वैठे थे।

तव आयुष्मान आनन्द भगवान के पास गये। पास जाकर भगवान का अभिवादन कर एक ओर वैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान आनन्द ने भगवान से कहा – "भंते! भगवान को आज मैने सुखी देखा। भंते! भगवान को आज मैंने स्वस्थ देखा। भंते! भगवान को बीमार देखकर मेरा शरीर शून्य (स्तब्ध) पड़ गया था। मुझे दिशाएं भी नहीं सूझ रही थीं। धर्म का प्रतिभान भी नहीं हो रहा था। पर, भंते! इस वात का विश्वास था कि भगवान जव तक भिक्षु-संघ को अंतिम उपदेश नहीं देंगे, तव तक परिनिर्वाण को प्राप्त नहीं करेंगे।"

"आनन्द! भिक्षु-संघ मुझसे क्या चाहता है? धर्म में तथागत कुछ भी रहस्य और गोपनीय नहीं रखते हैं। भीतर-वाहर सव प्रकार से देशना कर देते हैं। आनन्द! धर्म में तथागत की कोई आचार्यमुष्टि नहीं है। आनन्द! तथागत को ऐसा नहीं है कि मैं भिक्षु-संघ को धारण करता हूं या संघ मेरे कारण से है। ऐसी परिस्थिति में तथागत संघ को क्या कहेंगे!

"आनन्द! मैं जीर्ण, वृद्ध, वयःप्राप्त हो चुका हूं। अस्सी वर्ष का हो चला हूं। आनन्द! जैसे पुरानी गाड़ी वांध-वूंधकर चलती है, ऐसे ही आनन्द! मानों तथागत का शरीर वांध-वूंधकर चलाया जा रहा है। आनन्द! जिस समय तथागत सारे निमित्तों से दूर, किन्हीं-किन्हीं वेदनाओं के निरुद्ध होने से,

निमित्त-रहित चित्त की समाधि को प्राप्त हो विहरते हैं, उस समय तथागत का शरीर स्वस्थ रहता है।

"तस्मातिहानन्द, अत्तदीपा विहरथ अत्तसरणा अनञ्ञसरणा, धम्मदीपा धम्मसरणा अनञ्ञसरणा।"

"इसलिए, हे आनन्द, आत्मद्वीप होकर विहार करो, आत्मशरण होकर, न कि अन्य किसी की शरण ग्रहण कर; धर्मद्वीप होकर विहार करो, धर्मशरण होकर, न कि अन्य किसी की शरण ग्रहण कर।

"आनन्द! कोई भिक्षु आत्मद्वीप होकर, आत्मशरण होकर, न किसी अन्य की शरण ग्रहण कर; धर्मद्वीप होकर, धर्मशरण होकर, न कि अन्य किसी की शरण ग्रहण कर कैसे विहार करता है?

"इधानन्द भिक्खु काये कायानुपस्सी विहरति आतापी सम्पजानो सतिमा, विनेय्य लोके अभिज्झादोमनस्सं।

"आनन्द! भिक्षु (साढ़े तीन हाथ के काया-रूपी) लोक में राग और द्वेष को दूर कर, श्रमशील, स्मृतिमान और संप्रज्ञानी बन, काया में कायानुपश्यी होकर विहार करता है;

"वेदनासु वेदनानुपस्सी विहरति आतापी सम्पजानो सतिमा, विनेय्य लोके अभिज्झादोमनस्सं।

(साढ़े तीन हाथ के काया-रूपी) लोक में राग और द्वेष को दूर कर, श्रमशील, स्मृतिमान और संप्रज्ञानी बन, वेदनाओं में वेदनानुपश्यी होकर विहार करता है;

"चित्ते चित्तानुपस्सी विहरति आतापी सम्पजानो सतिमा, विनेय्य लोके अभिज्झादोमनस्सं।

(साढ़े तीन हाथ के काया-रूपी) लोक में राग और द्वेष को दूर कर, श्रमशील, स्मृतिमान और संप्रज्ञानी बन, चित्त में चित्तानुपश्यी होकर विहार करता है;

"धम्मे धम्मानुपस्सी विहरति आतापी सम्पजानो सतिमा, विनेय्य लोके अभिज्झादोमनस्सं।"

(साढ़े तीन हाथ के काया-रूपी) लोक में राग और द्वेष को दूर कर, श्रमशील, स्मृतिमान और संप्रज्ञानी बन, धर्म में धर्मानुपश्यी होकर विहार करता है।

"आनन्द! इस प्रकार भिक्षु आत्मद्वीप होकर, आत्मशरण होकर, न कि अन्य किसी की शरण ग्रहण कर; धर्मद्वीप होकर, धर्मशरण होकर, न कि अन्य किसी की शरण ग्रहण कर विहार करता है।

"आनन्द! जो कोई इस प्रकार साधना करते हुए आत्मद्वीप होकर, आत्मशरण होकर, न कि अन्य किसी की शरण ग्रहण कर; धर्मद्वीप होकर, धर्मशरण होकर, न कि अन्य किसी की शरण ग्रहण कर विहार करेंगे, आनन्द! वे ही शिक्षाकामी भिक्षु (मेरे द्वारा उपदिष्ट धर्म में) अग्र (श्रेष्ठ) होंगे।"

-दीघनिकाय (२.३.१६३-१६५), महापरिनिब्बानसुत्त

बुद्ध को इच्छामृत्यु की शक्ति प्राप्त

तव भगवान पूर्वाह्न समय पात्र, चीवर ले भिक्षाटन के लिए वेसाली में प्रविष्ट हुए। भिक्षाटन के उपरांत भगवान ने आयुष्मान आनन्द से कहा – "आनन्द! आसन उठाओ, दिन के विहार के लिए चापाल चैत्य चलें।"

"अच्छा, भंते!" कह आयुष्मान आनन्द आसन लेकर भगवान के पीछे-पीछे चले। चापाल चैत्य पहुँचकर आयुष्मान आनन्द ने वहां आसन बिछा दिया। वहां पहुँचकर भगवान बिछे आसन पर बैठ गये। आयुष्मान आनन्द भी भगवान का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान आनन्द को भगवान ने यह कहा – "आनन्द! रमणीय है वेसाली। रमणीय हैं उदेन चैत्य, गोतमक चैत्य, सत्तम्ब चैत्य, वहुपुत्त चैत्य, सारन्दद चैत्य और चापाल चैत्य।"

"आनन्द! जिस किसी ने चार ऋद्धिपादों को अच्छी तरह भावित कर लिया है, बहुलीकृत कर लिया है, वह यदि चाहे तो कल्प-भर ठहर सकता है या कल्प के शेष भाग तक। आनन्द! तथागत ने चार ऋद्धिपादों को अच्छी तरह भावित कर लिया है, बहुलीकृत कर लिया है। वे यदि चाहें तो कल्प-भर ठहर सकते हैं या कल्प के शेष भाग तक।"

भगवान द्वारा ऐसा स्पष्ट संकेत किये जाने पर भी आयुष्मान आनन्द भगवान के आशय को नहीं समझ सके। और न ही भगवान से उन्होंने प्रार्थना की कि भंते! भगवान कल्प-भर ठहरें, सुगत! वहुतों के हित के लिए, वहुतों के सुख के लिए, लोगों पर अनुकंपा करने के लिए, देवताओं और मनुष्यों के हित और सुख के लिए कल्प-भर ठहरें। उस समय मार ने आयुष्मान आनन्द के चित्त पर पैठ वना ली थी।

दूसरी वार भी भगवान ने कहा - "आनन्द! जिस किसी ने चार ऋद्धिपादों ..... कल्प के शेष भाग तक।"

तीसरी वार भी भगवान ने कहा - "आनन्द! जिस किसी ने चार ऋद्धिपादों ..... कल्प के शेष भाग तक।"

आयुष्मान आनन्द तीनों वार चुप रहे।

तव भगवान ने आयुष्मान आनन्द को संवोधित किया - "जाओ आनन्द, जिसका काल समझते हो।"

"अच्छा, भंते!" कह आयुष्मान आनन्द आसन से उठकर भगवान का अभिवादन कर, प्रदक्षिणा कर कुछ दूर जाकर एक वृक्ष के नीचे वैठ गये।

-दीघनिकाय (२.३.१६६-१६७), महापरिनिब्बानसुत्त

मार द्वारा भगवान से याचना

आयुष्मान आनन्द के चले जाने के वाद पापी मार भगवान के पास आया। उसने भगवान से कहा - "भंते! भगवान परिनिर्वाण को प्राप्त हों। सुगत परिनिर्वाण को प्राप्त हों। भंते! भगवान यह परिनिर्वाण का समय है। भंते! भगवान कह चुके हैं - पापी! मैं तव तक परिनिर्वाण को नहीं प्राप्त होऊंगा जव तक कि मेरे भिक्षु-श्रावक, भिक्षुणी-श्राविकाएं, उपासक, उपासिकाएं विनय-युक्त, विशारद, वहुश्रुत, धर्मधर, धर्म के मार्ग पर आरूढ़, ठीक मार्ग पर आरूढ़, धर्मानुसार आचरण करने वाले, अपने सिद्धांत को ठीक से पढ़ कर व्याख्यान करने, उपदेश करने, प्रज्ञापन करने, स्थापन करने, विवरण करने, विभाजन करने, स्पष्ट करने, दूसरों द्वारा उठाये अपवाद को धर्म के आधार पर अच्छी तरह जान-समझ कर युक्तियुक्त धर्म का उपदेश न करने लगेंगे, अर्थात धर्म का प्रशिक्षण देने में पारंगत नहीं हो जायेंगे। भंते! भगवान आप की चारों परिषदों के प्रवुद्ध व्यक्ति विधिवत धर्मोपदेश देने लगे हैं। भंते! भगवान आप द्वारा उपदिष्ट धर्म देवताओं और मनुष्यों में प्रकाशित हो गया है। भंते! भगवान अव परिनिर्वाण को प्राप्त हों। सुगत परिनिर्वाण को प्राप्त हों। भंते! भगवान यह परिनिर्वाण का समय है।"

मार द्वारा भगवान से ऐसी याचना किये जाने पर भगवान वोले - "पापी मार! तू मेरे परिनिर्वाण के विषय में निश्चिंत रह। शीघ्र ही तथागत का परिनिर्वाण होगा। आज से तीन माह वाद तथागत परिनिर्वाण को प्राप्त होंगे।"

-दीघनिकाय (२.३.१६८), महापरिनिब्बानसुत्त

भगवान द्वारा आयुसंस्कार का त्याग

तव भगवान ने चापाल चैत्य में स्मृति और संप्रज्ञान के साथ आयु-संस्कार का त्याग किया। उनके आयु-संस्कार का त्याग करते ही रोमांचकारी भूचाल आया। देवदुंदुभियां वज उठीं।

उस समय भगवान ने यह उदान कहा–

"तुलमतुलञ्च सम्भवं, भवसङ्खारमवस्सजि मुनि।
अज्झत्तरतो समाहितो, अभिन्दि कवचमिवत्तसम्भव"न्ति॥

["निर्वाण और भव को तौलते हुए ऋषि ने भवसंस्कार को त्याग दिया। अध्यात्मरत और समाहित हो अपने साथ उत्पन्न कवच को तोड़ दिया।"]

-दीघनिकाय (२३१६९) महापरिनिब्बानसुत्त

मुनि ने जीवनशक्ति को दिया उसी क्षण छोड़।
अंतर में एकाग्र हो, दिया कवच को तोड़॥

महाभूचाल का प्रादुर्भाव और उसके हेतु

तब आयुष्मान आनन्द को यह विचार हुआ - अरे आश्चर्य है! अरे यह अद्भुत बात है कि इतना उग्र, भीषण, रोमांचकारी भूचाल आया। देवदुंदुभियां बज रही हैं। इस महान भूचाल के प्रादुर्भाव का क्या हेतु है?

तब आयुष्मान आनन्द भगवान के पास गये। पास जाकर भगवान का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान आनन्द ने भगवान से यह कहा - "आश्चर्य है, भंते! अद्भुत है, भंते! इतना उग्र एवं भीषण भूचाल आया जिससे कि देवदुंदुभियां भी बज उठीं। इसके प्रादुर्भाव का क्या हेतु है?"

"आनन्द! इस प्रकार के विशाल भूचाल के प्रादुर्भाव के आठ कारण होते हैं।

"आनन्द! यह पृथ्वी जल पर प्रतिष्ठित है, जल वायु पर प्रतिष्ठित है और वायु आकाश में स्थित है। किसी समय जब भीषण तूफान चलता है तब जल कंपित हो उठता है। इस जल-कंपन से भूकंपन का भी होना स्वाभाविक है; क्योंकि पृथ्वी जल पर ही स्थित है। आनन्द! महाभूचाल के प्रादुर्भाव का यह प्रथम हेतु है।

"आनन्द! जब कोई श्रमण या ब्राह्मण योगबल को प्राप्त हो, अथवा कोई महानुभाव देवत्व को प्राप्त हो और उसने पृथ्वी संज्ञा की थोड़ी भी भावना की हो और जल संज्ञा की पर्याप्त भावना की हो तब वह अपने योग-बल से पृथ्वी को कंपित करता है। आनन्द! महाभूचाल के प्रादुर्भाव का यह द्वितीय हेतु है।

"जब बोधिसत्त्व तुषित लोक से च्युत हो स्मृति और संप्रज्ञान के साथ माता की कोख में प्रविष्ट होते हैं, तब पृथ्वी में कंपन होता है। आनन्द! महाभूचाल के प्रादुर्भाव का यह तृतीय हेतु है।

"आनन्द! जब बोधिसत्त्व स्मृति और संप्रज्ञान के साथ माता के गर्भ से बाहर आते हैं, तब पृथ्वी में कंपन होता है। आनन्द! महाभूचाल के प्रादुर्भाव का यह चतुर्थ हेतु है।

"आनन्द! जब तथागत अनुत्तर सम्यक-संबोधि का साक्षात्कार करते हैं, तब पृथ्वी में कंपन होता है। आनन्द! महाभूचाल के प्रादुर्भाव का यह पंचम हेतु है।

"आनन्द! जब तथागत अनुत्तर धर्मचक्र का प्रवर्तन करते हैं, तब पृथ्वी में कंपन होता है। आनन्द! महाभूचाल के प्रादुर्भाव का यह छठा हेतु है।

"आनन्द! जब तथागत स्मृति और संप्रज्ञान के साथ आयुसंस्कार का त्याग करते हैं, तब पृथ्वी में कंपन होता है। आनन्द! महाभूचाल के प्रादुर्भाव का यह सातवां हेतु है।

"और आनन्द! जब तथागत अनुपादिशेष परिनिर्वाण को प्राप्त होते हैं, तब पृथ्वी में कंपन होता है। आनन्द! महाभूचाल के प्रादुर्भाव का यह आठवां हेतु है।"

"आनन्द! विशाल भूचाल के प्रादुर्भाव के ये आठ कारण होते हैं।"

तदुपरांत भगवान ने आयुष्मान आनन्द को आठ परिषदों, आठ अभिभू-आयतनों, आठ विमोक्षों के बारे में बतलाया।

-दीघनिकाय (२.३.१७०-१७४), महापरिनिब्बानसुत्त

मारकथा

आनन्द! संबोधि-प्राप्ति के उपरांत जब मैं उरुवेला की नेरञ्जरा नदी के तट पर अजपाल नामक वटवृक्ष के नीचे विहार कर रहा था तब पापी मार मेरे पास आकर खड़ा हो गया। बोला - "भंते! भगवान परिनिर्वाण को प्राप्त हों। सुगत परिनिर्वाण को प्राप्त हों। भंते! भगवान यह परिनिर्वाण का समय है। भंते! भगवान कह चुके हैं - पापी! मैं तब तक परिनिर्वाण को नहीं प्राप्त होऊंगा जब तक कि मेरे भिक्षु-श्रावक, भिक्षुणी-श्राविकाएं, उपासक, उपासिकाएं विनय-युक्त, विशारद, बहुश्रुत, धर्मधर, धर्म के मार्ग पर आरूढ़, ठीक मार्ग पर आरूढ़, धर्मानुसार आचरण करने वाले, अपने सिद्धांत को ठीक से पढ़ कर व्याख्यान करने, उपदेश करने, प्रज्ञापन करने, स्थापन करने, विवरण करने, विभाजन करने, स्पष्ट करने, दूसरों द्वारा उठाये अपवाद को धर्म के आधार पर अच्छी तरह जान-समझ कर

युक्तियुक्त धर्म का उपदेश न करने लगेंगे, अर्थात धर्म का प्रशिक्षण देने में पारंगत नहीं हो जायेंगे।"

आनन्द! आज अभी पापी मार इस चापाल चैत्य में मेरे पास आया। मेरे पास आकर खड़ा हो गया। वोला - "भगवान! आप ने जो आश्वासन दिया था वह पूरा हुआ। वड़ी संख्या में भिक्षु, भिक्षुणियां, गृहस्थ पुरुष और नारियां धर्म में पक कर प्रशिक्षण के कार्य में निपुण हो गये हैं। अव आप परिनिर्वाण को प्राप्त हों।" ऐसा कहने पर मैंने आनन्द! पापी मार से यह कहा - "पापी मार! तू मेरे परिनिर्वाण के विषय में निश्चिंत रह। शीघ्र ही तथागत का परिनिर्वाण होगा। आज से तीन माह वाद तथागत परिनिर्वाण को प्राप्त होंगे।" अभी आनन्द! इस चापाल-चैत्य में तथागत ने स्मृति और संप्रज्ञान के साथ आयु-संस्कार को त्याग दिया है।

-दीघनिकाय (२.३.१७५), महापरिनिब्बानसुत्त

आनन्द द्वारा भगवान से याचना

ऐसा कहने पर आयुष्मान आनन्द भगवान से वोले - "भंते! भगवान कल्प-भर ठहरें। वहुजन के हित के लिए, वहुजन के सुख के लिए, लोगों पर अनुकंपा करने के लिए, देवताओं और मनुष्यों के प्रयोजन, हित-सुख के लिए सुगत कल्प-भर ठहरें।"

"वस, आनन्द! तथागत से ऐसी याचना न करो। तथागत से याचना करने का समय वीत गया।"

दूसरी वार तथा फिर तीसरी वार भी आनन्द ने ऐसी ही प्रार्थना की।

"आनन्द! तथागत की वोधि पर विश्वास करते हो न?"

"हां, भंते!"

"तो ऐसा कहकर क्यों तथागत पर तीन वार दवाव डालते हो?"

"भंते! मैंने भगवान के मुख से ऐसा सुना है कि जिस किसी ने चार ऋद्धिपादों को अच्छी तरह भावित कर लिया है, वहुलीकृत कर लिया है, वह यदि चाहे तो कल्प-भर ठहर सकता है या कल्प के शेष भाग तक। आनन्द! तथागत ने चार ऋद्धिपादों को अच्छी तरह भावित कर लिया है, वहुलीकृत

कर लिया है। वे यदि चाहें तो कल्प-भर ठहर सकते हैं या कल्प के शेष भाग तक।"

"आनन्द! तुम मेरे इस कथन पर विश्वास करते हो न?"

"हां, भंते!"

"तो आनन्द! यह तुम्हारा ही दुष्कृत है, तुम्हारा ही अपराध है, तुम्हारा ही दोष है। तथागत के इतना स्पष्ट रूप से कहने पर भी तुम नहीं समझ सके। तुमने तथागत से नहीं याचना की - 'भंते! भगवान कल्प-भर ठहरें।' यदि, आनन्द, तुमने याचना की होती, तो तथागत दो ही वार तुम्हारी वात को अस्वीकृत करते, तीसरी वार स्वीकार कर लेते। इसलिए, आनन्द यह तुम्हारा ही दुष्कृत है, तुम्हारा ही अपराध है।

"आनन्द! मैंने अनेक अवसरों पर तुम्हारे सामने यह स्पष्ट रूप से कहा है कि जिस किसी ने चार ऋद्धिपादों को अच्छी तरह भावित कर लिया है, वहुलीकृत कर लिया है, वह यदि चाहे तो कल्प-भर ठहर सकता है या कल्प के शेष भाग तक। आनन्द! तथागत ने चार ऋद्धिपादों को अच्छी तरह भावित कर लिया है, वहुलीकृत कर लिया है। वे यदि चाहें तो कल्प-भर ठहर सकते हैं या कल्प के शेष भाग तक।

"मैंने ऐसा राजगह के गिज्झकूट (गृद्धकूट) पर्वत पर कहा ..... फिर राजगह के गोतमनिग्रोध विहार में कहा ....., चोरप्रपात, वेभारपर्वत, सत्तपण्णिगुफा, इसिगिलिपर्वत, काळसिला, सीतवन इत्यादि स्थानों पर कहा ..... कई वार वेसाली के विभिन्न चैत्यों में कहा ..... अभी आज मैंने तुमसे चापाल चैत्य में यही कहा है।

"आनन्द! यह तुम्हारा ही दुष्कृत है, तुम्हारा ही अपराध है, तुम्हारा ही दोष है। तथागत के इतना स्पष्ट रूप से कहने पर भी तुम नहीं समझ सके। तुमने तथागत से याचना नहीं की - 'भंते! भगवान कल्प-भर ठहरें।'

"आनन्द! सभी प्रियों से वियोग होना ध्रुव धर्म है। जो उत्पन्न है, निर्मित है, संस्कृत है, उसका नाश न हो, यह असंभव है। आज से तीन मास वाद तथागत का परिनिर्वाण होगा। आनन्द! जीवन जैसी तुच्छ वस्तु के लिए तथागत वमन किये को निगलेंगे नहीं, वचन से टलेंगे नहीं। यह असंभव है, आनन्द! यह असंभव है।"

तब भगवान आयुष्मान आनन्द के साथ महावन की कूटागारशाला में गये। वहां जाकर आनन्द को कहा - "आनन्द! वेसाली के आस-पास जितने भिक्षु विहार करते हैं, उन्हें उपस्थानशाला में एकत्र करो।"

"अच्छा, भंते!" कह आयुष्मान आनन्द ने सभी भिक्षुओं को उपस्थानशाला में एकत्र किया।

भगवान ने भिक्षुओं को संबोधित किया - "भिक्षुओ! मेरे द्वारा जो धर्म तुम्हें उपदेशित किये गये हैं, उन्हें अच्छी तरह सीख कर अभ्यास करो, भावित करो, बहुलीकृत करो जिससे यह ब्रह्मचर्य (धर्माराधना) चिरस्थायी हो, बहुजन के हित के लिए, बहुजन के सुख के लिए, लोगों पर अनुकंपा करने के लिए, देवताओं और मनुष्यों के लिए कल्याणकारी सिद्ध हो।

"भिक्षुओ! वे धर्म हैं -

- **चार स्मृतिप्रस्थान** (कायानुपश्यना, वेदनानुपश्यना, चित्तानुपश्यना, धर्मानुपश्यना)
- **चार सम्यक प्रधान** (संवर, प्रहाण, भावना, अनुरक्षण)
- **चार ऋद्धिपाद** (छंद, वीर्य, चित्त, मीमांसा)
- **पांच इंद्रियां** (श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि, प्रज्ञा)
- **पांच बल** (श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि, प्रज्ञा)
- **सात बोध्यंग** (स्मृति, धर्मविचय, वीर्य, प्रीति, प्रश्रब्धि, समाधि, उपेक्षा)
- **आर्य अष्टांगिक मार्ग** (सम्यकदृष्टि, सम्यकसंकल्प, सम्यकवाणी, सम्यककर्मांत, सम्यकआजीविका, सम्यकव्यायाम, सम्यकस्मृति, सम्यकसमाधि)

"भिक्षुओ! मेरे द्वारा ये धर्म तुम्हें उपदेशित किये गये हैं, इन्हें अच्छी तरह सीख कर अभ्यास करो, भावित करो, बहुलीकृत करो जिससे यह ब्रह्मचर्य (धर्माराधना) चिरस्थायी हो, बहुजन के हित के लिए, बहुजन के सुख के लिए, लोगों पर अनुकंपा करने के लिए, देवताओं और मनुष्यों के लिए कल्याणकारी सिद्ध हो।"

भगवान ने भिक्षुओं को आमंत्रित किया -

"हन्द दानि, भिक्खवे, आमन्तयामि वो,
वयधम्मा सङ्खारा; अप्पमादेन सम्पादेथ।"

[भिक्षुओ! आओ! मैं तुम्हें संबोधित करता हूं।

सारे संस्कार व्यय-धर्मा हैं। (जो कुछ संस्कृत, याने निर्मित होता है, वह नष्ट होता ही है।) प्रमाद-रहित हो, (इस सच्चाई का) संपादन करो (इसे स्वानुभूति पर उतारो)।]

"भिक्षुओ! मेरी आयु पक चुकी है। जीवन थोड़ा ही बचा है। तुम्हें छोड़कर जाऊंगा।

अप्रमादी, स्मृतिमान, सुशील हो, सुसमाहित संकल्पपूर्वक अपने चित्त की रक्षा करो।

इस धर्मविनय में जो अप्रमादी होकर विहार करेंगे, वही भव-संसरण का प्रहाण कर दुःखों का अंत कर सकेंगे।"

-दीघनिकाय (२.३.१७८-१८५), महापरिनिब्बानसुत्त

अंतिम वेसाली-दर्शन

तब भगवान ने सुआच्छादित हो, पात्र-चीवर ले, वेसाली में पिंडाचार किया। भोजनोपरांत नागावलोकन (हाथी की तरह सारे शरीर को घुमाकर देखना) से वेसाली को देखकर आयुष्मान आनन्द से कहा -

"आनन्द! यह तथागत के लिए अंतिम वेसाली-दर्शन होगा। आओ आनन्द! भण्डगाम (भण्डग्राम) चलें।"

"अच्छा, भंते!" कह कर आयुष्मान आनन्द ने भगवान को प्रत्युत्तर दिया।

वहां से आनन्द के साथ भगवान भण्डगाम पहुँचे।

भगवान ने भिक्षुओं को आमंत्रित किया -

"भिक्षुओ! चार आर्यधर्मों का अनुवोध और प्रतिवेध न होने से दीर्घ काल से लोक में (प्राणियों का) संसरण, आवागमन का चक्र चल रहा है, 'मेरा-तेरा' की भावना चल रही है।"

"कौन-से चार?

"भिक्षुओ! 'शील' आर्यधर्म का अनुवोध और प्रतिवेध न होने से दीर्घ काल से लोक में (प्राणियों का) संसरण, आवागमन का चक्र चल रहा है, 'मेरा-तेरा' की भावना चल रही है।

"भिक्षुओ! 'समाधि' आर्यधर्म का अनुवोध और प्रतिवेध न होने से दीर्घ काल से लोक में (प्राणियों का) संसरण, आवागमन का चक्र चल रहा है, 'मेरा-तेरा' की भावना चल रही है।

"भिक्षुओ! 'प्रज्ञा' आर्यधर्म का अनुवोध और प्रतिवेध न होने से दीर्घ काल से लोक में (प्राणियों का) संसरण, आवागमन का चक्र चल रहा है, 'मेरा-तेरा' की भावना चल रही है।

"भिक्षुओ! 'विमुक्ति' आर्यधर्म का अनुवोध और प्रतिवेध न होने से दीर्घ काल से लोक में (प्राणियों का) संसरण, आवागमन का चक्र चल रहा है, 'मेरा-तेरा' की भावना चल रही है।"

"चार धर्मों - शील, समाधि, प्रज्ञा, विमुक्ति - को भलीभांति जान लेने से भवतृष्णा समाप्त हो गयी है, भवनेत्री नष्ट हो गयी है, अव पुनर्जन्म नहीं होगा।"

भगवान ने यह कहा, यह कह सुगत ने गाथाओं के माध्यम से यह कहा -

"सीलं समाधि पञ्ञा च, विमुत्ति च अनुत्तरा।
अनुवुद्धा इमे धम्मा, गोतमेन यसस्सिना॥

["यशस्वी गोतम ने शील, समाधि, प्रज्ञा और विमुक्ति - इन चार धर्मों का प्रत्यक्ष अनुभव कर लिया है।]

****

"इति वुद्धो अभिञ्ञाय, धम्ममक्खासि भिक्खुनं।
दुक्खस्सन्तकरो सत्था, चक्खुमा परिनिब्बुतो"ति॥

["इन धर्मों को भलीभांति जानकर वुद्ध ने भिक्षुओं को इनका उपदेश किया है। अव वे (स्वयं तथा दूसरों के) दुःखों के नाशक, चक्षुमान शास्ता परिनिर्वृत्त होने जा रहे हैं।"]

-दीघनिकाय (२.३.१८६), महापरिनिब्बानसुत्त

धर्म की चार कसौटियां

तव भगवान ने भण्डगाम में यथेच्छ विहार करने के वाद, आनन्द से कहा - "चलो, आनन्द! अव हत्थिगाम, अम्वगाम, जम्वुगाम, भोगनगर चलें।"

"अच्छा, भंते!" कह आयुष्मान आनन्द ने भगवान को प्रत्युत्तर दिया।

विशाल भिक्षु-संघ के साथ भगवान भोगनगर पहुँचे। वहां भगवान भोगनगर में आनन्द चैत्य में विहार करने लगे। भगवान ने भिक्षुओं को आमंत्रित किया - "भिक्षुओ! चार महाप्रदेशों (धर्म की कसौटियों) का उपदेश करूंगा। उसे सुनो, अच्छी तरह मन में लाओ; मैं कहता हूं।"

'भंते! वहुत अच्छा' कह, भिक्षुओं ने भगवान को प्रतिवचन दिया। भगवान वोले -

१. कोई भिक्षु कहे ऐसा मैंने भगवान के मुख से सुना है,
२. कोई भिक्षु कहे ऐसा मैंने संघ के मुख से सुना है,
३. कोई भिक्षु कहे ऐसा मैंने धर्मधर भिक्षु के मुख से सुना है, और
४. कोई भिक्षु कहे ऐसा मैंने वहुश्रुत भिक्षु के मुख से सुना है।

तो तुम ऐसा करना -

..... **भगवान के मुख से सुना है;** भिक्षुओ! यदि कोई भिक्षु ऐसा कहे - आवुसो! मैंने इसे भगवान के मुख से सुना है, ग्रहण किया है। यह धर्म है, यह विनय है, यह शास्ता का उपदेश है। तो भिक्षुओ! उस दिन भिक्षु के कथन का न तो अभिनंदन करना, न निंदा। अभिनंदन न कर, निंदा न कर उन पद-व्यंजनों को अच्छी तरह सीखकर सूत्र से तुलना करना, विनय में

देखना। यदि सूत्र से तुलना करने, विनय में देखने पर उसके कथन न सूत्र में सही उतरते हों, न विनय में भी सही दिखायी देते हों, तो विश्वास करना कि अवश्य ही ये भगवान के वचन नहीं हैं। यह इस भिक्षु का दुर्गृहीत है। ऐसा होने पर भिक्षुओ! उसे अवश्य छोड़ देना। किंतु, यदि सूत्र से तुलना करने पर, विनय में देखने पर, उसके कथन सूत्र में सही उतरते हैं, विनय में भी सही दिखायी देते हों, तो विश्वास करना कि अवश्य ही ये सूत्र भगवान के वचन हैं। यह इस भिक्षु का सुगृहीत है। ऐसा होने पर भिक्षुओ! उसको अवश्य धारण करना। भिक्षुओ! इसे प्रथम महाप्रदेश (धर्म-कसौटी) समझना।

..... **संघ के मुख से सुना है;** फिर भिक्षुओ! यदि कोई भिक्षु ऐसा कहे - आवुसो! अमुक आवास में स्थविरयुक्त, प्रमुखयुक्त संघ विहार करता है। मैंने उस संघ के मुख से सुना है, मुख से ग्रहण किया है - यह धर्म है, यह विनय है, यह शास्ता का शासन है ..... तो विश्वास करना अवश्य ही ये उन भगवान के वचन हैं। इस भिक्षु का यह सुगृहीत है। ऐसा होने पर भिक्षुओ! उसको अवश्य धारण करना। इसे द्वितीय महाप्रदेश समझना।

..... **धर्मधर भिक्षु के मुख से सुना है;** फिर भिक्षुओ! कोई भिक्षु ऐसा कहे - आवुसो! अमुक आवास में वहुत से वहुश्रुत, धर्मधर, विनयधर, मातिकाधर स्थविर भिक्षु विहार करते हैं। मैंने उन स्थविरों के मुख से सुना है, मुख से ग्रहण किया है। यह धर्म है, यह विनय है, यह शास्ता का शासन है ..... तो विश्वास करना कि अवश्य ही ये उन भगवान के वचन हैं। इस भिक्षु का यह सुगृहीत है। ऐसा होने पर भिक्षुओ! उसको अवश्य धारण करना। भिक्षुओ! इसे तृतीय महाप्रदेश समझना।

..... **वहुश्रुत भिक्षु के मुख से सुना है;** और फिर भिक्षुओ! यदि कोई भिक्षु ऐसा कहे - आवुसो! अमुक आवास में एक वहुश्रुत स्थविर भिक्षु विहार करता है। मैंने उस स्थविर के मुख से सुना है, ग्रहण किया है ..... तो विश्वास करना अवश्य ही ये उन भगवान के वचन हैं। यह इस भिक्षु का सुगृहीत है। ऐसा होने पर भिक्षुओ! उसको अवश्य धारण करना। इसे चतुर्थ महाप्रदेश (धर्म-कसौटी) समझना।

"भिक्षुओ! ये हैं चार महाप्रदेश (धर्म की कसौटियां), इन्हें ग्रहण करो"।

भोगनगर के आनन्द चैत्य में भगवान ने वहुत से भिक्षुओं को शील, समाधि और प्रज्ञा की धर्मकथाओं से समुत्तेजित किया।

-दीघनिकाय (२.३.१८७-१८८), महापरिनिव्बानसुत्त

अंतिम भोजन

तव भगवान भोगनगर में यथेच्छ विहार करने के वाद आनन्द से वोले - "चलो, आनन्द! अव पावा चलें।"

"अच्छा, भंते!" कह आयुष्मान आनन्द ने भगवान को प्रत्युत्तर दिया।

विशाल भिक्षु-संघ के साथ भगवान पावा पहुँचे। भगवान पावा में कर्मारपुत्र चुन्द के आम्रवन में विहार करने लगे। जव चुन्द कर्मारपुत्र ने सुना कि भगवान पावा में पधारे हैं और मेरे आम्रवन में विहार कर रहे हैं तव चुन्द भगवान के पास जाकर उनका अभिवादन कर एक ओर वैठ गया। कर्मारपुत्र को भगवान ने धार्मिक कथा सुना कर समुत्तेजित किया। चुन्द ने भगवान से निवेदन किया - "भंते! भगवान भिक्षु-संघ के साथ मेरे यहां कल का भोजन स्वीकार करें।" मौन रह कर भगवान ने स्वीकृति दी।

तव चुन्द कर्मारपुत्र ने दूसरे दिन उत्तम भोज्य पदार्थ और वहुत-सा शूकरमर्दव तैयार करवा कर भगवान को सूचना दी। भगवान पूर्वाह्न समय सुआच्छादित हो, पात्र-चीवर ले, भिक्षु-संघ के साथ कर्मारपुत्र के घर गये। जाकर विछे आसन पर विराजे। भगवान ने चुन्द से कहा - "चुन्द! केवल मुझे ही शूकरमर्दव परोसना। वाकी का भोजन भिक्षु-संघ को परोसना। चुन्द कर्मारपुत्र ने शूकरमर्दव भगवान को परोसा तथा वाकी का भोजन संघ को दिया। भगवान ने चुन्द को कहा - "वचे हुए शूकरमार्दव को किसी गड्ढे या जलाशय में गाड़ दो। मैं नहीं समझता कि तथागत के सिवा इस लोक में कोई देवता, मार, व्रह्मा सहित जनसमूह में कोई इसे खाकर पचा सके।" चुन्द ने वैसा ही किया। भोजन करने के वाद भगवान एक ओर वैठे चुन्द कर्मारपुत्र को धार्मिक कथा से समुत्तेजित कर आसन से उठ कर चल दिये। यह तथागत का अंतिम भोजन था।

चुन्द कर्मार का भोजन करने के वाद भगवान को खून गिरने की कड़ी वीमारी हुई। उन्हें सख्त मरणांतक वेदनाएं होने लगीं। उस पीड़ा को भगवान

ने स्मृति और संप्रज्ञान के साथ सहन किया। तव भगवान ने आयुष्मान आनन्द को संवोधित किया -

"आओ, आनन्द! कुसीनारा चलें।"

"अच्छा, भंते!" कह आयुष्मान आनन्द ने भगवान को प्रत्युत्तर दिया।

-दीघनिकाय (२.३.१८९-१९०), महापरिनिब्बानसुत्त

मैला जल निर्मल भया

थोड़ी दूर पहुँचने पर रास्ते से हट कर भगवान एक वृक्ष के नीचे गये। आयुष्मान आनन्द से कहा, "आनन्द! मेरे लिए चौपेती संघाटी विछा दो। मैं थक गया हूं, वैठूंगा।"

"अच्छा, भंते!" कह कर आयुष्मान आनन्द ने चौपेती संघाटी विछा दी। भगवान विछे आसन पर वैठ गये और विश्राम करने लगे।

भगवान ने आयुष्मान आनन्द से कहा - "आनन्द! मेरे लिए जल लाओ। प्यासा हूं, आनन्द! जल पीऊंगा।"

आयुष्मान आनन्द वोले - "भंते! अभी-अभी पांच सौ गाड़ियां इस नदी से गुजरी हैं। नदी वहुत छोटी है, चक्कों के घूमने से पानी मैला होकर वह रहा है। आगे थोड़ी दूर सुंदर, शीतल, स्वच्छ जलवाली सुप्रतिष्ठित ककुधा नदी है। वहां चलकर भगवान स्वच्छ पानी पियें और शरीर को भी ठंडा करें।"

दूसरी वार, फिर तीसरी वार भी भगवान ने पानी लाने के लिए कहा - "आनन्द! मेरे लिए जल लाओ। प्यासा हूं, आनन्द! जल पीऊंगा।"

"अच्छा, भंते!" कह आयुष्मान आनन्द पात्र लेकर नदी के तीर पर पहुँचे। उन्होंने देखा, चक्के से मथे हुए मैले जल वाली नदी स्वच्छ निर्मल जल के साथ वहने लगी है। आयुष्मान आनन्द को यों विचार उत्पन्न हुआ - "आश्चर्य है! भगवान की महाऋद्धि का, महानुभावता का, महाप्रताप का। अद्भुत है! चक्कों से मथे जल वाली यह नदिका (छोटी नदी) मेरे आने पर स्वच्छ निर्मल जल के साथ वह रही है।"

आयुष्मान आनन्द पात्र में पानी भर कर भगवान के पास ले आये, वोले - "आश्चर्य है, भंते! आप की महान ऋद्धि के कारण इस छोटी नदी का गंदा हुआ जल इतनी जल्दी ही स्वच्छ होकर वहने लगा। सुगत जल पियें।"

तव भगवान ने वह जल ग्रहण किया।

-दीघनिकाय (२.३.१९१), महापरिनिब्बानसुत्त

पुक्कुस मल्लपुत्त

उसी समय आलार कालाम का शिष्य पुक्कुस मल्लपुत्त वहां आ गया। भगवान का अभिवादन कर एक ओर वैठ गया। भगवान के साथ ध्यान की एकाग्रता और शांति पर उसकी वातें हुईं। वह वड़ा ही प्रभावित हुआ। भगवान का शरणागत उपासक वन गया। दो सुनहले वर्ण के दुशाले शास्ता को भेंट करते हुए उन्हें स्वीकार करने की प्रार्थना की।

भगवान वोले - "पुक्कुस! इनमें से एक मुझे ओढ़ा दो और दूसरा आनन्द को।" भगवान की वंदना और प्रदक्षिणा करके वह चला गया।

पुक्कुस मल्लपुत्र के चले जाने पर आयुष्मान आनन्द ने अपना दुशाला भी भगवान को ओढ़ा दिया। भगवान के शरीर की शोभा दुशाला से कहीं ज्यादा सुंदर प्रतीत हो रही थी। आयुष्मान आनन्द ने भगवान से कहा - "आश्चर्य है, भंते! अद्भुत भंते! कितना परिशुद्ध तथागत के शरीर का वर्ण है!! भंते! यह दुशाला भगवान के शरीर पर किरण-सा जान पड़ता है।"

"ऐसा ही है आनन्द! ऐसा ही है आनन्द! दो अवसरों पर आनन्द! तथागत के शरीर का वर्ण अत्यंत परिशुद्ध जान पड़ता है - जिस समय तथागत अनुत्तर सम्यक-संवोधि का साक्षात्कार करते हैं और जिस रात तथागत अनुपादिशेष निर्वाण को प्राप्त होते हैं। आनन्द! आज रात के पिछले पहर कुसीनारा के उपवत्तन नामक मल्लों के सालवन में दो शालवृक्षों के वीच तथागत का परिनिर्वाण होगा।

"आओ, आनन्द! ककुधा नदी चलें।"

"अच्छा, भंते!" कह आयुष्मान आनन्द ने भगवान को प्रत्युत्तर दिया।

-दीघनिकाय (२.३.१९२-१९६), महापरिनिब्बानसुत्त

चुन्द कर्मारपुत्र को सांत्वना

भगवान को चुन्द के भोजन की याद आयी, जिसे ग्रहण कर लेने पर उन्हें अतिसार हो गया था। उन्हें लग रहा था कि तथागत के परिनिर्वाण का कारण लोग चुन्द के भोजन को ही समझेंगे। इसलिए आयुष्मान आनन्द से कहा - "आनन्द! हो सकता है लोग चुन्द के सिर दोष मढ़ें। कहें उसका भोजन करके तथागत व्याधिग्रस्त हो गये। उन्हें खून गिरा। पुराना रोग उभर आया। पर, तुम कर्मारपुत्र को इस चिंता से मुक्त करना। उससे कहना, चुन्द! तुम्हें लाभ हुआ, सुलाभ हुआ। तूने यह बड़ा सुलाभ कमाया क्योंकि तेरा भिक्षादान तथागत का अंतिम भोजन हुआ, जिसे ग्रहण कर वे परिनिर्वृत्त हुए। आनन्द! उससे कहना कि मैंने भगवान के मुख से सुना है कि तथागत को दिये गये दो अवसरों पर भोजन महाफलदायी होते हैं।

"आनन्द! किन दो अवसरों के?

"एक वह, जिसे ग्रहण कर तथागत अनुत्तर सम्यक-संबोधि को प्राप्त होते हैं और दूसरा वह, जिसे ग्रहण कर अनुपादिशेष निर्वाण-धातु को प्राप्त हो परिनिर्वृत्त होते हैं। चुन्द के भोजन से उसे आयु, वर्ण, सुख, यश, स्वर्ग का आधिपत्य प्राप्त हुआ। आनन्द! तुम चुन्द कर्मारपुत्र की चिंता इस प्रकार दूर करना।"

-दीघनिकाय (२.३.१९७), महापरिनिब्बानसुत्त

पुण्य दान से बढ़े, शत्रुता संयम से घट जाय।
राग-द्वेष अरु मोह नाश से, सहज मुक्ति मिल जाय॥

भगवान के जीवन का अंतिम समय

भगवान ने आयुष्मान आनन्द से कहा - "आओ आनन्द! हिरण्यवती नदी के उस पार कुसीनारा के उपवत्तन नामक मल्लों के सालवन में चलें।"

"अच्छा, भंते!" कह आयुष्मान आनन्द ने भगवान को प्रत्युत्तर दिया।

विशाल भिक्षु-संघ के साथ भगवान हिरण्यवती नदी के पार मल्लों के शालवन पहुँचे। पहुँचकर आयुष्मान आनन्द से बोले - "आनन्द! इन जुड़वां शालवृक्षों के बीच में उत्तर की ओर सिरहाना कर शयन हेतु मंच बना दो।

थका हूं, आनन्द! लेटूंगा।" आनन्द ने वैसा ही किया। भगवान दाहिनी करवट सिंहशय्या से लेट गये।

उस समय दोनों शालवृक्ष असमय ही पुष्पों से लद गये। तथागत की पूजा के लिए वे पुष्प तथागत के शरीर पर गिरने लगे। आकाश से मंदारपुष्पों की वर्षा होने लगी। दिव्य चंदनचूर्ण भगवान के शरीर पर गिरने लगा। आकाश में दिव्य वाद्य बजने लगे। दिव्य संगीत से वहां का सारा वायुमंडल गूंजने लगा।

तब भगवान ने आयुष्मान आनन्द को संबोधित किया - "आनन्द! यह जो पुष्प-वर्षा हो रही है, वाद्य और संगीत बज रहे हैं, इनसे तथागत का मान-सम्मान, आदर-सत्कार, पूजन-अर्चन नहीं होता। आनन्द! जो भिक्षु या भिक्षुणी, उपासक या उपासिका धर्म के मार्ग पर आरूढ़ हो विहार करती है, सम्यक मार्ग पर आरूढ़ हो विहार करती है; धर्मानुकूल आचरण करती है, यही असली पूजा है और इसी परम पूजा से तथागत सत्कृत, गुरुकृत, मानित, पूजित तथा आदृत होते हैं।

एवं हि वो आनन्द! सिक्खितब्बन्ति।
- आनन्द! तुम्हें ऐसा ही सीखना चाहिए।"

-दीघनिकाय (२.३.१९८-१९९), महापरिनिब्बानसुत्त

आयुष्मान उपवाण तथा देवताओं का रुदन-क्रंदन

उस समय आयुष्मान उपवाण भगवान को पंखा झलते हुए उनके सामने खड़े थे। तब भगवान ने उन्हें वहां से हटा दिया, "हट जाओ भिक्षु! मत मेरे सामने खड़े हो।"

इस पर आयुष्मान आनन्द के मन में विचार आया, "आयुष्मान उपवाण तो दीर्घकाल तक शास्ता की सेवा करते रहे हैं। पर अंतिम समय में भगवान ने अपने समीप से उन्हें हटने के लिए कहा। आखिर इसका क्या कारण हो सकता है?"

ऐसा सोचकर आयुष्मान आनन्द ने भगवान से कहा, "भंते! आयुष्मान उपवाण बहुत समय तक भगवान की सेवा में रहे हैं। उन्हें हटाने का क्या हेतु है?"

"आनन्द! दस लोक धातुओं के बहुत से देवता तथागत के दर्शनार्थ एकत्र हुए हैं। आनन्द! उपवत्तन मल्लों के शालवन के चारों ओर दूर-दूर बारह योजन तक देवों की ऐसी भीड़ इकट्ठी है कि बाल के नोक गड़ाने-भर के लिए भी स्थान रिक्त नहीं है, जहां कि कोई महाप्रतापी देवता न हो। आनन्द! ये महाप्रतापी देव परेशान हो रहे हैं। सोचते हैं 'हम तथागत के दर्शनार्थ दूर-दूर से आये हैं। अर्हत सम्यक-संबुद्ध कभी-कभी लोक में उत्पन्न होते हैं। आज रात के अंतिम प्रहर में तथागत का परिनिर्वाण होगा। यह महाप्रतापी भिक्षु भगवान को ढँके हुए उनके सामने खड़ा है। अंतिम समय में हमें तथागत के दर्शन प्राप्त नहीं हो रहे हैं।'"

आनन्द ने भगवान से पूछा - "भगवान देवताओं के बारे में कैसे देख रहे हैं?"

"आनन्द! देवता आकाश को पृथ्वी समझ कर बाल बिखेर कर रो रहे हैं। हाथ पकड़कर चिल्ला रहे हैं। कटे वृक्ष की भांति भूमि पर गिर रहे हैं। लोट-पोट होते हुए कह रहे हैं, 'बहुत जल्दी भगवान निर्वाण को प्राप्त हो रहे हैं। बहुत शीघ्र सुगत लोक से अंतर्धान हो रहे हैं।' पर, जो वीतराग हैं, वे स्मृति और संप्रज्ञान के साथ समझ रहे हैं - सभी कृत वस्तुएं अनित्य ही हैं। उनकी निरंतर प्राप्ति असंभव है।"

-दीघनिकाय (२.३.२००-२०१), महापरिनिब्बानसुत्त

चार दर्शनीय स्थल

"भंते! पहले भिक्षु सभी दिशाओं से वर्षावास बाद भगवान के दर्शनार्थ आते थे। उन मनोभावनीय भिक्षुओं का दर्शन, सत्संग हमें मिलता था। किंतु भंते! भगवान के बाद हमें मनोभावनीय भिक्षुओं का दर्शन, सत्संग नहीं मिलेगा।"

"आनन्द! श्रद्धालु कुलपुत्र के लिए ये चार स्थान दर्शनीय और वैराग्यप्रद हैं।

(लुम्बिनी) यहां तथागत उत्पन्न हुए,

(बोधगया) यहां तथागत ने अनुत्तर सम्यक-संबोधि प्राप्त की,

(सारनाथ) यहां तथागत ने धर्मचक्रप्रवर्तन किया, और

(कुसीनारा) यहां तथागत अनुपादिशेष परिनिर्वाण को प्राप्त हुए।

"आनन्द! श्रद्धालु कुलपुत्र के लिए ये चार स्थान दर्शनीय और वैराग्यप्रद हैं।

"आनन्द! श्रद्धालु भिक्षु, भिक्षुणियां, उपासक, उपासिकाएं भविष्य में यहां आयेंगे - यहां तथागत उत्पन्न हुए, यहां सम्यक-संबोधि प्राप्त की, यहां धर्मचक्रप्रवर्तन किया, यहां परिनिर्वाण को प्राप्त हुए।

"ये हि केचि, आनन्द, चेतियचारिकं आहिण्डन्ता पसन्नचित्ता कालङ्करिस्सन्ति, सब्बे ते कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जिस्सन्ती"ति।

"आनन्द! जो कोई भी प्रसन्नचित्त होकर इन चैत्यों की चारिका करते हुए घूमेंगे, वे सब इस काया के छूटने (देहपात) पर सुगति को प्राप्त स्वर्ग लोक में उत्पन्न होंगे।"

-दीघनिकाय (२.३.२०२), महापरिनिब्बानसुत्त

स्त्रियों के साथ व्यवहार

आयुष्मान आनन्द ने भगवान से पूछा - "भंते! स्त्रियों के साथ हम भिक्षु कैसा व्यवहार करेंगे?"

"आनन्द! अदर्शन (देखना नहीं)।"

"भंते! दर्शन हो जाने पर कैसा व्यवहार करेंगे?"

"आनन्द! उनसे वात न करना।"

"यदि वात करनी पड़ जाय तो?"

"आनन्द! स्मृति को वनाये रखना चाहिए।"

-दीघनिकाय (२.३.२०३), महापरिनिव्वानसुत्त

तथागत के शरीर का संस्कार कैसे हो

"भंते! भगवान हम आपके निष्प्राण हुए भौतिक शरीर का किस प्रकार सम्मान करेंगे?"

"आनन्द! तुम तथागत की शरीर-पूजा की वात में मत उलझो। आनन्द! तुम सव सार में लग जाना। अप्रमादी और आत्मसंयमी होकर सार के लिए तप करना। श्रद्धालु गृहस्थ इस पार्थिव शरीर का मान-सम्मान, पूजन-अर्चन उसी प्रकार करेंगे जिस प्रकार किसी चक्रवर्ती सम्राट अथवा किसी पच्चेकवुद्ध अथवा किसी क्षीणास्रव अर्हत के निष्प्राण शरीर का किया जाना चाहिए।"

आगे भगवान ने समझाया कि श्रद्धालु लोग उनके मृत शरीर को एक नये वस्त्र में लपेट कर, उस पर नयी धुनी हुई रूई चढ़ा कर और पुनः नये कपड़े से ढँक कर तेल-भरी द्रोणी में रखेंगे और चिता पर इसका दाह-संस्कार करेंगे। दाह-क्रिया के पश्चात जो देहधातु वचेगी उस पर शासक लोग नगर के चौराहों पर स्तूप वनायेंगे। वहां श्रद्धालु गृहस्थ भक्तिभावपूर्वक पूजन-अर्चन करेंगे और पुण्यलाभी होंगे; अपने चित्त को प्रसन्नता से भर कर अपना लोक-परलोक सुधारेंगे।

-दीघनिकाय (२.३.२०४-२०५), महापरिनिव्वानसुत्त

चार प्रकार के स्तूप

"आनन्द! दाह-क्रिया के वाद ये चार स्तूप वनाये जाने योग्य हैं - तथागत सम्यक-संवुद्ध, पच्चेकवुद्ध, तथागत का श्रावक, चक्रवर्ती राजा का।

"क्यों आनन्द! तथागत सम्यक-संवुद्ध स्तूपार्ह हैं? ..... 'यह उन भगवान का स्तूप है' ऐसा सोच कर दर्शनार्थियों का चित्त हर्षित होगा, प्रसन्न होगा। ऐसी स्थिति में उन्हें मरणोपरांत सुगति प्राप्त होगी, वे स्वर्गलोक में उत्पन्न होंगे। इस उद्देश्य से आनन्द! स्तूपार्ह हैं। ..... आनन्द! चक्रवर्ती राजा किसलिए स्तूपार्ह है? 'यह धार्मिक राजा का स्तूप है' ऐसा सोच आनन्द! वहुत से लोगों के चित्त हर्षित और प्रसन्न होंगे।"

-दीघनिकाय (२.३.२०६), महापरिनिव्वानसुत्त

आनन्द के अद्भुत गुण

पिछले पच्चीस वर्षों से भगवान की सेवा में रमे रहने के कारण आयुष्मान आनन्द को साधना के लिए समय नहीं मिल पाता था। फलस्वरूप वह शैक्ष्य ही रह गये। अर्हत्व अवस्था को प्राप्त नहीं हो सके। जव भगवान के परिनिर्वाण का समय विल्कुल निकट आ गया, वह क्षण आयुष्मान आनन्द के लिए अत्यंत शोकाकुल रहने का सिद्ध हुआ। वह विहार में जाकर खूंटी को पकड़ कर विलख रहे थे – "मैं शैक्ष्य ही रह गया, सोतापन्न ही रह गया, अर्हत नहीं हो सका। मेरे अनुकंपक शास्ता का परिनिर्वाण हो रहा है, अव मेरे लिए कोई सहारा नहीं रहा।"

भगवान ने भिक्षुओं से पूछा – "भिक्षुओ! आनन्द कहां हैं?"

"भंते! आयुष्मान आनन्द विहार में खड़े-खड़े रो रहे हैं।"

"जा, भिक्षु, मेरे वचन से तू आनन्द से कह - 'आयुष्मान आनन्द! शास्ता तुम्हें वुला रहे हैं।'"

"अच्छा, भंते!" वह भिक्षु आयुष्मान आनन्द को वुला लाया।

आयुष्मान आनन्द भगवान के पास आकर अभिवादन कर एक ओर वैठ गये। आयुष्मान आनन्द से भगवान ने यह कहा - "आनन्द! मत शोक करो, विलाप मत करो। मैंने तो पहले ही कह दिया था – 'सभी प्रियों से वियोग होना निश्चित है। उनका निरंतर संयोग कहां से मिलने वाला है! जो कुछ भी उत्पन्न है, कृत है, संस्कृत है, वह एक-न-एक दिन नष्ट होगा ही। तथागत का शरीर नष्ट न हो, यह संभव नहीं।'

"आनन्द! तूने दत्तचित्त होकर, चिरकाल तक अकेले, अपरिमित हितसुख के लिए मैत्रीपूर्ण कायिककर्म द्वारा, मैत्रीपूर्ण वाचिककर्म द्वारा, मैत्रीपूर्ण मनोकर्म द्वारा तथागत की सेवा की है। आनन्द! तू कृतपुण्य है। निर्वाण-साधन में लग कर शीघ्र ही अनास्रव हो जा।"

फिर भिक्षुओं को संबोधित करते हुए भगवान ने कहा - "भिक्षुओ! जो भी तथागत, अर्हत, सम्यक-संबुद्ध अतीत काल में हुए उन भगवानों के उपस्थाक इतने ही उत्तम थे, जितने कि मेरे उपस्थाक आनन्द।

"भिक्षुओ! जो तथागत, अर्हत, सम्यक-संबुद्ध भविष्य काल में होंगे, उन भगवानों के उपस्थाक भी इतने ही उत्तम होंगे जितने कि मेरे उपस्थाक आनन्द।

"भिक्षुओ! आनन्द पंडित है। भिक्षुओ! आनन्द मेधावी है। वह जानता है कि यह समय तथागत के दर्शनार्थ भिक्षुओं के आने का है, यह समय भिक्षुणियों के आने का है। यह समय तथागत के दर्शनार्थ उपासकों के आने का है, यह समय उपासिकाओं के आने का है। यह समय महाराज का है, यह अमात्य का है, यह तैर्थिकों का है, यह तैर्थिक श्रावकों का है।

"भिक्षुओ! आनन्द में ये चार आश्चर्यजनक अद्भुत धर्म हैं।

"भिक्षुओ! यदि भिक्षुपरिषद आनन्द के दर्शन हेतु आती है तो उसके दर्शन कर भावविभोर हो जाती है। यदि आनन्द धर्म पर भाषण करता है तो भिक्षुपरिषद उसे सुन कर भावविभोर हो जाती है। हां, वह भिक्षुपरिषद तब अतृप्त रह जाती है, जब भाषण करने के बाद वह चुप हो जाता है।

"भिक्षुओ! यदि भिक्षुणीपरिषद आनन्द के दर्शन हेतु आती है तो उसके दर्शन कर भावविभोर हो जाती है। यदि आनन्द धर्म पर भाषण करता है तो भिक्षुणीपरिषद उसे सुन कर भावविभोर हो जाती है। हां, वह भिक्षुणीपरिषद तब अतृप्त रह जाती है, जब भाषण करने के बाद वह चुप हो जाता है।

"भिक्षुओ! यदि उपासकपरिषद आनन्द के दर्शन हेतु आती है तो उसके दर्शन कर भावविभोर हो जाती है। यदि आनन्द धर्म पर भाषण करता है तो उपासकपरिषद उसे सुन कर भावविभोर हो जाती है। हां, वह उपासकपरिषद तब अतृप्त रह जाती है जब भाषण करने के बाद वह चुप हो जाता है।

"भिक्षुओ! यदि उपासिकापरिषद आनन्द के दर्शन हेतु आती है तो उसके दर्शन कर भावविभोर हो जाती है। यदि आनन्द धर्म पर भाषण करता है तो उपासिकापरिषद उसे सुन कर भावविभोर हो जाती है। हां, वह उपासिकापरिषद तब अतृप्त रह जाती है, जब भाषण करने के बाद वह चुप हो जाता है।

"भिक्षुओ! आनन्द में ये चार आश्चर्यजनक अद्भुत धर्म हैं।"

-दीघनिकाय (२.३.२०७-२०९), महापरिनिब्बानसुत्त

महासुदस्सन कथा

आयुष्मान आनन्द ने भगवान से कहा - "भंते! इस छोटे से जंगली कस्बे में भगवान परिनिर्वाण को प्राप्त न हों। भंते! भगवान - चम्पा, राजगह, सावत्थी, साकेत, कोसम्बी, वाराणसी जैसे महानगर में परिनिर्वाण को प्राप्त हों। वहां बहुत से महाधनी क्षत्रिय, महाधनी ब्राह्मण, महाधनी गृहपति जो कि भगवान के भक्त हैं वे तथागत के शरीर की पूजा करेंगे।"

"आनन्द! ऐसा न कहो, ऐसा न कहो आनन्द! इस स्थान को छोटा न समझो। इसका अतीत बहुत ही समृद्ध, महान और गौरवशाली रहा है।

"आनन्द! पूर्वकाल में महासुदस्सन नामक एक महान क्षत्रिय सम्राट इस क्षेत्र का शासक था। आज के कुसीनारा को तब कुसावती नाम से पुकारते थे। कुसावती उस राजा की राजधानी थी। अति विस्तृत, समृद्ध और उन्नतिशील। सभ्य एवं सुसंस्कृत नागरिकों की आबादी से गुल्जार। हाथी, घोड़े, रथ, शंख, घंट, घड़ियाल की ध्वनि तथा 'खाओ, पिओ' इत्यादि शब्दों से कुसावती का वातावरण हरक्षण गुंजायमान रहता था। आनन्द! सोने, चांदी, मणि, रत्न आदि से संपन्न कुसावती देवताओं की नगरी अलकनन्दा जैसी थी।

"आनन्द! चारों दिशाओं पर विजयप्राप्त चक्रवर्ती राजा महासुदस्सन के पास सात रत्न और चार सिद्धियां थीं। उसके रत्न थे - चक्र, हस्ति, अश्व, मणि, स्त्री (उसकी भार्या), गृहपति, परामर्शदाता। सम्राट के ये सातों रत्न एक दूसरे से चढ़-बढ़ कर थे। पर, इन सात रत्नों में सर्वोपरि थी उसकी भार्या, देवी सुभद्दा। यथानाम तथागुण! अभिरूप, दर्शनीय, परम सुंदरी,

स्वभाव की मृदु तथा चित्त को प्रसन्न करने वाली। उसके शरीर से सुगंध निकलती थी। वह महाराज से पहले भोर में जग जाती और उनके सोने के वाद सोती। राजा की परम प्रिय और उनके मनोनुकूल आचरण करने वाली। राजा को वह मन से भी नहीं छोड़ सकती थी। महाराज के प्रति पूर्ण निष्ठायुक्त और परम हितैषी। ऐसे ही शेष छः रत्न राजा के लिए प्रिय, मनोनुकूल और अवसर के अनुसार उपयोगी थे। ये सातों रत्न महाराज की शोभा और शक्ति थे।

"आनन्द! ऐसी ही थीं उसकी चार ऋद्धियां। उसके नाम के अनुरूप उसका प्रियदर्शी रूप, उसकी निरोगिता, उसकी दीर्घायु एवं प्रिय ब्राह्मण-गृहस्थों की परिषद। राजा को अपनी प्रजा से किसी प्रकार का डर-भय नहीं। राजा-प्रजा दोनों ही एक दूसरे के लिए सुखद और रक्षक थे। ब्राह्मण और गृहस्थों की सुख-शांति के लिए राजा प्रयत्नशील रहता और राजा की सेवा और रक्षा के लिए ब्राह्मण और गृहस्थ। इस प्रकार धर्मपूर्वक राज्य करता हुआ सम्राट महासुदस्सन देवताओं और उनके राजा शक्र के लिए भी प्रिय हो गया।

"आनन्द! राजा की प्रजावत्सलता देख कर देवराज शक्र वड़ा ही प्रसन्न हुआ। उसने देवपुत्र विश्वकर्मा को राजा के पास भेजा। विश्वकर्मा ने उसके लिए एक 'धर्मप्रासाद' का निर्माण किया - एक विशाल भवन, अति सुंदर शक्र के महल जैसा। उसमें जगह-जगह सोना, चांदी और रत्न जड़े थे। जैसा सुंदर कुसावती नगर, वैसा ही सुंदर और मनमोहक धर्मप्रासाद। उसकी चमक पर किसी की दृष्टि नहीं ठहरती। उस प्रासाद के सामने राजा ने एक विशाल 'धर्मपुष्करिणी' वनवायी। उस समय के श्रमणों और ब्राह्मणों को अच्छी तरह दान-दक्षिणा देकर तव राजा ने उस भवन में प्रवेश किया।

"आनन्द! सम्राट महासुदस्सन के वैभव और ऐश्वर्य की कोई सीमा नहीं थी। उसके राज्य में राजधानी कुसावती जैसे अनेक नगर थे और उनमें धर्मप्रासाद जैसे अनेक प्रासाद भी। सभी महल अच्छी तरह सुसज्जित और अलंकृत थे। पर, अपार धन-धान्य, चतुरंगिणी सेना से युक्त विशाल साम्राज्य और सुभद्दा देवी जैसी रूपवती रानी के होते हुए भी महासुदस्सन के मन में यह विचार आया - "यह सारी धन-दौलत, पौरुष-प्रताप, यश-कीर्ति मेरे किन सत्कर्मों का फल है? निश्चय ही, यह मेरे संयम-नियम,

दान-दक्षिणा और क्षमा-दया का परिणाम है।" राजा ने अपने भोगों पर विचार किया - "वस, अव मुझे अपने भोगों पर संयम करना है। राग-द्वेष, काम-क्रोध, लोभ-मोह पर नियंत्रण करना है।" भोग में अनेक बुराइयां देख कर महासुदस्सन ने उनसे विरत होने का दृढ़ निश्चय किया। राजप्रासाद का त्याग कर वे धर्मप्रासाद में चले गये। वहां एकांत में वैठते ही उनके पूर्वजन्मों के संस्कारों के फलस्वरूप उनका चित्त समाहित होने लगा। शीघ्र ही वह वितर्क-विचार सहित विवेकजन्य प्रीति-सुख वाले प्रथम ध्यान को प्राप्त हो गये। फिर क्रमशः द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ ध्यान का अवगाहन करते हुए मैत्रीयुक्त चित्त को प्राप्त हो विहरने लगे। ध्यान की गहराइयों में प्रवेश करने पर उनका चित्त मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा से व्याप्त होने लगा। इस प्रकार महाराज ब्रह्मविहार में विचरने लगे।

"आनन्द! वहुत दिनों से महारानी सुभद्दा को महाराज के दर्शन प्राप्त नहीं हुए। उसने राजा के दर्शनार्थ राजप्रासाद से धर्मप्रासाद जाने का सोचा। अच्छी तरह स्नानादि कर स्वच्छ तन और मन से अपनी सहेलियों और सेविकाओं सहित रानी ने राजा के दर्शनार्थ प्रस्थान किया। साथ में विशिष्ट जन और चतुरंगिणी सेना भी थी। प्रासाद के द्वार पर शोर सुनकर राजा वहां आये। उन्होंने देवी सुभद्दा को द्वार पर खड़ा पाया। आनन्द! तव राजा ने किसी भृत्य को वुलाकर कूटागार से सोने का पलंग लाकर विछाने को कहा। तदुपरांत महाराज महासुदस्सन स्मृति और संप्रज्ञान के साथ सिंहशय्या में पलंग पर लेट गया।

"तव, आनन्द! राजा को इस मुद्रा में लेटे देखकर महारानी सुभद्दा के मन में यह विचार उठा - 'महाराज की सभी इंद्रियां प्रसन्न हैं तथा इनके शरीर की आभा परिशुद्ध दिखायी दे रही है। कहीं महाराज शरीर त्यागने वाले तो नहीं!' देवी सुभद्दा ने महाराज से प्रार्थना की - "देव! ऐसे राज्य, प्रजा, नगर, राजधानी, वैभव, धर्मप्रासाद इत्यादि से प्रसन्न और संतुष्ट हों। महाराज! जीवित रहने की कामना करें।"

महाराज महासुदस्सन ने महारानी से कहा - "देवी! वहुत समय तक मेरे साथ प्रिय, सुखद, स्नेहयुक्त और सदा प्रसन्न रखने वाला व्यवहार किया। अव अंतिम समय में ऐसा कुछ न कहें जिससे मैं कामनायुक्त होकर

शरीरत्याग करूं। कामनायुक्त मृत्यु निंदनीय होती है। अव देवी! आप ऐसा व्यवहार करें जिससे मैं कामनामुक्त और निर्लिप्त होकर शरीर छोड़ सकूं।"

ऐसा सुनकर महारानी रो पड़ी। फिर आंसू पोंछ कर वोली - "हे देव! सभी प्रियों से निर्लिप्त, अनासक्त, निःसंग हो तथा जीवित रहने की कामना का भी मन से त्याग कर दें। देव! आप कामनायुक्त होकर प्राण न त्यागें।"

"आनन्द! तव कुछ ही देर वाद राजा की मृत्यु हो गयी। शरीरत्याग के समय उसे थोड़ी-सी पीड़ा हुई। मृत्यु के उपरांत सद्गति को प्राप्त हो राजा महासुदस्सन ब्रह्मलोक में उत्पन्न हुआ।

"आनन्द! हो सकता है कि तुम्हें ऐसा लगे कि उस समय महासुदस्सन राजा कोई और था। तो आनन्द! तुम्हें ऐसा नहीं समझना चाहिए। मैं ही उस समय राजा महासुदस्सन था। वह विशाल साम्राज्य, उसके समृद्ध नगर, धन-वैभव, कुसावती राजधानी सव कुछ मेरे ही अधीन था। पूर्वजन्मों में इस स्थान पर छः वार मेरी मृत्यु हो चुकी है।

"देखो, आनन्द! वे सभी संस्कार (संस्कृत वस्तुएं) क्षीण हो गये, निरुद्ध हो गये। आनन्द! इसी तरह सभी संस्कार अनित्य हैं; सभी संस्कार अध्रुव, विनाशी, अस्थायी हैं। आनन्द! इसलिए इन संस्कारों की कामना व्यर्थ है। उनमें राग करना, आसक्त होना व्यर्थ है। उनसे मुक्त हो जाना ही परम सुख है।

"आनन्द! यह सातवीं वार इस स्थान पर तथागत का देहपात होगा। मैं देवताओं सहित समग्र लोक में ऐसा कोई स्थान नहीं देखता जहां तथागत का आठवां देहपात हो सके।"

भगवान ने यह कहा। यह कह सुगत ने फिर कहा -

अनिच्चा वत सङ्खारा, उप्पादवयधम्मिनो।
उप्पज्जित्वा निरुज्झन्ति, तेसं वूपसमो सुखो॥

[सचमुच! सारे संस्कार अनित्य ही तो हैं। उत्पन्न होने वाली सभी स्थितियां, वस्तु, व्यक्ति अनित्य ही तो हैं। उत्पन्न होना और नष्ट हो जाना, यह तो इनका धर्म ही है, स्वभाव ही है। विपश्यना साधना के अभ्यास द्वारा उत्पन्न हो कर निरुद्ध होने वाले इस प्रपंच का जव पूर्णतया उपशमन हो

जाता है - पुनः उत्पन्न होने का क्रम समाप्त हो जाता है - उसी का नाम परम सुख है, वही निर्वाण-सुख है।]

-दीघनिकाय (२.३.२४१-२७२), महासुदस्सनसुत्त

निश्चय ही कृत वस्तु का, उत्पत्ति-मृत्यु स्वभाव।
इस प्रपंच के शमन से ही, सच्चा सुख आव॥

मल्लों को दर्शन कराया

भगवान ने आनन्द से कहा, "जाओ आनन्द! कुसीनारावासी मल्लों से कहो - 'वाशिष्ठो! आज रात के पिछले पहर तथागत का परिनिर्वाण होगा। चलो वाशिष्ठो! वाद में अफसोस मत करना कि हमारे ग्राम-क्षेत्र में तथागत का परिनिर्वाण हुआ और हमें सूचना तक न मिली। और हम अंतिम समय तथागत के दर्शन न कर पाये।'"

"अच्छा, भंते!" कह आयुष्मान आनन्द ने सुआच्छादित हो पात्र-चीवर लेकर कुसीनारा में प्रवेश किया। उस समय मल्ल लोग किसी काम से संथागार में एकत्र थे। आयुष्मान आनन्द ने उन्हें भगवान का संदेश सुनाया।

ऐसा सुनते ही सभी मल्ल परिवार कुलपुत्र-भार्या, पुत्र-पुत्री, वेटा-वहू राह्नित अत्यंत दुःखी हो रोने लगे। कोई-कोई एक दूसरे की वांह पकड़ कर, कोई-कोई कटे वृक्ष की तरह भूमि पर गिर कर विलाप करते हुए कहने लगे - "वहुत जल्दी भगवान परिनिर्वाण को प्राप्त हो रहे हैं। वहुत जल्दी सुगत का परिनिर्वाण हो रहा है, वहुत जल्दी लोकचक्षु अंतर्धान हो रहे हैं।" इस प्रकार रोते-कलपते सभी उपवत्तन शालवन पहुँचे।

मल्लों की एकत्र भीड़ देख कर आयुष्मान आनन्द ने सोचा, "यदि सभी मल्लों को एक-एक करके भगवान के दर्शन-वंदन कराऊं तो रात वीत जायगी और सवलोग दर्शन नहीं पा सकेंगे।" इसलिए उन्होंने एक-एक मल्ल कुल को क्रम से परिचय कराते हुए भार्या, पुत्र, वधू, परिषद और अमात्य सहित भगवान के चरणों का दर्शन-वंदन कराना प्रारंभ किया। इस उपाय से रात के प्रथम भाग में सभी मल्ल परिवारों को भगवान के दर्शन-वंदन करा दिये।

-दीघनिकाय (२.३.२११), महापरिनिव्वानसुत्त

सुभद्द की प्रव्रज्या

उस समय कुसीनारा में रहने वाले सुभद्द नामक परिव्राजक ने सुना कि आज रात के पिछले याम के अंत में भगवान का महापरिनिर्वाण होगा। समय समीप आया देख कर, वह भगवान से धर्म सीखने के लिए चला आया। आनन्द ने उसे रोका।

"वस करो, आवुस सुभद्द, भगवान को कष्ट मत दो। भगवान थके हैं।"

तीन वार आनन्द ने उसे रोका। यह कथा-संलाप भगवान के कानों में पड़ा। कोई धर्मगंगा के किनारे अपनी प्यास वुझाने आया है और उसे रोका जा रहा है। करुणा की धर्मगंगा में वाढ़ आ गयी। भगवान ने अपनी रूपकाया की असुविधा की उपेक्षा कर आनन्द को आदेश दिया - "वस करो, आनन्द! सुभद्द को मत रोको, सुभद्द को तथागत का दर्शन पाने दो। जो कुछ सुभद्द पूछेगा, वह परम-ज्ञान की अपेक्षा से ही पूछेगा, मुझे कष्ट देने की अपेक्षा से नहीं। पूछने पर मैं जो अभिव्यक्त करूंगा, उसे वह शीघ्र ही जान लेगा।"

तव आयुष्मान आनन्द ने सुभद्द परिव्राजक से कहा - "जाओ, आवुस सुभद्द! भगवान तुम्हें आज्ञा देते हैं।" परिव्राजक सुभद्द भगवान के पास आया। पास जाकर भगवान का अभिवादन कर एक ओर वैठ गया। वह भगवान से वोला - "हे गोतम! पूरण कस्सप, मक्खलि गोसाल, सञ्चय वेलट्ठपुत्त आदि अनेक तैर्थिक आचार्य अनेक प्रकार के दावे करते हैं, क्या वे सत्य हैं?"

"नहीं सुभद्द! जाने दो उन सव दावों को। सुभद्द! तुम्हें धर्म उपदेश करता हूं; उसे सुनो, अच्छी तरह मन में धारण करो। सुभद्द! जिस धर्मविनय में आर्य अष्टांगिक मार्ग नहीं है वहां पर न तो प्रथम श्रमण (सोतापन्न), न ही द्वितीय श्रमण (सकदागामी), न ही तृतीय श्रमण (अनागामी) और न ही चतुर्थ श्रमण (अर्हत) होते हैं। जिस धर्म-शासन में आर्य अष्टांगिक मार्ग का अभ्यास किया जाता है वहां पर सोतापन्न, सकदागामी, अनागामी तथा अर्हत होते हैं। सुभद्द, इस धर्मविनय में आर्य अष्टांगिक मार्ग का अभ्यास किया जाता है। इसलिए मेरे शासन में सोतापन्न, सकदागामी, अनागामी

तथा अर्हत हैं। सुभद्द! अगर भिक्षु ठीक से विहार करें, ध्यान-भावना में रत रहें, तो यह लोक अर्हतों से शून्य न हो।"

"सुंदर, भंते! सुंदर, भंते! भंते! जैसे कोई उल्टे को सीधा कर दे, ढँके को उघाड़ दे, मार्ग-भूले को रास्ता वता दे अथवा अंधेरे में मशाल धारण करे जिससे आंख वाले चीजों को देख सकें। इसी प्रकार अनेक प्रकार से भगवान ने धर्म को प्रकाशित किया। मैं भगवान, धर्म तथा संघ की शरण जाता हूं। भंते! मुझे भगवान के पास प्रव्रज्या मिले, उपसंपदा मिले।"

"सुभद्द! जो कोई भूतपूर्व अन्यतैर्थिक (-दूसरे पंथ का) हो और इस धर्म में प्रव्रज्या, उपसंपदा चाहता हो; उसे चार मास परिवास (-परीक्षार्थ वास) करना होता है। चार मास के वाद, योग्यता देख कर उसे प्रव्रजित करते हैं, उपसंपन्न करते हैं।"

"भंते! यदि भूतपूर्व अन्यतैर्थिक इस धर्मविनय में प्रव्रज्या उपसंपदा पाने के लिए चार मास परिवास करता है, तो भंते! मैं चार वर्ष परिवास करूंगा। चार वर्षों के वाद संतुष्ट-चित्त भिक्षु मुझे प्रव्रजित करें।"

भगवान उसकी निष्ठा से प्रसन्न हुए और आयुष्मान आनन्द से कहा - "आनन्द! सुभद्द को प्रव्रजित करो।"

"अच्छा, भंते!" कह कर सुभद्द परिव्राजक को आयुष्मान आनन्द ने कहा - "आवुस! सुलभ हुआ तुम्हें, जो यहां शास्ता के सम्मुख अभिषिक्त हुए।"

सुभद्द परिव्राजक ने भगवान से प्रव्रज्या पायी, उपसंपदा पायी। उपसंपन्न होने के बाद अचिरकाल में ही आयुष्मान सुभद्द आत्मसंयमी होकर विहार करते हुए, जल्दी ही अनुत्तर ब्रह्मचर्य-फल को इसी जन्म में स्वयं जान कर, साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहरने लगे। सुभद्द अर्हतों में से एक हुए। वह भगवान के अंतिम शिष्य हुए।

-दीघनिकाय (२.३.२१२-२१५), महापरिनिब्बानसुत्त

तथागत की अंतिम वाणी

तब भगवान ने आयुष्मान आनन्द से कहा - "आनन्द! शायद तुम यह सोचो कि मेरे शास्ता चले गये। ऐसा विचार मन में कभी न लाना। मेरे द्वारा जो धर्म और विनय उपदिष्ट किये गये हैं, मेरे बाद वे ही तुम्हारे शास्ता होंगे।"

भगवान ने भविष्य के लिए कुछ निर्देश दिये - "आनन्द! आजकल भिक्षु एक दूसरे को 'आवुस' कह कर संबोधित करते हैं। मेरे बाद ऐसा नहीं करेंगे। पुराने भिक्षु नये भिक्षु को नाम से, गोत्र से या 'आवुस' कह कर संबोधित करें। नये भिक्षु पुराने भिक्षु को 'भंते' या 'आयुष्मान' कह कर संबोधित करें। इच्छा होने पर मेरे बाद संघ के छोटे-मोटे नियमों को छोड़ सकते हैं।"

भगवान बोले - "आनन्द! मेरे बाद छन्न को ब्रह्मदण्ड करना चाहिए।"

"भंते! यह ब्रह्मदण्ड क्या है?"

"आनन्द! छन्न भिक्षुओं को चाहे जो कुछ भी कहे, पर भिक्षुओं को उससे कुछ भी नहीं बोलना चाहिए। उसे उपदेश भी नहीं दिया जाना चाहिए।"

तब भगवान ने भिक्षुओं को आमंत्रित किया - "भिक्षुओ! बुद्ध, धर्म, संघ, मार्ग अथवा प्रतिपदा के संबंध में किसी भी भिक्षु को किसी भी प्रकार की शंका हो तो वह पूछकर निराकरण कर ले। बाद में पछतावा न करना कि शास्ता हमारे सम्मुख थे, किंतु हम उनसे कुछ पूछ न सके।"

सभी भिक्षु मौन रहे। फिर दूसरी बार और तीसरी बार भी भगवान ने अपने इस वक्तव्य को दोहराया। सभी मौन साधे रहे।

"भिक्षुओ! तुम में से कोई भिक्षु मुझसे पूछने में संकोच करता हो तो वह अपने साथी की सहायता से पूछकर अपने संदेहों का निवारण करवा ले।" तब भी सारे भिक्षु मौन रहे।

आयुष्मान आनन्द ने भगवान से कहा - "आश्चर्य भंते!, अद्भुत भंते!! भंते! मैं इस भिक्षु-संघ में अत्यंत प्रसन्न हूं जहां पर एक भिक्षु को भी बुद्ध, धर्म, संघ, मार्ग अथवा प्रतिपदा के बारे में कोई शंका संदेह नहीं है।"

"आनन्द! तुम श्रद्धापूर्वक ऐसा कह रहे हो, पर तथागत तो प्रत्यक्ष रूप से यह जानते हैं कि इस भिक्षु-संघ में किसी एक भिक्षु को भी बुद्ध, धर्म, संघ, मार्ग अथवा प्रतिपदा के बारे में कोई शंका, संदेह नहीं है। पांच सौ भिक्षुओं में जो सबसे अंत में प्रव्रज्या-प्राप्त भिक्षु है वह भी सोतापन्न, दुर्गति को प्राप्त न होने वाला, नियत संबोधि-परायण है।"

तब भगवान ने भिक्षुओं को संबोधित किया -

"हन्द दानि, भिक्खवे आमन्तयामि वो,
वयधम्मा सङ्खारा; अप्पमादेन सम्पादेथ।"

["भिक्षुओ! आओ! मैं तुम्हें संबोधित करता हूं। सारे संस्कार व्यय-धर्मा हैं। (जो कुछ संस्कृत, याने निर्मित होता है, वह नष्ट होता ही है।) प्रमाद-रहित हो, (इस सच्चाई का) संपादन करो (स्वानुभूति पर उतारो)।"]

अयं तथागतस्स पच्छिमा वाचा।

यह तथागत की अंतिम वाणी (वचन) है।

-दीघनिकाय (२.३.२१६), महापरिनिब्बानसुत्त

परिनिर्वृत्ति कथा

तथागत ने चंद क्षणों में ही एक के बाद एक, पहले से नौवें ध्यान की समापत्ति का साक्षात्कार किया और इंद्रियातीत निर्वाणिक अवस्था में स्थित हुए। इस अवस्था में श्वास की गति सर्वथा निरुद्ध हुई तो लोगों को भ्रम हुआ कि भगवान ने महापरिनिर्वाण प्राप्त कर लिया है। आयुष्मान आनन्द ने

आयुष्मान अनुरुद्ध से पूछा - "भंते अनुरुद्ध! क्या भगवान परिनिर्वृत्त हो गये हैं?"

"नहीं आयुष्मान आनन्द! भगवान अभी परिनिर्वृत्त नहीं हुए।"

कुछ क्षणों के वाद पुनः नौवें ध्यान की इंद्रियातीत निर्वाणिक अवस्था से निकल कर, भगवान ने एक बार फिर पहले से चौथे ध्यान-समापत्ति की यात्रा पूरी की और उसी अवस्था में महापरिनिर्वाण को प्राप्त हुए।

भगवान के परिनिर्वृत्त होने के साथ ही भीषण, लोमहर्षक महान भूकंप आया। देवदुंदुभियां बज उठीं।

यों वैशाख पूर्णिमा की रात पूरी होते-होते अनगिनत जन्मों से भव-संसरण करता हुआ उनका यह अंतिम जीवन पूरा हुआ। भौतिक शरीर जीवन-शून्य हुआ।

जो अवीतराग भिक्षु थे, वे भुजाएं पकड़कर चिल्ला रहे थे। कटे वृक्ष की भांति भूमि पर गिर रहे थे। लोट-पोट होते हुए कह रहे थे, 'वहुत जल्दी भगवान निर्वाण को प्राप्त हुए। वहुत जल्दी सुगत निर्वाण को प्राप्त हुए। वहुत शीघ्र चक्षुमान लोक से अंतर्धान हुए।' पर, जो वीतराग थे, वे स्मृति और संप्रज्ञान के साथ समझ रहे थे - 'सभी कृत वस्तुएं अनित्य ही हैं। उनकी निरंतर प्राप्ति असंभव है।'

आयुष्मान अनुरुद्ध भिक्षुओं से वोले - "आवुसो! मत शोक करो, विलाप मत करो। भगवान ने तो पहले ही कह दिया था - 'सभी प्रियों से वियोग होना निश्चित है। उनका निरंतर संयोग कहां से मिलने वाला है? जो कुछ भी उत्पन्न है, कृत है, संस्कृत है, वह एक न एक दिन नष्ट होगा ही।' आवुसो! देवताओं का भी तुम्हारे जैसा ही हाल है। वे भी इसी प्रकार क्रंदन कर रहे हैं।"

आयुष्मान आनन्द के पूछने पर आयुष्मान अनुरुद्ध ने भगवान के महापरिनिर्वाण प्राप्त करने पर देवताओं की व्यथा को वतलाया।

वह रात आयुष्मान अनुरुद्ध और आयुष्मान आनन्द ने धर्मकथा में वितायी।

रात वीत जाने पर भोर में आयुष्मान अनुरुद्ध ने आयुष्मान आनन्द से कहा, "जाओ आवुस आनन्द! कुसीनारा के मल्लों से कहो, 'वाशिष्टो! भगवान परिनिर्वृत्त हो गये। अव जिसका तुम काल समझो वह करो।'"

आयुष्मान आनन्द ने आयुष्मान अनुरुद्ध के वचनों को शिरोधार्य कर मल्लों को भगवान के महापरिनिर्वाण का समाचार कह सुनाया। ऐसा सुनते ही सभी मल्ल परिवार, कुलपुत्र-भार्या, पुत्र-पुत्री, वेटा-वहू सहित अत्यंत दुःखी हो रोने-चिल्लाने लगे। कोई-कोई एक दूसरे की वांह पकड़ कर; कोई-कोई कटे वृक्ष की तरह भूमि पर गिर कर क्रंदन करते कहने लगे "वहुत जल्दी शास्ता निर्वाण को प्राप्त हो गये; वहुत जल्दी सुगत निर्वाण को प्राप्त हुए; वहुत जल्दी लोकचक्षु का अंतर्धान हो गया।"

-दीघनिकाय (२.३.२१९-२२६), महापरिनिब्वानसुत्त

तथागत का पार्थिव शरीर

अल्प समय पूर्व ही आयुष्मान आनन्द को दिये मार्गदर्शन के अनुसार कुसीनारा के मल्ल शासकों ने भगवान के निष्प्राण हुए पार्थिव शरीर को नयी धुनी हुई रूई के पहलों और नये वुने हुए वस्त्रों में लपेट कर तेल-भरी द्रोणी में रखा। परंतु उसे चिता पर तत्काल नहीं चढ़ा सके। उन्हें सूचना मिली कि तथागत के प्रमुख शिष्य महास्थविर महाकस्सप अन्य अनेक भिक्षुओं के साथ कुसीनारा की ओर आ रहे हैं। अतः उनके पहुँचने तक एक सप्ताह प्रतीक्षारत रहें। भिक्षु महाकस्सप के पहुँचने पर ही दाह-क्रिया की गयी। तदनंतर चिता को शीतल करके जो अस्थि-अवशेष प्राप्त हुए उन्हें अपने गणतंत्र की राजधानी में एक भव्य स्तूप बना कर उसमें प्रतिष्ठापित करने के लिए मल्लों ने अपने अधिकार में ले लिये।

परंतु मगध के शक्तिशाली शासक अजातसत्तु ने जब यह सुना तो वह अपने सैन्यवल के साथ कुसीनारा पर चढ़ आया और उन अस्थियों पर अपने अधिकार का दावा करने लगा। पिछले इस एक सप्ताह के भीतर तथागत के महापरिनिर्वाण की सूचना द्रुत-गति से चारों ओर फैल गयी थी। इसे सुन कर इसी प्रकार वेसाली के लिच्छवी, कपिलवत्थु के शाक्य, अल्लकप्प के वुलिय, रामग्राम के कोलिय, वेठदीप के व्राह्मण और पावा के

मल्ल भी भगवान के पार्थिव शरीर के अवशेषों पर अपना-अपना अधिकार जताने के लिए सदल-बल कुसीनारा आ पहुँचे। इन सभी राज्यों और जनपदों के निवासी भगवान के श्रद्धालु अनुयायी थे, अतः भगवान के अस्थि-अवशेषों पर अपना-अपना अधिकार मानते थे। सभी शक्ति-संपन्न थे। इनमें से कोई भी अपना अधिकार छोड़ने के लिए तैयार नहीं था। बात बिगड़ती देख कर तथागत के श्रद्धालु शिष्य ब्राह्मण द्रोण ने बीच-बचाव किया और इस झगड़े का शांतिपूर्ण निपटारा करते हुए समस्त अस्थि-अवशेषों को आठ भागों में विभाजित कर, उन आठ राज्यों के शासकों को सौंपते हुए उन्हें संतुष्ट किया, जिससे कि वे अपने-अपने राज्य की राजधानी में अपने हिस्से में प्राप्त हुए अस्थि-अवशेषों पर भव्य स्तूप का निर्माण कर मंगललाभी हो सकें और श्रद्धालु जनता को पूजन-अर्चन द्वारा पुण्यलाभ प्राप्त करने का अवसर दे सकें। बँटवारे के पहले जिस कलश में भगवान की सारी अस्थि-धातु रखी गयी थी, उस खाली कलश को ब्राह्मण द्रोण ने अपने लिए मांग लिया ताकि श्रद्धावश उस कलश पर एक स्तूप का निर्माण कर सके। यों बँटवारा पूर्ण हो जाने के बाद, अस्थि-अवशेषों पर अपना भी अधिकार जताने के लिए पिप्पलीवन के मौर्य कुसीनारा पहुँचे, परंतु उस समय चिता के बुझे हुए कोयले ही बचे थे, जिन्हें ले जाकर उन्होंने अपनी राजधानी में उन पर एक स्तूप का निर्माण किया और इसी में संतोष माना।

आनन्द की व्यथा

भगवान के परिनिर्वृत्त होने के पूर्व आयुष्मान आनन्द जैसे भगवान के साथ जाते, उसी तरह परिनिर्वाण के बाद भी उनका पात्र-चीवर लेकर सावत्थी लौटे। रास्ते में उनके साथ अनेक भिक्षु सम्मिलित हो गये। जहां-जहां आयुष्मान आनन्द जाते वहां-वहां लोग बहुत ही रोते-पीटते हुए मिलते। स्थविर के सावत्थी पहुँचने पर उनका आगमन जानकर सावत्थीवासी माला, गंध, धूप, दीप आदि लेकर उनके स्वागत में पहुँचने लगे। स्वागत के पश्चात वे पूछते – "भंते आनन्द! पहले आप भगवान के साथ आते थे। आज भगवान को कहां छोड़ आये?" ऐसा कह कर वे सब खूब रोते-पीटते। भगवान के महापरिनिर्वाण दिवस के सदृश ही रोदन-क्रंदन हुआ।

आयुष्मान आनन्द ने परिवर्तनशीलता, अनित्यता, भंगुरता की अनेक धर्मकथाएं कह कर जनता को समझाया, फिर जेतवन में प्रवेश किया। भगवान जिस कुटी में रहते थे उसकी वंदना की और द्वार खोला। चारपाई को बाहर निकाला, उसकी धूल को झाड़ा और साफ किया। कुटी में झाड़ू लगाया। कुम्हलायी फूलमाला और कूड़ा-करकट को बाहर फेंका। चारपाई ले जाकर उसे पुनः यथास्थान रखा। भगवान की उपस्थिति में वे जो-जो व्रत करते थे उन सबको किया। यह सब करते हुए स्नान के समय, झाड़ू लगाते समय, पानी रखते समय, गंधकुटी की वंदना कर यह अवश्य कहते, "भंते! यह भगवान के स्नान का समय है, यह देशना करने का समय है, यह भिक्षुओं को उपदेश देने का समय है, यह सिंहशय्या में विश्राम का समय है, भंते! यह मुँह धोने का समय है .....।" इस तरह कह-कह कर वे अकेले में रोते। समूह में तो लोगों को समझाते, पर अकेले होने पर स्वयं अपना विवेक खो बैठते।

उनकी यह हालत देख-समझ कर एक देवता ने कहा - "भंते आनन्द! यदि आप ही इस तरह रोते पीटते रहेंगे तो औरों को कैसे सांत्वना देंगे? कैसे आश्वस्त करेंगे? भंते! आप अपना उत्तरदायित्व समझें।"

देवता के ऐसा कहने पर अपने व्यथित हृदय में उन्होंने धर्म-संवेग जगाया। कर्त्तव्य-वोध हुआ, उसके प्रति तत्पर हुए।

चिरं तिट्ठतु सद्धम्मो

चार स्मृतिप्रस्थान - चिरस्थायी सद्धर्म का रहस्य

एक समय आयुष्मान आनन्द और आयुष्मान भद्द पाटलिपुत्त (पाटलिपुत्र) के कुक्कुटाराम में विहार करते थे। तव आयुष्मान भद्द आयुष्मान आनन्द के पास गये। पास जाकर आयुष्मान आनन्द का अभिवादन कर एक ओर वैठ गये। आयुष्मान भद्द आयुष्मान आनन्द से वोले - "आवुस आनन्द! भगवान ने जो कुशल शील वतलाये हैं, वह किस अभिप्राय से?"

"साधु, साधु, आवुस भद्द! भली है आवुस भद्द की उमंग! भला है आवुस भद्द का प्रतिभान; जो यह कल्याणकारी प्रश्न पूछा।

"आवुस भद्द! भगवान ने जो कुशल शील वतलाये हैं, वे चार स्मृतिप्रस्थानों की भावना के लिए हैं।

"ये चार स्मृतिप्रस्थान हैं -

"भिक्खु काये कायानुपस्सी विहरति आतापी सम्पजानो सतिमा, विनेय्य लोके अभिज्झादोमनस्सं।

"भिक्षु (साढ़े तीन हाथ के काया-रूपी) लोक में राग और द्वेष को दूर कर, श्रमशील, स्मृतिमान और संप्रज्ञानी वन, काया में कायानुपश्यी होकर विहार करता है;

"वेदनासु वेदनानुपस्सी विहरति आतापी सम्पजानो सतिमा, विनेय्य लोके अभिज्झादोमनस्सं।

"(साढ़े तीन हाथ के काया-रूपी) लोक में राग और द्वेष को दूर कर, श्रमशील, स्मृतिमान और संप्रज्ञानी वन, वेदनाओं में वेदनानुपश्यी होकर विहार करता है;

"चित्ते चित्तानुपस्सी विहरति आतापी सम्पजानो सतिमा, विनेय्य लोके अभिज्झादोमनस्सं।

(साढ़े तीन हाथ के काया-रूपी) लोक में राग और द्वेष को दूर कर, श्रमशील, स्मृतिमान और संप्रज्ञानी वन, चित्त में चित्तानुपश्यी होकर विहार करता है;

"धम्मे धम्मानुपस्सी विहरति आतापी सम्पजानो सतिमा, विनेय्य लोके अभिज्झादोमनस्सं।

"(साढ़े तीन हाथ के काया-रूपी) लोक में राग और द्वेष को दूर कर, श्रमशील, स्मृतिमान और संप्रज्ञानी वन धर्म में धर्मानुपश्यी होकर विहार करता है।

"आवुस भद्द! भगवान ने जो कुशल शील वतलाये हैं, वे इन चार स्मृतिप्रस्थानों को भावित करने के लिए ही हैं।"

"आवुस आनन्द! क्या हेतु है कि तथागत के परिनिर्वृत्त होने के वाद सद्धर्म चिरस्थायी नहीं होता? क्या हेतु है कि तथागत के परिनिर्वृत्त होने के वाद भी सद्धर्म चिरस्थायी होता है?"

"चतुन्नं खो, आवुसो, सतिपट्ठानानं अभावितत्ता अबहुलीकतत्ता तथागते परिनिब्बुते सद्धम्मो न चिरट्ठितिको होति।

"आवुस! चार स्मृतिप्रस्थानों को भावित न करने से, वहुलीकृत न करने से तथागत के परिनिर्वृत्त हो जाने पर सद्धर्म चिरस्थायी नहीं होता।

"चतुन्नञ्च खो, आवुसो सतिपट्ठानानं भावितत्ता वहुलीकतत्ता तथागते परिनिब्बुते सद्धम्मो चिरट्ठितिको होति।

"और आवुस! चार स्मृतिप्रस्थानों को भावित करने से, वहुलीकृत करने से तथागत के परिनिर्वृत्त हो जाने पर भी सद्धर्म चिरस्थायी होता है।"

"कौन-से चार?"

"आवुस! भिक्षु (साढ़े तीन हाथ के काया-रूपी) लोक में राग और द्वेष को दूर कर, श्रमशील, स्मृतिमान और संप्रज्ञानी वन, काया में कायानुपश्यी होकर विहार करता है;

"(साढ़े तीन हाथ के काया-रूपी) लोक में राग और द्वेष को दूर कर, श्रमशील, स्मृतिमान और संप्रज्ञानी वन, वेदनाओं में वेदनानुपश्यी होकर विहार करता है;

"(साढ़े तीन हाथ के काया-रूपी) लोक में राग और द्वेष को दूर कर, श्रमशील, स्मृतिमान और संप्रज्ञानी वन, चित्त में चित्तानुपश्यी होकर विहार करता है;

"(साढ़े तीन हाथ के काया-रूपी) लोक में राग और द्वेष को दूर कर, श्रमशील, स्मृतिमान और संप्रज्ञानी वन, धर्म में धर्मानुपश्यी होकर विहार करता है।

"आवुस! इन चार स्मृतिप्रस्थानों को भावित न करने से, बहुलीकृत न करने से तथागत के परिनिर्वृत्त हो जाने पर सद्धर्म चिरस्थायी नहीं होता। और आवुस! इन चार स्मृतिप्रस्थानों को भावित करने से, बहुलीकृत करने से तथागत के परिनिर्वृत्त हो जाने पर भी सद्धर्म चिरस्थायी होता है।"

-संयुत्तनिकाय (३.५.३८७-३८८), सीलसुत्त, चिरट्ठितिसुत्त

संघ में विवाद के कारण

एक समय भगवान सक्क (शाक्य) जनपद में सामगाम में विहार करते थे। उन्हीं दिनों निर्ग्रंथ नाथपुत्त ने पावा में अपना शरीर त्याग दिया। उसके वाद उनके शिष्यों में आपसी कलह और विवाद प्रारंभ हो गया। वे आपस में मुखरूपी शस्त्र से एक-दूसरे को वींधते हुए विहरते थे - 'तू इस धर्म-विनय को नहीं जानता, मैं इस धर्म-विनय को जानता हूं।' 'तू क्या इस धर्म-विनय को जानेगा?' 'तू मिथ्यारूढ़ है, मैं सत्यारूढ़ हूं।' 'तूने पहले कहने की वात को पीछे कहा, पीछे कहने की वात को पहले कहा' इत्यादि, इत्यादि।

पावा से आये हुए चुन्द श्रामणेर ने यह वात आयुष्मान आनन्द से वतायी। तव आयुष्मान आनन्द चुन्द श्रामणेर को लेकर भगवान के पास आये और अभिवादन करके एक ओर बैठ गये।

एक ओर वैठे आयुष्मान आनन्द ने भगवान से कहा - "भंते! निर्ग्रंथ नाथपुत्त अभी-अभी पावा में मरे हैं। इस समय उनके शिष्यों में ऐसा कलह और विवाद शुरू है, जैसे युद्ध ही मचा हो। भंते! मुझे ऐसा लगता है कि

भगवान के बाद कहीं भिक्षु-संघ में भी ऐसा ही विवाद न उत्पन्न हो जाय। वह विवाद बहुजन के अहित के लिए, दुःख के लिए, अनर्थ के लिए और देव-मनुष्यों के लिए अमंगल तथा अकल्याणकारी होगा।"

"तो आनन्द! मैंने स्वयं साक्षात्कार कर जिन सैंतीस धर्मों का उपदेश किया है, वे हैं -

- **चार स्मृतिप्रस्थान** (कायानुपश्यना, वेदनानुपश्यना, चित्तानुपश्यना, और धर्मानुपश्यना)
- **चार सम्यक प्रधान** (संवर, प्रहाण, भावना, अनुरक्षण)
- **चार ऋद्धिपाद** (छंद, वीर्य, चित्त, मीमांसा)
- **पांच इंद्रिय** (चक्षु, श्रोत्र, जिह्वा, घ्राण, त्वचा)
- **पांच बल** (श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि, प्रज्ञा)
- **सात बोध्यंग** (स्मृति, धर्म-विचय, वीर्य, प्रीति, प्रश्रब्धि, समाधि, उपेक्षा)
- **आर्य अष्टांगिक मार्ग** (सम्यकदृष्टि, सम्यकसंकल्प, सम्यकवाणी, सम्यककर्मांत, सम्यकआजीविका, सम्यकव्यायाम, सम्यकस्मृति, सम्यकसमाधि) - क्या इन धर्मों में भी दो भिक्षुओं का मतभेद दीखता है?"

आयुष्मान आनन्द ने प्रत्युत्तर दिया - "नहीं। लेकिन जो भगवान के सहारे विहरते हैं, वे भगवान के न रहने पर, संघ में आजीविका अथवा भिक्षु-नियमों के बारे में विवाद खड़ा कर सकते हैं। यह बहुतों के अहित, असुख के लिए होगा।"

तब भगवान ने कहा - "आनन्द! संघ में आजीविका अथवा भिक्षु-नियमों के बारे में विवाद सामान्य बात है। मार्ग अथवा प्रतिपदा के बारे में यदि संघ में विवाद उठ खड़ा हो तो वह बहुतों के अहित, असुख के लिए होगा।

"आनन्द! ये छः विवाद के मूल हैं। यहां कोई भिक्षु क्रोधी, वैरी होता है। वह शास्ता में गौरव-रहित, आश्रय-रहित हो विहरता है, धर्म में तथा संघ में गौरव-रहित विहरता है। शिक्षा में त्रुटि करने वाला होता है।

"जो भिक्षु, आनन्द! शास्ता में गौरव-रहित, शिक्षा में त्रुटि करने वाला होता है, वही संघ में विवाद पैदा करता है। वह विवाद बहुतों के अहित, असुख के लिए होता है। आनन्द! ऐसे विवाद के मूल को जब कभी अंदर या बाहर देखना तो उसके प्रहाण के लिए प्रयत्न करना। आनन्द! ऐसे पापमूलक विवाद भविष्य में तुम्हारे सामने न आयें तो भी इसके लिए प्रयत्न करना। इस प्रकार पापमूलक विवाद का प्रहाण होता है तथा भविष्य में इसकी उत्पत्ति की संभावना नहीं रहती।

"यहां कोई भिक्षु म्रक्षी (दूसरों के गुणों का अवमूल्यन करने वाला), पलाशी (ईर्ष्यालु) ..... होता है, भविष्य में इसकी उत्पत्ति की संभावना नहीं रहती।

"यहां कोई भिक्षु ईर्ष्यालु, मत्सरी (द्वेषी) होता है ..... भविष्य में इसकी उत्पत्ति की संभावना नहीं रहती।

"यहां कोई भिक्षु शठ, मायावी होता है ..... भविष्य में इसकी उत्पत्ति की संभावना नहीं रहती।

"यहां कोई भिक्षु पापेच्छ, मिथ्यादृष्टिक होता है ..... भविष्य में इसकी उत्पत्ति की संभावना नहीं रहती।

"यहां कोई भिक्षु दृष्टिपरामर्शी (मिथ्या दृष्टियों में लगा रहने वाला), दुराग्रही व दुष्प्रतिनिसर्गी (अपने आग्रह पर अड़ा रहने वाला) होता है। वह शास्ता में गौरव-रहित, आश्रय-रहित हो विहरता है, धर्म में तथा संघ में गौरव-रहित विहरता है। शिक्षा में त्रुटि करने वाला होता है। जो भिक्षु आनन्द! शास्ता में गौरव-रहित, शिक्षा में त्रुटि करने वाला होता है, वही संघ में विवाद पैदा करता है। वह विवाद बहुतों के अहित, असुख के लिए होता है। आनन्द! ऐसे विवाद के मूल को जब कभी अंदर या बाहर देखना तो उसके प्रहाण के लिए प्रयत्न करना। आनन्द! ऐसे पापमूलक विवाद भविष्य में तुम्हारे सामने न आयें तो भी इसके लिए प्रयत्न करना। इस प्रकार पापमूलक विवाद का प्रहाण होता है तथा भविष्य में इसकी उत्पत्ति की संभावना नहीं रहती। आनन्द! विवाद के ये छः कारण हैं।"

तत्पश्चात भगवान ने चार अधिकरण और सात अधिकरण-शमथ बतलाये। फिर यह समझाया कि समय-समय पर उत्पन्न होने वाले

अधिकरणों (झगड़ों) को शांत करने के लिए अधिकरण-शमथ को कैसे काम में लेना चाहिए।

अंत में भगवान ने विवादरहित हो एकजुट बने रहने के लिए याद रखने योग्य ये छः धर्म बतलाये।

"आनन्द! संघ को विवाद और कलह से बचाने के लिए तथा आपस में सौमनस्य और एकता बनाये रखने के लिए ये छः बातें हैं जो कि स्मरणीय, प्रियकारक, आचरण में लाने वाली, संग्रह योग्य, विवाद को सुलझाने वाली, संघ में एकता कायम रखने वाली हैं।

"आनन्द! भिक्षुओं का आपस में सहब्रह्मचारियों के साथ, गुप्त अथवा प्रकट दोनों रूप में, मैत्रीभाव युक्त कायिककर्म हो - यह बात स्मरणीय, प्रियकारक, आचरण में लाने वाली, संग्रह योग्य, विवाद को सुलझाने वाली, संघ में एकता कायम रखने वाली है।

"और फिर आनन्द! भिक्षुओं का आपस में सहब्रह्मचारियों के साथ, गुप्त अथवा प्रकट दोनों रूप में, मैत्रीभाव युक्त वाचिककर्म हो ..... संघ में एकता कायम रखने वाली है।

"और फिर आनन्द! भिक्षुओं का आपस में सहब्रह्मचारियों के साथ गुप्त, अथवा प्रकट दोनों रूप में, मैत्रीभाव युक्त मनोकर्म हो ..... संघ में एकता कायम रखने वाली है।

"और फिर आनन्द! जो कुछ भी भिक्षु को धार्मिक लाभ से प्राप्त हो, अंत में पात्र चुपड़ने मात्र भी, वह उसे शीलवान सहब्रह्मचारियों के साथ आपस में बांट कर भोग करे ..... संघ में एकता कायम रखने वाली है।

"और फिर आनन्द! भिक्षु निर्दोष, परिशुद्ध, अछिद्र, अखंड, अनिंदित, सेवनीय, पंडितों द्वारा प्रशंसित तथा समाधि में सहायक शीलों से श्रमणभाव युक्त हो, गुप्त तथा प्रकट भी, सहब्रह्मचारियों के साथ विहार करता हो ..... संघ में एकता कायम रखने वाली है।

"और फिर आनन्द! जो यह दृष्टि (सिद्धांत) है, जिसका अनुसरण करने पर यह दुःखक्षय की ओर ले जाती है, ऐसी दृष्टि से श्रमणभाव युक्त हो, गुप्त भी और प्रकट भी सहब्रह्मचारियों के साथ विहार करता हो - यह बात स्मरणीय, प्रियकारक, आचरण में लाने वाली, संग्रह योग्य, विवाद को सुलझाने वाली, संघ में एकता कायम रखने वाली है।

"आनन्द! यदि तुम सभी इन छः धर्मों के सहारे साधना में तत्पर हो तो आनन्द! क्या तुम्हें अब अपने आप में एक भी ऐसा छोटा या बड़ा दोष दिखायी देगा, जो वाणी से तुम पर लगाया जा सके?"

"नहीं, भंते!"

"इसलिए आनन्द! इन छः धर्मों के सहारे साधना करते रहो। यही तुम्हारे लिए दीर्घकाल तक हितकर व सुखकर होगा।"

भगवान ने यह कहा। संतुष्टमन आयुष्मान आनन्द ने भगवान के भाषण का अभिनंदन किया।

-मज्झिमनिकाय (३.१.४१-५४), सामगामसुत्त

दस प्रसादनीय धर्म - भगवान के बाद भिक्षुओं के मार्गदेष्टा

एक समय आयुष्मान आनन्द भगवान के परिनिर्वाण के बाद राजगह के वेळुवन स्थित कलन्दकनिवाप में विहार करते थे। एक दिन आयुष्मान आनन्द भिक्षाटन पूर्व गोपकमोग्गल्लान ब्राह्मण के पास गये। ब्राह्मण ने उचित स्वागत-सत्कार के साथ आयुष्मान आनन्द को ऊंचे आसन पर बिठाया और स्वयं नीचे आसन पर बैठ गया।

ब्राह्मण गोपक ने आयुष्मान आनन्द से कहा – "भंते आनन्द! क्या आप सभी लोगों में कोई एक ऐसा भी भिक्षु है, जो उन सारे गुणों से युक्त हो जिनसे युक्त अर्हत सम्यक-संबुद्ध गोतम थे।"

"नहीं ब्राह्मण! हमारे बीच कोई ऐसा एक भी भिक्षु नहीं है, जो उन सारे गुणों से युक्त हो जिनसे युक्त सम्यक-संबुद्ध थे। ब्राह्मण! भगवान लुप्त मार्ग के शोधकर्त्ता थे, जाननहार थे, देखनहार थे, व्याख्याता थे, मार्गकोविद थे। बाकी शिष्य तो मार्गानुगामी हो विहार कर रहे हैं।"

इसी समय मगधराज्य अजातसत्तु का महामात्य वस्सकार भी वहां आ पहुँचा। वह भी आयुष्मान आनन्द और ब्राह्मण गोपक की वार्त्ता में सम्मिलित हो गया।

ब्राह्मण ने दूसरा प्रश्न किया – "क्या उन जाननहार, देखनहार, भगवान गोतम ने किसी ऐसे एक भिक्षु को भी अपना उत्तराधिकारी स्थापित किया है, जो आप सबका शरणदाता हो, मार्गदर्शक हो, जिसका आप सभी लोग इस समय अनुसरण करते हों।"

"नहीं ब्राह्मण! उन जाननहार, देखनहार, भगवान ने किसी ऐसे भिक्षु को उत्तराधिकारी स्थापित नहीं किया है जिसका हम सव इस समय अनुसरण करते हों।"

"भो आनन्द! क्या आप लोगों में कोई एक ऐसा भी भिक्षु है, जो संघ से सम्मत (सर्वसम्मति से चुना गया) हो, बहुत से स्थविर भिक्षुओं द्वारा यह कहकर उत्तराधिकारी स्थापित किया गया हो कि भगवान के वाद यह हमारा प्रतिशरण होगा; जिसका कि इस समय आप लोग अनुसरण करते हों?"

"नहीं ब्राह्मण! ऐसा नहीं है।"

"भो आनन्द! भिक्षुओं के कोई मार्गदर्शक (प्रतिशरण) न होने पर संघ की एकता कैसे रहेगी?"

आयुष्मान आनन्द ने ब्राह्मण के प्रश्नों को नकारते हुए कहा – "ब्राह्मण! उन भगवान, जाननहार, अर्हत, सम्यक-संवुद्ध ने भिक्षुओं के लिए शिक्षापद (प्रातिमोक्ष) उपदिष्ट किये हैं। प्रत्येक उपोसथ को एक ग्राम सीमा में रहने वाले सारे भिक्षु एकत्र हो उनका पारायण करते हैं। उस अवधि में भिक्षु द्वारा विनय-नियम का पूर्व में उल्लंघन होने पर उसे स्वयं स्वीकार करते हैं। भविष्य में पुनः उस अकुशल कार्य को न करने का दृढ़ संकल्प लेते हैं। यह सव धर्म ही कराता है।"

"भो आनन्द! क्या इस समय एक भी भिक्षु आप सबमें ऐसा है, जो आप सवके लिए आदरणीय, वंदनीय, गौरवयुक्त तथा पूजनीय हो, जिसका आदर, सत्कार, गुरुकार करके आप सव उसके आश्रय में विहार करते हों?"

आयुष्मान आनन्द ने इसका नकारात्मक उत्तर दिया।

आयुष्मान आनन्द ने गोपकमोग्गल्लान ब्राह्मण की शंकाओं का समाधान करते हुए कहा, "ब्राह्मण! उन भगवान, जाननहार, देखनहार, अर्हत, सम्यक-संवुद्ध ने दस प्रसादनीय (श्रद्धा उत्पन्न करने वाले) धर्मों की देशना दी है। जो कोई इन दस धर्मों से युक्त होता है, वह हमारे द्वारा

सत्कृत, गौरवपूर्ण तथा मानित होता है। उसका सत्कार कर, गौरव कर, मान देते हुए हम उसके आश्रय में विहार करते हैं।

इन दस धर्मों को धारण करने वाला भिक्षु -

- अखंड शील का पालन करते हुए भिक्षु विनय (प्रातिमोक्ष) में संयम बरतता है।
- मंगलकारी धर्म जो आदि में कल्याणकारी, मध्य में कल्याणकारी तथा वर्तमान में कल्याणकारी है, उस धर्म में वहुश्रुत, श्रुतधर और श्रुतसंचयी होता है।
- भोजन, वस्त्र, शयनासन आदि में अल्पेच्छ और संतोषी होता है।
- इसी शरीर में सुखपूर्वक चारों ध्यानों में विहार करता है।
- बहुविध ऋद्धियों – जैसे एक से अनेक, अनेक से एक आदि का अनुभव करता है।
- दिव्य श्रोत्र का अनुभव करता है।
- दूसरों के चित्त और चित्तधर्मों को अपने चित्त से जान लेता है।
- अनेक पूर्वजन्मों के निवासों और घटनाओं को जान लेता है।
- प्राणियों के पूर्वजन्मों के सत्कर्मों-दुष्कर्मों को जान लेता है, तथा
- आस्रव-क्षय विद्या के अनुभव से मलरहित चित्त हो विहरता है।

"ब्राह्मण! उन भगवान, जाननहार, देखनहार, अर्हत, सम्यक-संवुद्ध ने इन दस प्रसादनीय धर्मों की देशना दी है। जो कोई इन दस धर्मों से युक्त होता है, हमारे द्वारा सत्कृत, गौरवपूर्ण तथा मानित होता है उसका सत्कार कर, गौरव कर, मान देते हुए हम उसके आश्रय में विहार करते हैं।"

इसी प्रकार आयुष्मान आनन्द गोपकमोग्गल्लान ब्राह्मण की अन्य जिज्ञासाओं को अपने प्रज्ञापूर्ण कथन द्वारा शांत करते रहे। फिर भी ब्राह्मण के मन-मस्तिष्क पर संदेह के वादल अंत तक मँडराते ही रहे।

-मज्झिमनिकाय (३.१.७९-८४), गोपकमोग्गल्लानसुत्त

धम्म-संगीति

भगवद्वाणी का समयपूर्व संगायन क्यों?

तथागत द्वारा उपदेशित धर्म को शुद्ध रूप में चिरस्थायी रखने के लिए स्वयं तथागत ने यह आदेश दिया था -

..... ये वो मया धम्मा अभिञ्ञा देसिता, तत्थ सब्बेहेव सङ्गम्म समागम्म, अत्थेन अत्थं ब्यञ्जनेन ब्यञ्जनं सङ्गायितब्बं, न विवदितब्बं, यथयिदं ब्रह्मचरियं अद्धनियं अस्स चिरट्ठितिकं .....।

[..... जिन धर्मों को मैंने स्वयं अभिज्ञात करके तुम्हें उपदेशित किया है, तुम सब मिलकर विना विवाद किये अर्थ और व्यंजन सहित उनका संगायन करो जिससे कि यह धर्माचरण चिरस्थायी हो .....।]

अतः भगवान बुद्ध के महापरिनिर्वाण के पश्चात देर-सवेर बुद्धवाणी का संगायन, संपादन तो होता ही; पर उसे इतना शीघ्र आयोजित किये जाने का एक विशेष कारण उपस्थित हुआ।

उस समय आयुष्मान महाकस्सप पांच सौ भिक्षुओं के भिक्षु-संघ के साथ पावा और कुसीनारा के वीच जा रहे थे। विश्राम हेतु वे मार्ग से हट कर एक वृक्ष के नीचे वैठ गये। एक आजीवक कुसीनारा से मंदार पुष्प ले, पावा की ओर जा रहा था। आयुष्मान महाकस्सप ने उससे पूछा - "आवुस! क्या तुम हमारे शास्ता को भी जानते हो?"

"हां, आयुष्मान! जानता हूं; श्रमण गोतम को परिनिर्वृत्त हुए आज एक सप्ताह हो गया। मैंने यह मंदार पुष्प वहीं से पाया है।"

यह सुन वहां जो अवीतराग भिक्षु थे, उनमें से कोई-कोई वांह पकड़कर रोते, पीटते, कटे पेड़ के समान धराशायी होते और कहते 'भगवान वहुत जल्दी परिनिर्वाण को प्राप्त हो गये।' उस परिषद में सुभद्द नामक एक वृद्ध भिक्षु वैठा था। वह वुढ़ापे में प्रव्रजित हुआ था। वड़ा प्रसन्न हुआ। अपने

कपड़े उछाल-उछाल कर अपनी प्रसन्नता व्यक्त करने लगा। उसने भिक्षुओं से कहा - "आवुसो! शोक मत करो, मत रोओ। हम विल्कुल मुक्त हो गये उन महाश्रमण से। उनके ऐसे आदेशों से सदा पीड़ित रहा करते थे कि 'यह उचित है, यह अनुचित है। वह गृहस्थों को मात्र पांच शील पालन के लिए कहते थे और हम गृहत्यागियों के लिए दो सौ शील! अव वुद्ध के चले जाने से मुक्त हो गये। अव हमारी जो इच्छा होगी वह करेंगे, जो इच्छा नहीं होगी वह नहीं करेंगे।'

कीचड़ में से कमल की भांति कभी-कभी घोर अमंगल में से भी महामंगल का प्रादुर्भाव हो जाता है। यही हुआ। सुदूरदर्शी महास्थविर महाकस्सप ने भिक्षु सुभद्द के इन अभद्र शब्दों को सुन कर तत्क्षण यह निर्णय किया कि लोक-कल्याणार्थ बुद्ध-वाणी को चिरकाल तक अविकल रूप में सुरक्षित रखने के लिए शीघ्र ही संगायन का आयोजन करना चाहिए। अन्यथा इस प्रकार के अपरिपक्व स्वार्थी लोग इसमें से अपनी अनचाही वातें निकाल देंगे और मनचाही इसमें जोड़ देंगे।

-दीघनिकाय (२.३.२३१-२३२)

आयुष्मान आनन्द को प्रथम धम्म-संगीति में शामिल करना

सुदूरदर्शी महाकस्सप ने भिक्षु-संघ के समक्ष तत्काल यह निर्णय लिया कि लोककल्याणार्थ बुद्धवाणी को चिरकाल तक अविकल रूप में सुरक्षित रखने के लिए शीघ्र ही संगायन का आयोजन किया जाय। पांच सौ सत्यसाक्षी महास्थविर इसमें सम्मिलित होंगे जिन्होंने भगवान की वाणी को सुना, समझा, पारायण किया; पालन किया और जीवन में उतारा और मुक्त अवस्था को प्राप्त हुए। पांच सौ भिक्षुओं की सूची तैयार होने लगी। सुझाव आया कि उसमें भिक्षु आनन्द को शामिल किया जाय जो भगवान के चचेरे भाई थे और पच्चीस वर्षों तक छाया की तरह उनके साथ रहे। उन्हें भगवान की एक-एक शिक्षा कंठस्थ है। भगवान का आनन्द से करार था कि यदि आनन्द उनके साथ धर्मसभा में नहीं होगा तो वे आकर उस उपदेश को वैसे-का-वैसा आनन्द को सुनायेंगे। महाकस्सप ने आपत्ति की, यह जानते हुए भी कि आनन्द सभी प्रकार से सुपात्र हैं, फिर भी अभी अर्हत नहीं हैं। कल को यह विवाद न उठ खड़ा हो कि तथागत का भाई तथा महाकस्सप

का प्रिय होने के नाते आनन्द को अर्हत न होते हुए भी चुना गया। उन्होंने कहा – आनन्द अभी अर्हत नहीं हुए। संगायन में सभी अर्हत ही होने चाहिएं।

आनन्द को तपने का समय दिया गया। निश्चित अवधि तक यदि अर्हत अवस्था को प्राप्त करते हैं तो ठीक, अन्यथा किसी अन्य अर्हत को लेकर संगायन प्रारंभ कर देंगे।

आनन्द अर्हत हुए

आयुष्मान आनन्द ने भिक्षु महाकस्सप को आश्वस्त किया कि मैं शीघ्र ही अर्हत होकर आपकी सभा में भाग लेने के लिए आऊंगा। सभा का आयोजन थोड़े समय के लिए स्थगित रखें। इसके तुरंत पश्चात वह अपने काम में लग गये।

आयुष्मान आनन्द को मुक्त होने की विद्या तो खूब विदित ही थी। अतः वह खूब परिश्रम करने लगे, परंतु वह अपना होश खोये हुए थे, क्योंकि हर समय उसके मानस में यही चिंतन चलता था - 'अर्हत होकर रहूंगा!', 'अर्हत होकर रहूंगा!' दूसरों को होश वनाये रखने की शिक्षा देने वाले स्वयं होश खोये बैठे थे। इसके परिणामस्वरूप दिन-पर-दिन वीतते चले गये परंतु उन्हें वांछित उपलब्धि नहीं हुई।

इस पर भिक्षु आनन्द ने कहा – "अच्छा, आज रात और प्रयत्न करूं।" सारी रात साधना में जुटे रहे, इस सोच के साथ – 'मैं अर्हत वनकर रहूंगा।' अहंकार ने साथ नहीं छोड़ा।

निराशा में भगवान का अंतिम क्षण का आशीर्वाद याद आया – 'आनन्द! तुम कृतपुण्य हो, शीघ्र ही अनास्रव हो जाओ।'

ढाढ़स वँधा – 'बुद्धों के भाव दोषपूर्ण नहीं होते।'

उत्साह बढ़ा। 'लगता है मैंने घोर प्रयत्न किया है। इसलिए, चित्त असंतुलित और क्षुब्ध हो गया है। समता में रहकर प्रयास करना ठीक होगा।'

उन्होंने अपने पैर धोये। विहार में प्रवेश किया। सोचा – 'वैठकर थोड़ा विश्राम करूं।' जैसे ही झुके, दोनों पैर जमीन से ऊपर उठे। 'मैं अर्हत नहीं,

स्रोतापन्न हूं', ऐसा सोचते हुए सिर जैसे ही तकिये पर गया, इसी वीच विना विचारे ही चित्त आस्रवों से मुक्त हो गया। स्थविर अर्हत्व को प्राप्त हो गये। ऐसा इसलिए हुआ, क्योंकि सही चिंतन करते ही चित्त उस क्षण की सच्चाई में आ गया। आयुष्मान आनन्द का अर्हत्व चार ईर्यापथों से विरहित था। अर्हत्व प्राप्ति पर उनकी यह गाथा हृदयग्राही है –

"परिचिण्णो मया सत्था, कतं बुद्धस्स सासनं।
ओहितो गरुको भारो, नत्थि दानि पुनब्भवो॥"

-थेरगाथा (१०५३), आनन्दत्थेरगाथा

["मैंने बुद्ध को (उनके धर्म को) अच्छी तरह जाना, मैंने उनकी पूजा की, उनसे उनके धर्म से अच्छी तरह परिचित हुआ और मैंने बुद्ध की शिक्षा पूरी कर ली। मेरे भारी भार उतर गये, अब मेरा पुनर्जन्म नहीं होगा।"]

संगीति सभा में आयुष्मान आनन्द का प्रवेश

तव आयुष्मान आनन्द कुछ विशेष ढंग से बैठक में सम्मिलित और उपस्थित हुए। उन्होंने सहभिक्षुओं और सभा के सदस्यों को अपने अर्हत्व प्राप्ति की वात मौखिक ढंग से नहीं वतायी। सभा के प्रायः सभी सदस्य अपने-अपने लिए निर्धारित आसन पर वैठ गये। तव एक खाली आसन के वारे में चर्चा होने लगी। एक ने पूछा – "यह किसका है?"

"स्थविर आनन्द का।"

"वह कहां गये?"

ऐसा सुनकर आयुष्मान आनन्द ने सोचा, 'अव सभा में मेरे जाने का सही अवसर है।' तव अर्हत्व का प्रताप दिखाते हुए ऋद्धिवल द्वारा अपने आसन पर जा बैठे। इस प्रकार सबको उनके अशैक्ष्य होने की वात पता चल गयी।

बहुश्रुत आनन्द ने उत्तरदायित्व संभाला

बुद्धवाणी का संगायन चल रहा था। 'विनय' का संगायन पूरा हुआ। आगे 'धम्म' संगायन चालू रखने की इच्छा से अध्यक्ष महाकस्सप ने परिषद

से पूछा, "भिक्षुओ! 'धम्मसंगायन' करते समय किस व्यक्ति को उत्तरदायी वनाकर संगायन करना चाहिए?"

भिक्षुओं ने एक स्वर से कहा – "स्थविर आनन्द को उत्तरदायित्व सौंप कर।" तव आयुष्मान महाकस्सप ने संघ को ज्ञापित किया - "आवुसो! संघ मुझे सुने। यदि संघ को पसंद हो तो मैं आयुष्मान आनन्द से धर्म (=सूत्र) पूछूं?"

तव आयुष्मान आनन्द ने संघ को ज्ञापित किया - "भंते! संघ मुझे सुने। यदि संघ को पसंद हो, तो मैं आयुष्मान महाकस्सप द्वारा पूछे गये धर्म का उत्तर दूं?" तव आयुष्मान आनन्द भी संघ की मौन स्वीकृति पा धर्मासन पर जा वैठे। तदुपरांत आयुष्मान महाकस्सप ने आयुष्मान आनन्द से कहा -

"आवुस आनन्द! 'व्रह्मजाल' (सूत्र) को कहां भाषित किया गया?"

"राजगह और नालन्दा के वीच अम्वलट्ठिका के राजागार में।"

"किसको लेकर?"

"सुप्पिय परिव्राजक और व्रह्मदत्त माणवक को लेकर।"

तव आयुष्मान महाकस्सप ने आयुष्मान आनन्द से 'व्रह्मजाल' के निदान के वारे में तथा व्यक्ति के वारे में पूछा।

"आयुष्मान आनन्द! 'सामञ्ञ (श्रामण्य) फल' सूत्र को कहां भाषित किया गया?"

"भंते! राजगह में जीवकम्बवन में।"

"किसके साथ?"

"अजातसत्तु वेदेहिपुत्त के साथ।"

तब आयुष्मान महाकस्सप ने 'सामञ्ञफल सुत्त' के निदान के बारे में तथा व्यक्ति के बारे में पूछा। इसी प्रकार से पांचों निकायों के बारे में पूछा; पूछे गये धर्म का आयुष्मान आनन्द ने उत्तर दिया।

आनन्द का परिनिर्वाण

आयुष्मान आनन्द की आयु १२० वर्ष हो चली। उन्हें भान हुआ कि उनके परिनिर्वाण का समय समीप आ गया है। भगवान की भांति वे भी राजगह से वेसाली की ओर गये। जब मगधराज तथा वेसाली के राजकुमारों को पता चला कि वे शीघ्र ही परिनिर्वाण को प्राप्त होंगे तब वे दो दिशाओं से आयुष्मान आनन्द को अंतिम विदाई देने के लिए दौड़ पड़े। आयुष्मान आनन्द परिनिर्वाण को प्राप्त हुए। उनकी देहधातु को विभाजित कर उन पर स्तूप खड़े किये गये।

आयुष्मान आनन्द के परिनिर्वाण के समय संगीतकार भिक्षुओं ने गाया -

"बहुस्सुतो धम्मधरो, कोसारक्खो महेसिनो।
चक्खु सब्बस्स लोकस्स, आनन्दो परिनिब्बुतो॥

["बहुश्रुत, धर्मधर, महर्षि के कोषरक्षक, समग्र लोक के चक्षु आनन्द का परिनिर्वाण हो गया।]

****

"बहुस्सुतो धम्मधरो, कोसारक्खो महेसिनो।
चक्खु सब्बस्स लोकस्स, अन्धकारे तमोनुदो॥

["बहुश्रुत, धर्मधर, महर्षि के कोषरक्षक, समग्र लोक के चक्षु अंधकार में अंधकार को दूर करने वाले थे।]

****

"गतिमन्तो सतिमन्तो, धितिमन्तो च यो इसि।
सद्धम्मधारको थेरो, आनन्दो रतनाकरो॥"

["जो गतिमान, स्मृतिमान और धृतिमान ऋषि थे, वे सद्धर्म के धारक स्थविर आनन्द, समुद्र (रत्नों की खान) की तरह (गंभीर) थे।"]

-थेरगाथा (१०५०-१०५२), आनन्दत्थेरगाथा

अतीत कथा

भगवान पदुमुत्तर का शासनकाल

आज से एक लाख कल्प पूर्व पदुमुत्तर नामक शास्ता लोक में उत्पन्न हुए। उनका नगर था हंसवती, पिता का नाम आनन्द था, माता थी सुमेधा और बोधिसत्त्व काल में उनका नाम था उत्तर कुमार। उनके देवल और सुजात नामक दो अग्रश्रावक थे। अमिता और असमा नामक दो अग्रश्राविकाएं और सुमन नामक उपस्थाक थे। अब के आयुष्मान आनन्द उन्हीं भगवान पदुमुत्तर के छोटे सौतेले भाई थे। उनका नाम पड़ा सुमन कुमार। बोधिसत्त्व उत्तर कुमार बुद्धत्व को प्राप्त कर पदुमुत्तर सम्यक-संबुद्ध कहलाये।

महाराज ने राजकुमार सुमन को हंसवती से एक सौ बीस योजन दूर भोगग्राम दिया। राजकुमार उस निगम की व्यवस्था देखते, कर वसूलते। कभी-कभी आकर वे शास्ता और पिता से भेंट करते थे। उस समय राजा शास्ता का एक लाख भिक्षु-संघ के साथ स्वयं सावधानीपूर्वक सत्कार करते थे, किसी अन्य को करने नहीं देते थे।

एक बार सीमाप्रांत में विद्रोह हुआ। पिता के आदेशानुसार कुमार सुमन ने बड़ी ही कुशलता से विद्रोह को शांत किया। पिता ने प्रसन्न होकर उन्हें वर देने की इच्छा प्रकट की। मित्रों के परामर्श से कोई भौतिक वस्तु न मांगकर कुमार सुमन ने तीन माह के लिए भगवान पदुमुत्तर बुद्ध की सेवा का वर मांगा। राजा ने इसे अस्वीकारते हुए कहा - "यह नहीं हो सकता, दूसरा वर मांगो।"

"देव, क्षत्रिय दो बातें नहीं बोलते, यही वर दें, दूसरे से मेरा कोई प्रयोजन नहीं है।"

महाराज आनन्द ने कहा - "अगर शास्ता तुम्हें अपनी सेवा की आज्ञा दें, तो मैंने भी यह वर तुम्हें दिया।"

कुमार ने कहा – "अच्छा, महाराज! तो मैं भगवान के मन की बात जान कर आऊं।" ऐसा उत्तर देकर राजकुमार विहार पहुँच गये। उस समय भगवान गंधकुटी के भीतर थे। सुमन राजकुमार ने भिक्षुओं से कहा - "भंते! मैं भगवान के दर्शनार्थ आया हूं, आप मुझे उनके दर्शन करा दें।" भिक्षुओं ने कहा - "सुमन नामक थेर भगवान के उपस्थाक हैं, आप उनके पास जाइए।"

राजकुमार सुमन भगवान पदुमुत्तर के उपस्थाक थेर सुमन के पास गये। उनसे भगवान पदुमुत्तर के दर्शन के लिए विनती की। तब सुमन थेर ने देखते-देखते ऋद्धिबल द्वारा भगवान के पास पहुँचकर राजकुमार सुमन के आने की तथा उसकी भगवान के दर्शन की अभिलाषा से भगवान को अवगत कराया।

थेर सुमन ने पुनः ऋद्धिबल द्वारा गंधकुटी से बाहर आकर, गंधकुटी के परिवेण में बुद्धआसन बिछाया। राजकुमार सुमन ने आयुष्मान सुमन के ऋद्धिबल को देखकर मन-ही-मन सोचा - 'यह भिक्षु महान है।'

भगवान गंधकुटी से बाहर निकल अपने आसन पर बैठ गये। कुमार ने श्रद्धापूर्वक भगवान के चरणों में वंदना की और एक ओर बैठ गया।

राजकुमार सुमन ने भगवान से पूछा - "भंते! यह भिक्षु (उपस्थाक सुमन) आपके शासन में प्रिय मालूम पड़ता है।"

"हां, कुमार प्रिय है।"

"भंते! बुद्धों के शासन में क्या करने से कोई प्रिय होता है?"

"दान देकर, शील पालन कर, उपोसथ व्रत धारण कर हमारे शासन में कोई प्रिय होता है।"

"भंते! मैं भी बुद्ध शासन में इन महानुभाव की तरह प्रिय होना चाहता हूं। भंते! भगवान कल हमारे यहां भोजन के लिए पधारें।"

मौन रहकर भगवान ने स्वीकृति दी। राजकुमार घर आये और सात दिनों के लिए भगवान के महासत्कार की पूरी तैयारी की।

बड़े ही श्रद्धाभाव से राजकुमार भिक्षु-संघ सहित भगवान को भोजन-दान देते। सातवें दिन शास्ता की वंदना करके कहा – "भंते! पिता से मैंने तीन महीने तक आपकी सेवा करने का वर प्राप्त किया है, तीन महीने तक मेरे यहां वर्षावास बिताने की आप स्वीकृति प्रदान करें।"

"राजकुमार! तथागत शून्यागार में विहार करते हैं।"

"समझ गया भंते! समझ गया। मेरे संदेश भेजने पर एक लाख भिक्षुओं के साथ भगवान मेरे यहां पधारें।"

भगवान पदुमुत्तर की स्वीकृति मिल गयी। राजकुमार पिता के पास आये और कहा – "देव! भगवान ने मेरे यहां वर्षावास का वचन दे दिया है। मेरे संदेश भेजने पर आप भगवान को भेजने की कृपा करें।"

तव राजकुमार ने पिता की वंदना की और अपने नगर भोगग्राम वापस आ गये। भगवान की सुविधा और आराम के लिए रास्ते में एक-एक योजन पर विहार बनवाया। अपने नगर में राजकुमार सुमन ने एक लाख का सोमन नाम का एक उद्यान खरीदा तथा एक लाख खर्चकर उसमें विहार का निर्माण कराया। भगवान के आगमन पर राजकुमार ने सोमन उद्यान भगवान तथा भिक्षु-संघ को समर्पित कर दिया।

राजकुमार सुमन स्वयं भगवान के उपस्थाक स्थविर सुमन के साथ रहने लगे। भगवान के लिए जो भी शील, व्रत और धर्म स्थविर धारण करते वही राजकुमार भी करते। स्थविर के साथ नियमपूर्वक रहते हुए राजकुमार के मन में हुआ – "इस जगह यह स्थविर अत्यंत प्रिय हैं। मुझे भी भगवान से इसी स्थान के लिए प्रार्थना करनी चाहिए।"

पवारणा का दिन करीव आया। राजकुमार गांव जाकर एक सप्ताह तक महादान करते रहे। अंतिम दिन सभी भिक्षुओं के चरणों में श्रद्धापूर्वक तीन-तीन चीवर रखा। फिर भगवान की वंदना कर बोले - "भंते! एक सप्ताह तक मेरे द्वारा दिये गये भोजन-दान से मैंने जो कुछ पुण्य अर्जित किया है, उस पुण्य के वदले में मेरे अंदर शक्र आदि के स्थान की कामना नहीं है, बल्कि किसी बुद्धशासन में सुमन स्थविर की तरह किसी सम्यक-संवुद्ध का प्रिय उपस्थाक होऊं, यही मेरी कामना है।"

भगवान पदुमुत्तर की व्याख्या

तव भगवान पदुमुत्तर ने सोमन आराम द्वार से निकल कर अमृत की वर्षा करते हुए जनता को संतृप्त किया। उस समय सुमन राजकुमार हाथी पर आरूढ़ थे। उनके ऊपर श्रेष्ठ श्वेत छत्र था। तब सुमन राजकुमार के

मन में प्रीति जागी। वह हाथी से उतरकर भगवान पदुमुत्तर के पास आया और अपना रत्नमय छत्र भगवान के सिर के ऊपर पकड़े रखा। तब भगवान पदुमुत्तर ने राजकुमार सुमन के बारे में निम्न घोषणाएं कीं -

"यहां से जाकर यह मनुष्य तुषित लोक में वास करेगा। अप्सराओं द्वारा सम्मानित होगा और संपत्ति प्राप्त करेगा।

"चौंतीस बार यह (इंद्र बनकर) देवराज्य भोगेगा। अठहत्तर बार चक्रवर्ती बनकर पृथ्वी पर वास करेगा।

"अट्ठावन बार चक्रवर्ती राजा होगा और प्रदेश का राजा तो पृथ्वी पर अनेक बार होगा।

"आज से एक लाख कल्प बाद इक्ष्वाकु कुलोत्पन्न गोत्र से गोतम नामक शास्ता संसार में उत्पन्न होंगे।

"शाक्यों के कुलकेतु का यह रिश्तेदार होगा। इसका नाम आनन्द होगा और यह महर्षि का उपस्थाक होगा।

"प्रयत्नशील तथा दक्ष होगा। विद्वत्ता में पंडित होगा, विनम्र होगा, कठोर नहीं होगा और सब पढ़ने वाला होगा।

"यह दृढ़ संकल्प वाला, उपशांत और उपधि-रहित होगा। सभी आस्रवों को परिपूर्ण रूप से जानकर अनास्रव होकर परिनिर्वाण को प्राप्त करेगा।"

भगवान कस्सप का शासनकाल

आयुष्मान आनन्द अनेक जन्मों में देव-मनुष्य योनियों में भव-संसरण करते हुए भगवान कस्सप बुद्ध के समय माता-पिता के घर उत्पन्न हुए। बालिग होकर एक थेर के भिक्षाटन करते समय पात्र रखने के लिए उत्तरशाटक देकर उनकी पूजा की। पुनः स्वर्ग में जन्म लेकर वहां से च्युत हो वाराणसी का राजा हो आठ पच्चेकबुद्धों को देखा। उन्हें भोजन कराया और अपने उद्यान में आठ पर्णशालाएं बनवाकर उनके बैठने के लिए आठ स्वर्णरत्नमय चौकियां और मणि के बने सहारे को तैयार करवा कर दस हजार वर्षों तक उनकी सेवा की।

भगवान गोतम का शासनकाल

अनेक जन्मों में अपनी पारमिताओं को पूर्ण करते हुए, तुषित देवलोक से च्युत होकर बोधिसत्त्व (सिद्धार्थ गोतम) के साथ एक ही दिन भगवान गोतम बुद्ध के चाचा अमितोदन शाक्य के घर जन्म ग्रहण कर बंधु-बांधवों को आनंदित किया। भगवान का उपस्थाक पद प्राप्त हुआ। भगवान पदुमुत्तर द्वारा की गयी व्याख्या भगवान गोतम बुद्ध के शासन में फलवती हुई।

मन में प्रीति जागी। वह हाथी से उतरकर भगवान पदुमुत्तर के पास आया और अपना रत्नमय छत्र भगवान के सिर के ऊपर पकड़े रखा। तव भगवान पदुमुत्तर ने राजकुमार सुमन के वारे में निम्न घोषणाएं कीं -

"यहां से जाकर यह मनुष्य तुषित लोक में वास करेगा। अप्सराओं द्वारा सम्मानित होगा और संपत्ति प्राप्त करेगा।

"चौंतीस वार यह (इंद्र वनकर) देवराज्य भोगेगा। अठहत्तर वार वलाधिपति वनकर पृथ्वी पर वास करेगा।

"अट्ठावन वार चक्रवर्ती राजा होगा और प्रदेश का राजा तो पृथ्वी पर अनेक बार होगा।

"आज से एक लाख कल्प वाद इक्ष्वाकु कुलोत्पन्न गोत्र से गोतम नामक शास्ता संसार में उत्पन्न होंगे।

"शाक्यों के कुलकेतु का यह रिश्तेदार होगा। इसका नाम आनन्द होगा और यह महर्षि का उपस्थाक होगा।

"प्रयत्नशील तथा दक्ष होगा। विद्वत्ता में पंडित होगा, विनम्र होगा, कठोर नहीं होगा और सव पढ़ने वाला होगा।

"यह दृढ़ संकल्प वाला, उपशांत और उपधि-रहित होगा। सभी आस्रवों को परिपूर्ण रूप से जानकर अनास्रव होकर परिनिर्वाण को प्राप्त करेगा।"

भगवान कस्सप का शासनकाल

आयुष्मान आनन्द अनेक जन्मों में देव-मनुष्य योनियों में भव-संसरण करते हुए भगवान कस्सप बुद्ध के समय माता-पिता के घर उत्पन्न हुए। वालिग होकर एक थेर के भिक्षाटन करते समय पात्र रखने के लिए उत्तरशाटक देकर उनकी पूजा की। पुनः स्वर्ग में जन्म लेकर वहां से च्युत हो वाराणसी का राजा हो आठ पच्चेकबुद्धों को देखा। उन्हें भोजन कराया और अपने उद्यान में आठ पर्णशालाएं वनवाकर उनके वैठने के लिए आठ स्वर्णरत्नमय चौकियां और मणि के वने सहारे को तैयार करवा कर दस हजार वर्षों तक उनकी सेवा की।

भगवान गोतम का शासनकाल

अनेक जन्मों में अपनी पारमिताओं को पूर्ण करते हुए, तुषित देवलोक से च्युत होकर वोधिसत्त्व (सिद्धार्थ गोतम) के साथ एक ही दिन भगवान गोतम बुद्ध के चाचा अमितोदन शाक्य के घर जन्म ग्रहण कर बंधु-बांधवों को आनंदित किया। भगवान का उपस्थाक पद प्राप्त हुआ। भगवान पदुमुत्तर द्वारा की गयी व्याख्या भगवान गोतम बुद्ध के शासन में फलवती हुई।

कल्याण-मार्ग चालू रहे

एक समय भगवान मिथिला में मघदेव के आम्रवन में विहार करते थे। एक जगह आयुष्मान आनन्द ने भगवान को मुस्कराते देखा। उन्होंने सोचा, 'भगवान के मुस्कराने का क्या कारण है? तथागत विना कारण नहीं मुस्कराते।' तव आयुष्मान आनन्द भगवान से वोले - "भंते! भगवान के मुस्कराने का क्या कारण है?"

"आनन्द! पूर्वकाल में इसी मिथिला में मघदेव नामक धार्मिक राजा हुआ था। राज्य में हर जगह वह धर्मानुसार व्यवहार करता। पूर्णिमा, अमावस्या और दोनों अष्टमियों को उपोसथ रखता। एक दिन अपने सिर पर सफेद वाल देख कर उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र से कहा, "तात! मैंने मानुष-काम भोग लिया है, अव दिव्य भोगों के खोजने का समय है। अव तुम राज-काज संभालो।" अतः वह दाढ़ी-मूंछ मुँड़वा, काषाय वस्त्र पहन, घर से वेघर हो प्रव्रजित हो गया। जाते समय उसने अपने श्रेष्ठ पुत्र कुमार को भी समय आने पर ऐसे ही करने के लिए कहा, जिससे यह कल्याणकारी मार्ग अनुप्रवर्तित रहे। उसने उसे इस वात के लिए भी सचेत किया कि कहीं वह इस उत्तम परंपरा का समुच्छेदक वन इसका अंतिम पुरुष न हो जाय।

"कालांतर में राजा मघदेव चार ब्रह्मविहारों (मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा) की भावना करते हुए शरीर छोड़ने पर ब्रह्मलोक को प्राप्त हुआ।

"आनन्द! राजा मघदेव के पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र आदि इसी प्रकार प्रव्रजित हो इस परंपरा को आगे वढ़ाते रहे। निमि उन राजाओं की परंपरा में अंतिम धार्मिक राजा हुआ। उनके धार्मिक शासन और कार्यों की प्रशंसा देवलोकों तक होती तथा मिथिला राज्य के निवासियों का लोग भाग्य सराहते। इसी मघदेव आम्रवन में महाराज निमि घर से वेघर हो प्रव्रजित हुए।

"आनन्द! राजा निमि के कळारजनक नामक पुत्र हुआ। उसने घर-वार नहीं छोड़ा, जिससे वह इस कल्याणकारी मार्ग का समुच्छेदक और इस परंपरा का अंतिम पुरुष हुआ।

"आनन्द! उस समय का राजा मघदेव, कोई और नहीं, वल्कि मैं स्वयं ही था। उस समय का कल्याणकारी मार्ग न तो निर्वेद, न विराग, न निरोध, न उपशम, न अभिज्ञा, न संवोधि, न निर्वाण के लिए था; यह केवल ब्रह्मलोक पाने तक था। परंतु अव जो आठ अंगों वाला आर्य अष्टांगिक मार्ग (**सम्यकदृष्टि, सम्यकसंकल्प, सम्यकवाणी, सम्यककर्मांत, सम्यकआजीविका, सम्यकव्यायाम, सम्यकस्मृति और सम्यकसमाधि**) मेरे द्वारा प्रज्ञप्त किया गया है वह एकांत निर्वेद, विराग, निरोध, उपशम, अभिज्ञा, संवोधि तथा निर्वाण के लिए है। आनन्द! तुम मेरे द्वारा प्रवर्तित इस कल्याण मार्ग को चालू रखना, तुम इसके अंतिम पुरुष न होना।"

-मज्झिमनिकाय (२.४.३०८-३१६), मघदेवसुत्त

जग में वहती ही रहे, शुद्ध धर्म की धार।
दुखियारे प्राणी सभी, होंय दुःखों के पार॥

परिशिष्ट - १

आयुष्मान आनन्द की कतिपय गाथाएं

"पिसुणेन च कोधनेन च, मच्छरिना च विंभूतनन्दिना।
सखितं न करेय्य पण्डितो, पापो कापुरिसेन सङ्गमो॥

["पंडित को चुगली खाने वाले व्यक्ति से, क्रोधी से और ईर्ष्यालु व्यक्ति से तथा उस व्यक्ति से जो दूसरे के दुर्भाग्य पर हँसता है, मित्रता नहीं करनी चाहिए। दुष्ट व्यक्ति की संगति पाप है।]

****

"सद्धेन च पेसलेन च, पञ्ञवता वहुस्सुतेन च।
सखितं करेय्य पण्डितो, भद्दो सप्पुरिसेन सङ्गमो॥

["पंडित को श्रद्धालु व्यक्ति से, सदाचरण युक्त व्यक्ति से और प्रज्ञावान तथा वहुश्रुत से मित्रता करनी चाहिए। सत्पुरुष की संगति अच्छी है।]

****

"पस्स चित्तकतं विम्वं, अरुकायं समुस्सितं।
आतुरं वहुसङ्कप्पं, यस्स नत्थि धुवं ठिति॥

["इस चित्रित शरीर को देखो, यह घावों का ढेर है, यह वहुत सी चीजों का इकट्ठा रूप है, रोगों से भरा है, वहुत से खराव संकल्पों से भरा है यह, और इसकी कोई निश्चित स्थिति नहीं है।]

****

"पस्स चित्तकतं रूपं, मणिना कुण्डलेन च।
अट्ठिं तचेन ओनद्धं, सह वत्थेहि सोभति॥

["इस चित्रित शरीर को, जो मणि और कुंडल से अलंकृत है, देखो। यह हड्डी और चमड़े से ढँका हुआ है और कपड़ा पहनने पर यह शोभता है।]

"अप्पस्सुतायं पुरिसो, वलिवद्दोव जीरति।
मंसानि तस्स वड्ढन्ति, पञ्ञा तस्स न वड्ढति॥

["जो अल्पश्रुत व्यक्ति है वह वैल की तरह वूढ़ा होता है। मांस तो उसका वढ़ता है, पर प्रज्ञा नहीं वढ़ती।]

****

"वहुस्सुतो अप्पस्सुतं, यो सुतेनातिमञ्ञति।
अन्धो पदीपधारोव, तथेव पटिभाति मं॥

["जो वहुश्रुत अल्पश्रुत से अपनी वहुश्रुतता के कारण घृणा करता है, वह मुझे ऐसा ही लगता है जैसे अंधा व्यक्ति दीप धरे हो।]

****

"वहुस्सुतं उपासेय्य, सुतञ्च न विनासये।
तं मूलं व्रह्मचरियस्स, तस्मा धम्मधरो सिया॥

["वहुश्रुत की उपासना करनी चाहिए, उनका अनुगामी होना चाहिए और श्रुत (विद्या) का विनाश नहीं करना चाहिए। यही व्रह्मचर्य जीवन जीने का मूल है, इसलिए धर्मधर होना चाहिए, अर्थात धर्म में निष्णात होना चाहिए।]

****

"वहुस्सुतं धम्मधरं, सप्पञ्ञं वुद्धसावकं।
धम्मविञ्ञाणमाकङ्खं, तं भजेथ तथाविधं॥

[जो (भगवान की) शिक्षा को, उपदेश को समझना चाहता है उसको वुद्ध के वैसे श्रावक के साथ रहना चाहिए जो वहुश्रुत हो, जो धर्मधर हो (धर्म में निष्णात हो), जो प्रज्ञावान हो तथा उस तरह का हो।]

****

"धम्मारामो धम्मरतो, धम्मं अनुविचिन्तयं।
धम्मं अनुस्सरं भिक्खु, सद्धम्मा न परिहायति॥

["भिक्षु जब धर्म में आनंदित होता है, धर्म में रति रखता है, धर्म के ही विषय में चिंतन करता रहता है, धर्म को ही याद करता रहता है तब वह सद्धर्म से दूर नहीं होता।]

****

"अब्भतीतसहायस्स अतीतगतसत्थुनो।
नत्थि एतादिसं मित्तं, यथा कायगता सति॥

["उसके लिए जिसका सहायक (मित्र) चला गया, जिसके शास्ता चले गये, अब नहीं रहे, कायगतास्मृति के सिवा और कोई मित्र वैसा नहीं है।]

****

"पण्णवीसतिवस्सानि, सेखभूतस्स मे सतो।
न कामसञ्ञा उप्पज्जि, पस्स धम्मसुधम्मतं॥

["पच्चीस वर्षों तक जब तक मैं शैक्ष्य था, मेरे मन में कभी भी काम-संज्ञा अर्थात कामतृष्णा उत्पन्न नहीं हुई। धर्म की सुधर्मता को देखो (यह धर्म की महानता है)।]

****

"पण्णवीसतिवस्सानि सेखभूतस्स मे सतो।
न दोससञ्ञा उप्पज्जि, पस्स धम्मसुधम्मतं॥"

["पच्चीस वर्षों तक मैं शैक्ष्य रहा - इस बीच मेरे मन में द्वेष-संज्ञा नहीं उपजी। धर्म की सुधर्मता देखो।"]

-थेरगाथा (१०१७-१०२०, १०२८-१०३०, १०३३, १०३५, १०३८ १०४२, १०४३), आनन्दत्थेरगाथा